महामति प्राणनाथ प्रणीत

श्री रास

(मूल, हिन्दी-छाया, भूमिका एवं अनुशीलन सहित)

सम्पादक

डॉ० रणजीत कुमार साहा
एम. ए , पी-एच. डी.

डॉ० हरेन्द्र प्रसाद वर्मा
पी-एच.डी., डी.लिट्.

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ मिशन
डी-१९३, डिफ़ेंस कालोनी,
नई दिल्ली-२४

महामति प्राणनाथ प्रणीत

श्री रास

(मूल, हिन्दी-छाया, भूमिका एवं अनुशीलन सहित)

सम्पादक

डॉ० रणजीत कुमार साहा
एम. ए., पी-एच. डी.

डॉ० हरेन्द्र प्रसाद वर्मा
पी-एच.डी., डी.लिट्.

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ मिशन
डी-१६३, डिफ़ेंस कालोनी,
नई दिल्ली-२४

'विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्ध' की त्रिशतवार्षिकी (१६७८-१९७८ ई०)
पर प्रकाशित

विजयाभिनंद शाका-३००

प्रथम संस्करण—१००० प्रतियाँ
१९७८ ई०
मूल्य सजिल्द—२०) रुपये

प्रकाशक—
श्री प्राणनाथ मिशन (रजि०)
डी-१९३, डिफेंस कालोनी
नई दिल्ली-११००२४

Mahamati Prannath Praneet
SRI RASA—
Edited By—Dr. Ranjit Kumar Saha
Dr. Harendra Prasad Verma

महामति प्राणनाथ प्रणीत

श्री रास

अनुक्रम | | पृष्ठांक

-श्री रास-

प्राक्कथन

संसार के सभी धर्म ग्रथों में श्रीमद्भागवत को विशेष स्थान प्राप्त है । उसमें श्री रास पंचाध्यायी को अनन्य प्रेम के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में मान्यता प्रात है । अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है । असंख्य टीकाओं के बीच महामति के श्री रास का टीकानुवाद उपस्थित करना ही हमारा उद्देश्य नहीं । शुकमुनि आवेश में रास लीला का वर्णन करते हुए राजा परीक्षित के प्रश्न करने के कारण रुक गए । उनका रास वर्णन अधूरा रहा । राजा के प्रश्न का जो उत्तर उन्होंने दिया उससे उनका समाधान भी न हो पाया । वह प्रश्न आज भी ज्यों का त्यों जीवंत है । यही नहीं, प्रत्येक बात को व्यवसाय बना डालने वालों ने अतिरंजित टीकाओं और चित्रपटों के माध्यम से उसे जन-जन तक पहुंचा तो दिया परन्तु लोक में उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं रही । लोगों ने इसका सतही अर्थ ही लिया । इन सब बातों को ध्यान में रखकर रास के रहस्य को महामति के तारतम ज्ञान की दृष्टि से प्रकट करना आवश्यक हो गया, ताकि भव-रोग से मुक्त करने वाली ओषधि का उचित प्रयोग हो सके ।

महामति का तारतम ज्ञान सभी धर्म ग्रथों के गूढ़ार्थ प्रकट करने की कुंजी है । उनके श्री रास का अध्ययन करके इस मधुर प्रसंग के विषय में सभी शकाएँ दूर होती हैं । 'श्री रास' महामति प्राणनाथ प्रणीत 'कुलजम स्वरूप'—'तारतम वाणी' का पहला ही ग्रंथ है । उनकी मातृभाषा गुजराती थी—जिसमें इस ग्रंथ का 'अवतरण' हुआ । महामति अपने सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी की पुण्य-तिथि के अवसर पर मेला का आयोजन कर रहे थे । किसी चुगल के बहकावे में आकर जाम राजा ने उन्हें नजरबंद कर दिया । प्रभु-प्रेम, सद्गुरु-स्नेह एवं सुन्दर साथ की सेवा में पगे मेहेराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ) के मन पर इसका बड़ा गहरा आघात लगा । अपने 'हब्सा' प्रवास को उन्होंने माया की एक चाल माना । इसीलिए इसमें पहला प्रकरण मोहजल का है । जिसका अभिप्राय यह है कि संसार के सभी आकर्षणों, माया-मोह एवं पिंड-ब्रह्मांड के ससीम नश्वर पदार्थों एवं व्यवहारों से ध्यान हटाकर 'रास' का आनन्द प्राप्त हो सकता है । ऐहिक

ऐषणाओं को तृप्त करने के साधनों की तुलना 'रास लीला' से करना उसी प्रकार है, जैसे अनाड़ी साधक मंत्र-सिद्धि के अनुचित प्रयोग से स्वय ही उसका शिकार बन जाय।

महामति प्राणनाथ जी ने अपने 'प्रकाश' 'कलश', 'किरंतन' आदि अनेक ग्रंथों में रास लीला संबंधी अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। राजा परीक्षित के प्रश्न एवं शुकदेव मुनि के असमंजस के कारण अधूरा विवरण महामति ने पूर्ण किया। महामति के तत्कालीन प्रवीण शिष्यों में श्री लालदास जी एवं नवरग स्वामी तथा महाराजा छत्रसाल जी के सुपुत्र हिरदे साह ने अपने ग्रंथों में रासलीला का वर्णन बड़ी मार्मिक शैली में किया है। इन ग्रंथों के पढ़ने से रास के तीन स्वरूप का सम्यक् बोध होता है। उनके स्पष्टीकरण से इस भगवद् प्रेम-लीला संबंधी शंकाए निर्मूल होती हैं।

रासलीला के आनन्द का अनुभव प्राप्त करने के लिए कुछ आधारभूत सूत्र हैं। सबसे पहला सूत्र है स्त्री-भाव से पूर्ण समर्पण। मनुष्य (चाहे वह पुरुष हो या स्त्री) 'मैं पन' का अहंकार भार जीवन भर ढोए चला जाता है। सखी, पतिव्रता या पत्नि 'भाव में वह अहंकार गलने लगता हैं। पति के व्यक्तित्व के दायरे में पत्नि का व्यक्तित्व निमज्जित हो जाता है।

"पुरुष पने ए निध न आवे, अबला पने लीजे अंग।"

अंग-प्रत्यंग में व्याप्त जो 'मैं' है उसका निराकरण परमात्मा के स्वरूप और 'मैं पन' के प्रवेश से ही सम्भव है। दूसरा सूत्र काम भाव का ऊर्ध्वीकरण है। संसार की ओर इस शक्ति की प्रवृत्ति भेद-स्थिति उत्पन्न करती है। परन्तु यह काभ उर्ध्वगामी बन कर प्रियतम तक की उड़ान में आत्मा को समर्थ बना देता है। योग और तप से नहीं, महामति वंशी की मधुर तान छेड़कर काम भाव का उद्दीपन और ऊर्ध्वीकरण करते हैं। तीसरा सूत्र है—मोह का असीम प्रेम में उन्नयन। पूर्ण समर्पण की राह में मोह ही प्रतिरोघ उत्पन्न करता है। पुत्र-कलत्र, पति-परिवार का मोह, लोक-लाज-मर्यादा सब नारी को प्रिय लगने वाले उसके गुण और शृंगार माने जाते हैं। प्रियतम के मिलन के लिए यह सब उपादान व्यर्थ हो जाते हैं। चीर-हरण लीला का संकेत और अभिप्राय ओढ़ी हुई मान्यताओं का निराकरण है। श्री रास के उथले वचन उस मोह की टोह लेते हैं। संकुचित मोह की दीवार टूटने पर असीम प्रेम में आत्मा प्रतिष्ठित होती है। श्री रास (प्रकरण ४२-४३) में लोक-लाज-मर्यादा के समस्त बन्धन और नारी का सम्पूर्ण रूप-शृंगार भी छिन्न भिन्न हो जाता है तो वह परमात्मा में एकाकार होती है। आत्मा के चिन्मय स्वरूप के अंग-अंग का स्पर्श करते हुए प्रियतम उसके अहं को, उसके स्थूल स्वरूप बोध एवं मोह को मिटा देते

-श्री रास-

प्राक्कथन

संसार के सभी धर्म ग्रथों में श्रीमद्भागवत को विशेष स्थान प्राप्त है। उसमें श्री रास पंचाध्यायी को अनन्य प्रेम के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में मान्यता प्रात है। अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है। असंख्य टीकाओं के बीच महामति के श्री रास का टीकानुवाद उपस्थित करना ही हमारा उद्देश्य नहीं। शुकमुनि आवेश में रास लीला का वर्णन करते हुए राजा परीक्षित के प्रश्न करने के कारण रुक गए। उनका रास वर्णन अधूरा रहा। राजा के प्रश्न का जो उत्तर उन्होंने दिया उससे उनका समाधान भी न हो पाया। वह प्रश्न आज भी ज्यों का त्यों जीवंत है। यही नहीं, प्रत्येक बात को व्यवसाय बना डालने वालों ने अतिरंजित टीकाओं और चित्रपटों के माध्यम से उसे जन-जन तक पहुंचा तो दिया परन्तु लोक में उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं रही। लोगों ने इसका सतही अर्थ ही लिया। इन सब बातों को ध्यान में रखकर रास के रहस्य को महामति के तारतम ज्ञान की दृष्टि से प्रकट करना आवश्यक हो गया, ताकि भव-रोग से मुक्त करने वाली ओषधि का उचित प्रयोग हो सके।

महामति का तारतम ज्ञान सभी धर्म ग्रथों के गूढ़ार्थ प्रकट करने की कुंजी है। उनके श्री रास का अध्ययन करके इस मधुर प्रसंग के विषय में सभी शकाएँ दूर होती हैं। 'श्री रास' महामति प्राणनाथ प्रणीत 'कुलजम स्वरूप'—'तारतम वाणी' का पहला ही ग्रंथ है। उनकी मातृभाषा गुजराती थी—जिसमें इस ग्रंथ का 'अवतरण' हुआ। महामति अपने सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी की पुण्य-तिथि के अवसर पर मेला का आयोजन कर रहे थे। किसी चुगल के बहकावे में आकर जाम राजा ने उन्हें नजरबंद कर दिया। प्रभु-प्रेम, सद्गुरु-स्नेह एवं सुन्दर साथ की सेवा में पगे मेहेराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ) के मन पर इसका बड़ा गहरा आघात लगा। अपने 'हब्सा' प्रवास को उन्होंने माया की एक चाल माना। इसीलिए इसमें पहला प्रकरण मोहजल का है। जिसका अभिप्राय यह है कि संसार के सभी आकर्षणों, माया-मोह एवं पिंड-ब्रह्मांड के ससीम नश्वर पदार्थों एवं व्यवहारों से ध्यान हटाकर 'रास' का आनन्द प्राप्त हो सकता है। ऐहिक

ऐषणाओं को तृप्त करने के साधनों की तुलना 'रास लीला' से करना उसी प्रकार है, जैसे अनाड़ी साधक मंत्र-सिद्धि के अनुचित प्रयोग से स्वयं ही उसका शिकार बन जाय।

महामति प्राणनाथ जी ने अपने 'प्रकाश' 'कलश', 'किरंतन' आदि अनेक ग्रंथों में रास लीला संबंधी अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। राजा परीक्षित के प्रश्न एवं शुकदेव मुनि के असमंजस के कारण अधूरा विवरण महामति ने पूर्ण किया। महामति के तत्कालीन प्रवीण शिष्यों में श्री लालदास जी एवं नवरग स्वामी तथा महाराजा छत्रसाल जी के सुपुत्र हिरदे साह ने अपने ग्रंथों में रासलीला का वर्णन बड़ी मार्मिक शैली में किया है। इन ग्रंथों के पढ़ने से रास के तीन स्वरूप का सम्यक् बोध होता है। उनके स्पष्टीकरण से इस भगवद् प्रेम-लीला संबंधी शंकाए निर्मूल होती हैं।

रासलीला के आनन्द का अनुभव प्राप्त करने के लिए कुछ आधारभूत सूत्र हैं। सबसे पहला सूत्र है स्त्री-भाव से पूर्ण समर्पण। मनुष्य (चाहे वह पुरुष हो या स्त्री) 'मैं पन' का अहंकार भार जीवन भर ढोए चला जाता है। सखी, पतिव्रता या पत्नि 'भाव में वह अहंकार गलने लगता है। पति के व्यक्तित्व के दायरे में पत्नि का व्यक्तित्व निमज्जित हो जाता है।

"पुरुष पने ए निध न आवे, अबला पने लीजे अंग।"

अंग-प्रत्यंग में व्याप्त जो 'मैं' है उसका निराकरण परमात्मा के स्वरूप और 'मैं पन' के प्रवेश से ही सम्भव है। दूसरा सूत्र काम भाव का ऊर्ध्वीकरण है। संसार की ओर इस शक्ति की प्रवृत्ति भेद-स्थिति उत्पन्न करती है। परन्तु यह काम उर्ध्वगामी बन कर प्रियतम तक की उड़ान में आत्मा को समर्थ बना देता है। योग और तप से नहीं, महामति वंशी की मधुर तान छेड़कर काम भाव का उद्दीपन और ऊर्ध्वीकरण करते हैं। तीसरा सूत्र है—मोह का असीम प्रेम में उन्नयन। पूर्ण समर्पण की राह में मोह ही प्रतिरोध उत्पन्न करता है। पुत्र-कलत्र, पति-परिवार का मोह, लोक-लाज-मर्यादा सब नारी को प्रिय लगने वाले उसके गुण और शृंगार माने जाते हैं। प्रियतम के मिलन के लिए यह सब उपादान व्यर्थ हो जाते हैं। चीर-हरण लीला का संकेत और अभिप्राय ओढ़ी हुई मान्यताओं का निराकरण है। श्री रास के उथले वचन उस मोह की टोह लेते हैं। संकुचित मोह की दीवार टूटने पर असीम प्रेम में आत्मा प्रतिष्ठित होती है। श्री रास (प्रकरण ४२-४३) में लोक-लाज-मर्यादा के समस्त बन्धन और नारी का सम्पूर्ण रूप-शृंगार भी छिन्न भिन्न हो जाता है तो वह परमात्मा में एकाकार होती है। आत्मा के चिन्मय स्वरूप के अंग-अंग का स्पर्श करते हुए प्रियतम उसके अहं को, उसके स्थूल स्वरूप बोध एवं मोह को मिटा देते

हैं और अपने चिन्मय स्वरूप को व्यक्त एवं स्थापित करते हैं। महामति के सिणगार ग्रंथ की यह चौपाइयां इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं—

"जो लों जाहेरी अंग न मरें, तोलों जागे न रूह के अंग।
ए मज़कूर रूह अंग होवहीं, अपने मासूक संग।
सरूप ग्रहिये हक का, अपनी रूह के अन्दर।
पूरन सरूप दिल आइया, तब दोउ उठे बराबर॥

सिनगार प्र०-२५/६६, ६१

परमात्मा के जिस अंग का आत्मांगनाओं ने दर्शन किया उनका का वही अंग जाग्रत होकर मिलने को आतुर हो उठा। अन्त में पूर्ण स्वरूप उल्लसित होकर प्रियतम में जा मिला। तब पाया 'मैं नहीं' हूँ। अंग-अंग में वही समा गया है। 'मैं' 'वह' बना तो बूंद ने सागर की-सी विशालता का अनुभव किया।

महामति ने बार बार सावधान किया है कि श्री रास के किसी भी खेल (रामत) अथवा लीला को स्थूल शरीर का व्यवहार न मान लिया जाए। उनका मोहजल का प्रथम प्रकरण पिंड ब्रह्मांड से ऊपर उठाकर योगमाया के चिन्मय ब्रह्मांड में प्रवेश दिलाता है। वहाँ चिन्मय का चिन्मय से मिलन, प्रणय लीला और एकाकार होना ही रास लीला है। संसारी शब्दों के इन्द्रजाल से भ्रमित बुद्धि आध्यात्मिक उड़ान एवं परमानन्द से वंचित कर देगी। संसार के ऊंचे से ऊंचे शब्द भी उस लीला और स्वरूप का वर्णन करने में असमर्थ इसलिए है कि वह चिन्मय लीला को स्थूल बना कर रख देते हैं :—

"जोई जोई वचन आणूं घणूं ऊंचा, पण न आवे वाणी मां तेह।"

सांसारिक शब्दों में वर्णन करने का अभिप्राय तो यह था कि मृण्मय चिन्मय बन जाता, परन्तु हुआ इसके विपरीत ही। चिन्मय लीला ही स्थूल बन कर रह गई। महामति ने अनेक स्थलों पर ऐहिक शब्दों की सीमा पर अपना क्षोभ व्यक्त किया हैं:—

"चुप किए भी ना बने , और कह कह रुह पछतात ॥ "

अक्षर ब्रह्म की क्षणभंगुर सृष्टि के जिन व्यवहारों और व्यापारों के सुख से मोहित होकर आत्माएं उलझ गई थीं, उन सुखों को अपने चिन्मय आध्यात्मिक रूप में, अनंत, अखड रूप में पाकर ही वे तृप्त, संतुष्ट और आसक्ति मुक्त हो पाईं। अखंड प्रेम का प्रकाश पाकर ही अहंकार, मोह एवं कामनाओं का अंधकार मिटता है। ससीम का बांध तोड़ने में इस तरह श्री रास वर्णन सहायक बनता है।

"चुप से तो कछु कहा भला, रुह कछु पावे लज्जत ॥ "

ऐहिक शब्दों का आधार देकर आत्मा को ऊंची उड़ान के लिए तैयार करना 'श्री रास' का उद्देश्य है।

महामति ने अपने प्रकाश ग्रन्थ की बेहद बाणी में एक और तथ्य की ओर भी संकेत किया है। यह रास लीला स्वप्न की लीला है। अक्षर ब्रह्म की स्वप्न सृष्टि में जो लीला उन्होंने देखी, उसी में उनका मन रम गया। उसी को स्वयं अनुभव करने के लोभ का वे संवरण न कर पाई। अक्षरातीत प्रियतम ने उनके स्वप्न में प्रवेश करके उनकी मनोकामना को 'मायानुरागिनी' कहलाने के कलंक से भी बचा लिया :—

"धनी ना जेम घनवट, लीधी भली पेरे सार ॥
आ दुख रूपिनी ना मुख मांहें थी, बीजा कोण काढ़े बिना आधार ॥"

श्री रास में स्वप्न संसार का सुख दिया। फिर विरह का दंश देकर फरामोशी की नींद से झिंझोड़ा और जगा कर परमधाम की ओर ले चले। इस प्रकार श्री रास की क्रीड़ा जागनी की पृष्ठभूमि बनती है। स्वप्न की लीला जागने पर निःस्सार हो जाती है, उसी प्रकार जागनी के अवसर पर रास का का सुख गौण बन जाता है। इसीलिए भी रास के चितवन को सोपान की तरह प्रयोग में लाकर ब्रह्मात्माएं इससे भी ऊपर उठ कर परमधाम में जागती हैं और प्रियतम के अखंडानन्द का उपभोग करती हैं तब तक इस संसार में रहते हुए भी परमधाम का ही आनन्द पाने की उनकी अभिलाषा बनी रहती हैं :—

"अनेक सुख दिए खेल में, पर इन सुख ऐसी बात।
एक बल पड़ा आए बीच में, ताथे एह सुख रुहें न चाहत ॥"

महामति का उद्देश्य आत्माओं को जागनी लीला में प्रतिष्ठित कराना है—उसमें 'श्री रास' ग्रंथ माया और मोह से मुक्त करने की भूमिका निबाहता है।

'महामति' अक्षरातीत ब्रह्म की अंगना 'इन्द्रावती' हैं, जो स्वयं 'महारास में एक कुशल नायिका थी। संसार के मरणधर्मा जीवों को ब्रह्म लीला का रसास्वादन कराने के महान उद्देश्य से प्रेरित हो कर उन्होंने स्वानुभव को सांसारिक शब्दों में व्यक्त किया। उनका यह दावा 'क्या देखी हम दुनियां, जो इनको न करे अखण्ड"—तभी पूरा होता है यदि इसी जीवन में आत्मानुभव से रास का आनन्द लिया जाय। इसके लिए रास लीला के प्रयोजन, निहित दर्शन एवं परंपरित शुद्ध अर्थ सहित इस ग्रन्थ का प्रकाशन आवश्यक था।

डॉ० रणजीत कुमार साहा एवं डॉ० हरेन्द्र प्रसाद वर्मा ने अडिग उत्साह एवं अथक परिश्रम करके श्री रास के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इस

ग्रंथ का सम्पादन किया है। आज तक प्रकाशित श्री रास ग्रंथ की अनेक टीकाओं का अध्ययन करके, उनके आलोक में—रास के सम्यक् अनुशीलन और उसके दर्शन सहित—अपनी-अपनी भूमिकाओं को प्रमाणों से पुष्ट एवं स्पष्ट किया है।

'श्रीरास' के अर्थ आज से लगभग छः वर्ष पूर्व दिल्ली के शक्तिनगर स्थित प्रणामी मन्दिर में, वाणी विशारद श्री पन्ना लाल जी अरोड़ा के सान्निध्य में बैठकर मैंने लिखे थे। उचित सम्पादन एंव संयोजन के अभाव में इसका प्रकाशन न हो पाया था। इन अंशों को महाराज श्रीकृष्ण प्रियाचार्य, श्रीकृष्ण प्रणामी मन्दिर भरोड़ा, गुजरात और धर्मगुरु पण्डित प्यारेलाल जी शास्त्री, पद्मावतीपुरी धाम, पन्ना ने भी प्रकाशन पूर्व देख कर प्रसन्नता व्यक्त की है। उनके सुझावों को भी ध्यान में रखकर इसका परिशीलन किया गया है। ब्रह्मलीन पं० कृष्णदत्त जी शास्त्री की भूमिका को उनके सुपुत्र डॉ० बुद्धि प्रकाश जी वाजपेयी ने उपलब्ध कराकर हमारी बड़ी सहायता की है। इसी तरह आवरण पृष्ठ पर सुमुद्रित रास-चित्र की मूल प्रति प्रदान करने के लिए हम श्री छोटे लाल भराणी, दिल्ली के बहुत ही आभारी है। मिशन के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री श्याम बिहारी दुबे के सहयोग से भी हम अनुग्रहीत हैं।

जिन महानुभावों ने 'श्रीरास' के मुद्रण, प्रकाशन एवं प्रसार के लिए तन, मन, धन से श्रीप्राणनाथ मिशन को योगदान दिया—उनमें हम श्री मुरलीधर जी भंडारी बंबई, श्री मुल्कराज कटारिया, जयपुर एवं श्री विट्ठल दास भगत के प्रति विशेष आभार व्यक्त करते हैं। विश्व-शांति, सद्धर्म एवं मानव-बन्धुत्व की भावना को बढ़ावा देने के लिए मिशन कार्यरत है। मानव विवेक को जगाने में 'श्रीरास' ग्रन्थ का प्रकाशन एक सार्थक प्रयास है। महामति प्राणनाथ से हम विनय करते हैं कि वे हममें 'महामति' को जगाएं जिससे हम रास का अनुभव प्राप्त कर 'जागनी' के लिये अग्रसर हो सके। 'श्री रास' ग्रन्थ के अध्ययन-मनन से पुण्यात्माएं उद्बुद्ध होंगी इसी कामना के साथ——

महामति का एक सेवक,
—कश्मीरी लाल भगत
उप प्रधान,
श्री प्राणनाथ मिशन,

भूमिका

—ब्रह्मलीन पं० कृष्णदत्त शास्त्री

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/७)

वह परब्रह्म परमात्मा सब ईश्वरों से भी महान ईश्वर है, समस्त देवों का परम देव है। वह परब्रह्म अपनी अनन्त शक्तियों के सहित परमधाम में विराजमान है। 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' (श्वे० ६/८) जो अपनी परा नाम की विविध शक्तियों से समन्वित है वह लीलामय सर्वशक्तिमान परब्रह्म है। शक्ति और शक्तिमान का कभी भेद नहीं माना जाता, अतएव वह शक्ति सहित होने से युगल स्वरूप है। पूर्ण ब्रह्म के अंगस्वरूप ही उनके एक अक्षर ब्रह्म स्वरूप हैं—जो सृष्टि रचने व नष्ट करने का कार्य करते हैं।

अक्षर ब्रह्म चतुष्पाद विभूति से युक्त है जिनमें उसके तीन पाद तो सदा अखण्ड वर्तमान हैं। चतुर्थ पाद जो 'अव्याकृत' है उसमें असंख्य विश्वों का उदय लय होता रहता है।[1] विभूति का अर्थ होता है—विशेष ऐश्वर्यों का समन्वय। चतुष्पाद विभूति अनन्त ऐश्वर्यों का धाम है। अनन्त लीला वैचित्र्य से ओत-प्रोत होने के कारण इसको विभूति ब्रह्म कहते हैं। अक्षर ब्रह्म का स्वरूप कामनामय होने से उनके मन में यह इच्छा उदित होती है कि परब्रह्म स्वरूप की शक्तियों के साथ जो विशेष रसमयी लीला होती है उसका रसास्वादन करें। उधर अक्षरातीत परब्रह्म की शक्तियों को यह जिज्ञासा होती है कि अक्षर ब्रह्म की सृष्टि को बनाने बिगाड़ने की लीला देखी जाय। इन दोनों के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए यह जगत् अक्षर ब्रह्म के स्वप्न में रचा गया जिसमें स्वयं अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा कृष्ण रूप में अवतरित हुए और शक्तियों को गोपिकाओं की चित्तवृत्ति में समाहित कर रास क्रीड़ा की।

अक्षर ब्रह्म की चतुष्पादविभूति के अन्तर्गत 'ब्रजलीला तथा रासलीला

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥ 3-4, अध्याय 31, यजुर्वेद

और जागनी लीला' इन तीनों को अखण्ड किया गया है। यद्यपि लीला क्रम से देखें तो ब्रजलीला को प्रथम अखण्ड होना चाहिए था किंतु रासलीला में अक्षर ब्रह्म को किशोर लीला का अनुभव कराया गया है और ब्रह्मांडों को अक्षर ब्रह्म के अन्तर्गत रचा गया है अतः अक्षर ब्रह्म के अनुभव को प्राथमिकता और प्रधानता प्राप्त होना स्वाभाविक था।

जगत् का एक नियम चला आ रहा है कि—जो जिसके अधिकार में होता है, वहां पर उसी की प्रधानता होती है। हम सब जिस प्रकृति क्षेत्र में बसते हैं, वहां प्रकृति देवता ही प्रधान रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। यहां राम आयें तो सीता देवी को प्रथम स्थान प्राप्त है। कृष्ण परमात्मा आयें तो राधा महारानी का प्रथम नाम 'राधा कृष्ण कहो,' 'शिव जी को गौरीशंकर कहो'। माया-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष, माता-पिता, स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन आदि नामों में प्रकृति को ही प्राथमिकता प्राप्त हो रही है। इस प्रकार प्रकृति के जगत् में ब्रह्म को भी प्रथम स्थान प्राप्त नहीं है।

अक्षर ब्रह्म के स्वप्न में ब्रह्म शक्तियों को खेल देखने के लिए भेजा गया और अक्षर ब्रह्म को परमधाम की किशोर लीला देखने के लिए मनोरथ हुआ था। अतः अक्षर के स्वप्न में अक्षर ब्रह्म ही मुख्य द्रष्टा बने और उनकी भावना वाले रासमण्डल को सर्वप्रथम अखण्ड होने का सौभाग्य मिला। ब्रजलीला में सखी वृन्द ने अक्षरातीत के साथ रहकर अक्षर ब्रह्म की बाल-लीला का अनुभव किया और रासलीला में अक्षर ने अक्षरातीत प्रभु के साथ तथा सखियों के साथ रहकर दोनों रूपों में किशोर लीला का अनुभव किया। परन्तु अक्षर ब्रह्म की भूमिका में अक्षर की लीला का अनुभव ब्रजलीला की अपेक्षा उच्च पद पा गया। अतः ब्रजलीला अक्षर के सबलिक के कारण में अखण्ड हुई तो रासलीला को महाकारण में उच्च स्थान मिला और प्राथमिकता भी मिल गई। इस कारण तारतम स्वरूप वाणी में श्रीरास ग्रन्थ प्रथम रखा गया है। रासलीला की दूसरी विशेषता यह भी है कि ब्रजलीला के कृष्ण में अनेक अवतारों के अंश थे तथा गोलोकनाथ और भूमा विष्णु भी साथ थे। चार व्यूह भी कार्य कर रहे थे। परन्तु रास के स्वरूप में केवल अक्षर और अक्षरातीत दो ही धामपतियों का आत्म-बल काम कर रहा था। तीसरी विशेषता यह थी कि वास्तवी रासलीला को ही अक्षरब्रह्म ने अपने चित्त स्थानीय सबल ब्रह्म में अखण्ड किया है, व्यावहारिकी रासलीला को नहीं। अतः लिखा गया है —

'अक्षरब्रह्म हृदये वास्तवीं विद्धि शंकरे'

हे पार्वती ! अक्षर ब्रह्म के हृदय में जो अखंड रास हो रहा है, वह वास्तवी

लीला का स्वरूप है। रासलीला की चौथी विशेषता यह है कि रासलीला का स्थान भी इस विश्व में नहीं था, किंतु केवल ब्रह्म की आनंद योगमाया ने उसे अपने महाकारण में रचाया। और प्राकृतिक जगत् का लय हो जाने से ब्रह्म वासनाओं को भी कहीं नहीं जाना पड़ा था। यद्यपि इस जगत् के आचार्य मौन हैं, परन्तु 'निष्कलंक प्रभु' महामति ने इस कलंक को भी नहीं रखा और शास्त्रों के वचनों की साक्षी देकर सबके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। भागवत (3/5/24-25) में शुकदेव जी ने गूढ़ संकेत किया है यथा—

सर्वा एष तदा द्रष्टा नापश्यत् दृश्यमेकराट्।
मेने सन्तमिवात्मानं सुप्त शक्तिरसुप्तदृक ॥

रास लीला के समय द्रष्टा अक्षर पुरुष ने इस जगत् को नहीं देखा। कारण समाधिस्थ योगी की भांति वे 'सुप्तशक्ति' बन गए, यद्यपि अंतर में असुप्तदृक् थे। अर्थात् रासलीला को देखने में लगे थे और जगत् था ही नहीं, तब देखते क्या ? ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (प्रकृति खण्ड) के अनुसार—

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून्।
शुद्ध सत्वस्वरूपी च कृष्णे लीनश्च निर्गुणे।
गोपा गोप्यश्च गावश्च तथान्ये नराधिपाः।
सर्वे लीनाः प्रकृत्यां च प्रकृतिः प्रकृतीश्वरे॥
महद् विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्र विष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च श्री कृष्णे नेत्र पद्ममयो॥

नारायण शंकर, शुद्ध, सत्वस्वरूपी विष्णु—ये सब कृष्ण के निर्गुण स्वरूप में जाकर लय हो गए। गोपी, गोप, गाय, वत्स तथा जो भी राजा-प्रजा थे, वे सब-के-सब प्रकृति में जा मिले। प्रकृति ईश्वर में जा मिली। सब विष्णु महाविष्णु के रूप में जा मिले। महाविष्णु ने श्रीकृष्ण के नेत्र कमल में स्थान प्राप्त किया।

यह प्राकृत लय रासलीला के समय में हुआ है, किंतु इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। यह लय कब तक रहा, यह भी लिखा है—

प्रकृतेः वासरं यावन्मितं कालं प्रकीर्तितम्।
पुनः वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः॥
पुनः प्रजागरे तस्युः पुनः सृष्टि भवेत् पुनः।

"अल्पकालिक प्रलय प्रकृति के एक दिवस पर्यन्त रहा, पुनः रासरात्रि का जैसे ही उपराम हुआ कि तत्काल जैसा पहले था, वैसा जगत् बन गया। परंतु इस रहस्य को कोई न जान पाया। सब यही जानते रहे कि प्रलय हुआ ही

नहीं। जब वंशी ध्वनि की गयी थी, सांयकाल का समय था। पुनः विश्व रचा गया तो यहां पर वही ब्रह्मांड देखने में आ रहा था और पुनः व्यावहारिकी लीला के लिए ब्रज मंडल की रचना की।"

जिस समय रासलीला हो रही थी, उसका प्रतिभास अक्षर के अव्याकृत के महाकारण में पड़ रहा था, जिसे देखकर श्रुतियों के परात्म स्वरूपों ने जो अव्याकृतस्थ थे, स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर श्री कृष्ण जी ने इच्छित वर माँगने को कहा। श्रुतियों ने कहा—'महाराज! नारायण आदि सगुण ब्रह्म में तो हमारी ब्रह्म भावना ही नहीं है। हम तो आपके निर्गुण ब्रहमानंद स्वरूप के साथ विहार करना चाहती हैं'। श्री कृष्ण जी ने कहा—'इस मंडल में तो नहीं, किंतु दूसरा मंडल रचकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण किया जाएगा। चलो, ब्रज में तन धारण करो।' बस, इस प्रकार से श्रुतियों के मनोरथ पूरा करने के लिए जो पुनः व्यावहारिकी लीला की गई है उसी को सरस्वती रूप श्रुतियों के लिए रचा जाने के कारण सारस्वत कल्प की लीला करके लिखा है। वस्तुतः कल्प तो श्वेत वाराह ही चला आ रहा है। शास्त्रों के इस रहस्य की ओर बहुत ही कम विद्वानों का ध्यान गया है!

व्यावहारिकी लीला में भी अनेक अवतारों के अंशरूप नहीं थे। वृन्दावन के श्री कृष्ण के साथ अक्षर ब्रह्म की आत्मा भी विद्यमान थी। इसलिए 'भगवानपि' शब्द का प्रयोग हुआ है। एक के साथ जब कोई आ मिलता है—तभी 'अपि' शब्द का प्रयोग उचित होता है। अतएव रासलीला में अन्य तेज राशियों का समावेश नहीं माना गया। जब अनेक अवतारों के अंश ही नही थे, तब अन्य प्रकार की गोपिकाएँ किसलिए होतीं। अतः जनकपुरी, कौसलपुर की, अथवा नागपत्नी, ऋषि पत्नी आदि का समावेश रास में नहीं माना गया। क्योंकि रास तो श्री कृष्ण की अंतरंग लीला थी। इसमें बहिरंग वृत्तियों को स्थान देना उचित नहीं था। तथापि ब्रजलीला की अपेक्षा रासलीला में अनेक रहस्य भरे पड़े हैं। अतः उसको अधिक उत्तम माना गया है। रासलीला में एक रहस्य और छिपा पड़ा है, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह यह था कि प्रथम ब्रह्मानंद में जो रास रमण हो रहा था, वह अधिक उल्लास प्रदान करने लगा। विरह की पुट देकर उसके प्रति सचेत करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण अंतर्ध्यान हो गए। और फिर दूसरे प्रकार से रस प्रदान किया। ब्रह्मानंद में प्रेम का ही उल्लास रहता है। जब उसे गोपिकाएँ न संभाल सकीं तो अंतर्ध्यान के द्वारा भजन भावना उत्पन्न कर दी। ब्रह्मानंद की अपेक्षा भजनानंद में अधिक रस रहता है। 'ब्रह्म

वै रसः । रसो वै सः—' इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म को रस रूप ही बतलाया है। 'रसाणां समूहः रासः'—रस की राशि जहां पर बिखर रही हो, रस ही रस छलक रहा हो, उसे 'रास' कहते हैं और उसकी जो लीला है—रासलीला कही जाती हैं—

—ब्रह्म ह्रदं नीता मग्ना चोद्धृताः ।
ब्रह्मानन्दान्महानन्दो भजने वर्तते स्पृहः ।
तारतम्य च विज्ञातुं प्रदर्श्योद्धृतवान्ततः॥
—वल्लभाचार्य—श्री सुबोधिनी टीका ।

वल्लभाचार्य ने भी भजनानंद को ब्रह्मानद की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया है, ब्रह्मानंद रस के सागर में जब अधिक मग्न देखा तो वहां से बचाकर अपने दयापूर्ण महासागर में लाकर तृप्ति प्रदान की—

'आया रूप कर नए सिनगार, भजनानन्द सुख लियो अपार ।
४०, प्र० ३७, प्रकाश हिन्दुस्तानी

रात्रयो ह्यधिदैवक्यो मयि तिष्ठन्ति ताः प्रियाः ।
पश्यध्वं रमयिष्यामि तासु वः पद्मलोचनाः ॥

ब्रह्मानंद लीला में प्रेम रस का ही अधिक भान होता है किंतु आधिदैविकी रात्रि में दया का स्रोत खुल जाता है। 'रा' दानार्थक धातु से रात्रि शब्द बनता है। 'रा' दानेन त्रायते इति रात्रि। दया में यही विशेषता होती है—देते भी रहना और रक्षा भी किए रहना। यह दया सागर का गुण है। 'दयानो न लाधे पार'—अपार दया का स्रोत खोल दिया जो ब्रह्मरात्र-ब्रह्मदान पर्यंत चालू रखा। बस, इसी को पुनः भजनानंद में पूर्ण किया—

'जब जोस लियो खेंचकर, तब चित चौंक भई अक्ष्यर।
कौन वन, कौन सखी, कौन हम, यों चौंक के फिरी आतम।
रास आया मिने जाग्रत बुध, चुभ रही हिरदे में सुध॥
—३५-३६ प्र० ३७—प्रकाश हिन्दुस्तानी

अंतर्ध्यान के समय अक्षर ब्रह्म की आत्मा में एकदम चौंक उत्पन्न हो गई। अरे हमने क्या-क्या देखा और वह सब क्या था? इस प्रकार कल्पना बुद्धि में अंकित होने से रासलीला को अक्षर ने सदा के लिए अखंड बना लिया। जो-जो लीला विहार रासमंडल में होता रहा, वह सब मंडल के अखंड होने पर ज्यों का त्यों दिल में भासने लगा। बस अब वह रासलीला अखंड हो गई। ब्रह्मानंद की अपेक्षा भजनानन्द में अधिक तृप्ति मिली। ब्रह्मानंद साधनसापेक्ष

था। भजनानंद में अंतर में दया उमड़ पड़ी और वह महासागर की उर्मि थी। उसका पार नहीं रहा, इसको अपार कहा गया।

योगमाया के मंडल में जो लीला विहार होता रहा, वही जब अक्षर ब्रह्म के द्वारा अविनाशी रूप में धारण कर लिया गया, तब उसका नाम रास का ब्रह्मांड हो गया। श्रीरास ग्रंथ में बहुत कुछ विस्तृत विवेचन है जो मूल ग्रंथ के अध्ययन से ही विदित होगा। इस जगत् के जीव ८४ लाख योनियों को पार कर पांच ज्ञानेन्द्रियों वाले शरीर से ही श्री कृष्ण की अनन्य भक्ति प्राप्त किया करते हैं ऐसा कहा जाता है। संभवतः इसीलिए प्रथम ८४ चौपाई का प्रकरण ही रखा गया, तदुपरांत पांच प्रकरणों के द्वारा अज्ञान को दूर कर रासलीला में प्रवेश होता है, अतः उनको पंचरोशनी के प्रकरण कहकर भी पुकारते हैं। यह थोड़ा-सा प्रकाश रासलीला के ब्रह्मांड के विषय में डाला गया है। दूसरा ब्रह्मांड ब्रजलीला का कहा जाता है। जब रास की पुनः पुनः स्मृति अक्षर ब्रह्म को विभोर बना रही थी, उसी समय ब्रजलीला भी ध्यान में आने लगी और जितने भी बालचरित्र थे वे सब अक्षर के चित्त में अंकित होने पर यह दूसरा ब्रजलीला-मंडल भी अखंड हो गया। श्री प्राणनाथ जी ने ब्रजलीला का विशेष वर्णन नहीं किया, क्योंकि नरसी मेहता आदि ने वर्णन तो कर ही रखा था और ब्रजलीला का सदाशिव जी ने पहले ही यथायोग्य प्रतिपादन किया था। अतः उन्हीं सबको मान्य रख लिया है।

अख्यर चित्त में ऐसो भयो ताको नाम सदाशिव कह्यो ॥

४३/प्र० ३७/प्रकाश हिन्दुस्तानी

श्री कृष्ण की रासलीला का रहस्य प्रकृति से परे है, अतः उसे सब लोग नहीं समझ पाते। जब कृष्ण लीला प्राकृत् जगत में होती है तब अन्य लोगों के अनुभव में आती हैं। माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, सनत्कुमार संहिता, सदाशिव संहिता, वाराह संहिता, वृहद्वामन पुराण इत्यादि ग्रन्थों ने रासलीला के आध्यात्मिक रहस्य पर अच्छा प्रकाश डाला है—जिसे पाठकों को इस सन्दर्भ में अवश्य देखना चाहिए।

'श्री रास' अनुशीलन

—डा० रणजीत कुमार साहा

'श्रीरास' महामति की संकलित 'तारतम वाणी' का प्रथम ग्रन्थ है। इसमें महामति ने 'श्रीरास' की लीला महिमा को अपने अंतर-संस्पर्श से सींचा है। रास-मंडलाधीन पुण्यात्मा और परमात्मा (ब्रह्म सृष्टियां और श्री कृष्ण) के दिव्य और चिन्मय महामिलन की अंतरंग गाथा ही 'श्री रास' में अवतरित हुई है। जिसे महामति प्राणनाथ ने अपने आशय और स्वानुभूत चेतना को व्यापक सन्दर्भ प्रदान करते हुए सुप्रतिष्ठित किया है।

श्रीमद्भागवत (दशम स्कन्ध) और उसमें निहित 'रास पंचाध्यायी, वैष्णवों का सर्वाधिक पूज्य ग्रन्थ और परवर्त्ती वैष्णव सिद्धांत, साधना और साहित्य का अक्षय कोश और प्रेरक स्रोत रहा है। नारद मुनि की पावन प्रेरणा से व्यास जी ने इसकी रचना की थी। वेद शास्त्र तथा अनेक धर्मग्रन्थों के प्रणयन के उपरांत भी महर्षि द्वैपायन व्यास का मन अन्ततः श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन कर ही आनन्दित हुआ। प्रकांड मनस्वी और आत्म ज्ञानी शुकदेव मुनि तो 'रास पंचाध्यायी' के पर्याय ही हो गए। ये भागवत पुराण के वेत्ता थे और इन्होंने इसे कथा रूप में परीक्षित को सुनाया था और इसका साप्ताहिक पारायण करते हुए व्यापक प्रचार किया था। महामति की सूचनाओं से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि शुकदेव को इस (रास) लीला की निवृत्ति-परता ही अभीष्ट थी। उनसे किसी मुमुक्षु (परीक्षित अथवा असंख्यात परम श्रेणी के मुनिजन) के सामने शृंगारपूर्ण काम-भावनाओं के उपदेश का विचार

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण के वक्ता जीवन्मुक्त तथा परमयोगी शुकदेव (वैयासिक) गोदोहन काल से अधिक किसी गृहस्थ के द्वार पर नहीं ठहरते थे। वे स्त्री-पुरुष के भेदाभेद ज्ञान से अतीत पहुँच चुके थे—'स गोदोहन मात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम ।। 1/4/8

तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्री पुम्भिदा न तु सूतस्य विविक्त दृष्टेः ।।

1/4/4, श्रीमद्भागवत

करना अपनी बुद्धि को तिलांजलि देना है। इसका भी उल्लेख मिलता है कि शुकदेव मुनि परीक्षित के समीप रहते हुए भी 'रासलीला के काल में' अपने को भगवत्-सन्निधि में अनुभव कर रहे थे। रासलीला काल में श्रीकृष्ण के निकट पास खिंचे जाने का जो भाव गोपियों के मन में प्रकट हुआ था, वही भाव शुकदेव के मन में 'गोपीभाव' की उपासना के कारण प्रकट हुआ था।

रासप्रसंग[2] श्रीकृष्ण लीला का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और कदाचित् विवादास्पद प्रसंग भी रहा है। आरम्भ से लेकर अन्त तक इसकी मोहक और मञ्जुल काव्य-धर्मिता, श्रीकृष्ण का उदात्त प्रेम, गोपियों का कमनीय समर्पण और समस्त वनराजि की रागानुरंजित शोभा से ओतप्रोत 'रासपंचाध्यायी' भक्त ज्ञानी और सहृदय काव्य-पिपासुओं—तीनों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण कृति है। वैष्णव भक्तों ने इस रासलीला को ज्ञान, कर्म और भक्ति मार्ग की सरणि माना है। इस लीला का उपास्य कामविजयी है, इसलिए इसके द्वारा काम विजय-रूप फल प्राप्ति मानी जाती है।[3] रासलीला के श्रवण मात्र से ही भक्त के मन के सम्पूर्ण काम विकार नष्ट हो जाते हैं।

संस्कृत और हिन्दी में ही नहीं, प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं में श्रीमद्भागवत की प्रेरणा ग्रहण कर मौलिक कृतियों का प्रणयन किया है, विभिन्न साम्प्रदायिक भाष्य और टीकाएं आदि लिखी गई हैं। वैष्णव भक्ति आन्दोलन तथा कृष्णभक्ति परम्परा के प्रेरक और प्रस्थान बिंदु श्रीकृष्ण हैं, और उनका ललित चरित है। कृष्ण चरित में 'रासलीला' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो भागवत महापुराण के पूर्ववर्त्ती या परवर्त्ती पुराणों में अपनी विभिन्न और अन्यान्य विशेषताओं और मौलिक उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत की गई है।

---

2. (क) 'रास शब्द का मूल रस है। भगवान श्रीकृष्ण ही रास स्वरूप (रसराज) हैं— रसो वै सः। जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस विभिन्न रसों के रूप में अत्यधिक रसों का परिपाक और समास्वादन करे, एक ही रस समूह में प्रकट हो स्वयं ही आस्वाद-आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलंबन एवं उद्दीपन के रूप में क्रीड़ा करे, उनका नाम 'रास' है। रास पंचाध्यायी, रासलीला रहस्य—मानस शास्त्री, पृ० 4

(ख) गीतगोविन्दकार जयदेव भी प्रायः इसी आशय और व्यवस्था से सहमत है, ऐसा उनकी इन पंक्तियों से मुखरित होता है—

करतल ताल तरलय लयावली कयित कतस्वन वन्धे।
रास रसे सह नृत्यपरा हरिणा युवति प्रशशंसे ॥6।अष्टपदि 4

3. रास पंचाध्यायी का अन्तिम श्लोक इसी घोषणा की पुष्टि करता है—

भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥10/40/33

हरिवंश पुराण में रासलीला प्रसंग (२.२०) अपनी संक्षिप्तता में भी परिपूर्ण है। रासलीला को इसमें हल्लीसक क्रीडन[4] कहा गया है। विष्णुपर्व (२०.१५) में शरद् ऋतु की मधु ज्योत्स्ना का सौंदर्य तथा श्री कृष्ण की मानसिक अवस्था का वर्णन अत्यन्त सीमित शब्दों में करने वाले श्लोक से 'हल्लीसक' की संक्षिप्तता की परिचय मिलता है। कृष्ण शारदी निशा तथा अपनी अवस्था को देखकर रास की इच्छा करते हैं।[5]

कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्।
शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति॥

(हरिवंश पुराण २.१०.१५)

श्री कृष्ण तथा गोपिकाओं की अवस्था और प्रकृति का सौंदर्य श्रीमद्भागवत (१०.२९.३३) में हरिवंश की इसी परम्परा का पालन करते हुए विशद हो गया है। हल्लीसक की संक्षिप्तता पुराणों में रासलीला के प्राचीन रूप का परिचय देती है।[6]

सरस्वती कण्ठाभरण में श्रीकृष्ण तथा गोपियों को हल्लीसक के दृष्टांत स्वरूप रखा गया है।[7] रास का विवेचन विष्णु, भागवत, पद्म और ब्रह्म वैवर्त्त

---

4. टीकाकार नीलकण्ठ ने हल्लीसक और चन्द्रवाल का अर्थ रास किया है। इसमें उन्होंने 'अमरकोष' की परिभाषा के अनुसार हाथ पैरों के परिचालन की क्रिया विशेष को ही रास-गोष्ठी से अभिहित किया है—

   चक्रवालैः मण्डलैः हल्लीसक कीडनम एक स्यैव पुंसः बहुभिः क्रीडनं सैव रास क्रीड़ा।
   गोपिनांमण्डली नृत्य बन्धने हल्लीसकं विदुः इति कोषात्॥
   तल्लक्षणं तु पृथुः सुवृत्तं मसृणं वितस्ति मात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शंकुम्।
   आक्रम्य पदभ्यामितरेतरं तु हस्तैभ्रमोऽयं खलु रास गोष्ठी॥ 2-20-35, हरिवंश पुराण

5. इसे 'स्वरति' की भी संज्ञा दी गई है—'रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्र लीलः—10/24/33 श्रीमद्भागवत

6. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल हल्लीसक शब्द का उद्गम यूनानी 'इलीशियन' से मानते हैं। जो ईस्वी सन के आस पास इलीशियन नृत्यों (मिस्ट्री डांस) के समकक्ष जान पड़ता है।
   हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 33

7 मण्डलेन तु यत्स्त्रीणां नृत्यं हल्लीसकं तु तत्। तत्रनेता भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः।
   2, 156

आदि पुराणों में क्रमशः विस्तृत होता गया है। रासलीला का संक्षिप्त वर्णन तथा हल्लीसक में राधा तथा मुक्ति कामिनी गोपिका के स्वरूप का आभास हरिवंश में उल्लेखित उक्त सन्दर्भ की प्राचीनता सिद्ध करता है। शारदी ज्योत्स्ना को देख कर कृष्ण ब्रज-गोपिकाओं के साथ विविध क्रीडाएं करते हैं। श्री मद्भागवत में रास के केवल एक अंग चन्द्रिका का वर्णन—अपनी विशदता के लिये द्रष्टव्य है।

ब्रह्म पुराण (१.८६) में गोपिकाओं के साथ कृष्ण की रासक्रीडा का वर्णन है। इसमें कृष्ण को न पाने पर यमुना तट पर उनके गुणों के गीत गाने वाली गोपिकाओं का उल्लेख है। यह पुराण भी हरिवंश की प्रवृत्ति का ही अनुसरण करता है। रास के कुछ विकसित तत्त्व यहां अवश्य ही लक्ष्य किए जा सकते हैं। कृष्ण के वेणु स्वर को सुनकर विक्षिप्त विस्मित गोपिकाओं की मनोदशा का वर्णन है। यहीं उस गोपिका का भी उल्लेख है जो गुरुजनों के बाहर होने के कारण कृष्ण के निकट न जा सकी तथा वहीं पर स्थित हो, कृष्ण का ध्यान करती रही।[8] विष्णु पुराण में ब्रह्म पुराण से रास की कुछ विकसित अवस्था की सूचना मिलती है। भागवत में इस प्रकार के तत्त्वों का बीज रूप है। पद्म पुराण में तथा ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में रास की भिन्न प्रकृति दिखाई देती है। पद्मपुराण (पाताल खंड) में रास—मण्डली तथा नृत्य का वाचक नहीं है। यहां राधा तथा कृष्ण और गोपिकाओं की विविध लीलाओं को ही रास कहा गया है। रास का प्रायः यही रूप ब्रह्मवैवर्त्त में मिलता है।[10] इनमें रास अपने आरम्भिक स्वरूप से कदाचित् भिन्न होता गया है तथा रास के सभी समान और संक्षिप्त सूचनाओं (लक्षणों) को पर्याप्त विस्तार प्रदान करता है। भागवत में यही रास नृत्य 'महारास' कहा गया है। इसमें प्रकृति-चित्रण तथा रूप-सौंदर्य वर्णन का समन्वय काव्य सौंदर्य को कई गुना बढ़ा देता है। चन्द्रमा, यमुना तट, तथा नृत्य के समय गोपिकाओं के अंगों की रूप-राशि इस रास में पूर्ववर्त्ती पुराणों से अधिक सूक्ष्मता से व्यंजित हुई है। रासारंभ उदीयमान चन्द्र की क्रमशः विस्तीर्ण होती हुई आह्लादिनी रश्मियों के साथ हुआ है—

> 'तडोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः।
> स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।।
>
> १०/२९/२/श्रीमद्भागवत।

---

8. काचिदावसथ स्यांतः स्थित्वा दृष्टवा बहिर्मुखम्।
तन्ममत्वेन गोविंद दध्यो मीलित लोचना ।। 189, 20, ब्रह्मपुराण
9. 69, 87, 118, पद्मपुराण (पाताल खण्ड)
10. 25-55, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (कृष्ण जन्म खण्ड)

रास के प्रवर्त्तन में हिमशीत बालुका-राशि पर कुमुद परिमल से शोभित आनन्दपूर्ण कृष्ण तथा गोपिकाओं का चित्रण है। कृष्ण के चतुर्दिक सभी गोपियां मेघ के समीप विद्युल्लता की भांति मानी गई हैं।[11] हरिवंश की तरह यहां रास-विधि का स्पष्ट वर्णन नहीं, किंतु गोपियों के मध्य एक कृष्ण के कथन से हरिवंश में वर्णित हल्लीसक का ज्ञान होता है—

रासोत्सव संप्रवृत्तो गोपी मण्डल मण्डित: ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्य द्वयोर्द्वयो: ।।

(१०/३३/३/श्रीमदभागवत)

हरिवंश की भांति 'रास' सभी पुराणों में एक महत्त्वपूर्ण विषय या कथाभिप्राय है। इसे हल्लीसक का अर्थ या पर्याय रूप में भी बताया गया है। यह नृत्य दो-दो गोपिकाओं के द्वारा मण्डल बनाकर कृष्ण चरित के गान के साथ सम्पन्न होता है। कृष्ण गोपिकाओं के मण्डल मध्य सुशोभित होते हैं—

तास्तु पंक्तीकृता सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्य: कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यका: ।। २.२०.२५

एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृत: ।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ।:

२.२०.३५ हरिवंश पुराण ।

भागवत में यही व्यवस्था पर्याप्त रूप में समृद्धतर होती चली गई है। हरिवंश में वेणुगीत प्रसंग तथा राधा का कोई उल्लेख नहीं, तथापि मण्डली (समूह नृत्य) के नृत्य रूप में—जिसमें गोपिकाएं दो-दो का समूह बनाकर कृष्ण के चरित्र का गान करती हैं, उसका वर्णन है। रास-नृत्य के समय प्रकृति के रम्य दृश्यों का चित्रण इन वैष्णव पुराणों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। और इस दृष्टि से हरिवंश का हल्लीसक—रास का प्रारम्भिक रूप ज्ञात होता है। वैसे तो प्रत्येक पुराण में रास पर विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, पर हरिवंश में भारतीय संस्कृति का प्राचीन तथा अपेक्षाकृत अविकृत स्वरूप प्राप्त होता है। संक्षिप्तता के साथ-साथ कृष्ण-विरह कातर गोपियों और राधा के अभाव के कारण यह पूर्ववर्ती प्रतीत होता है। हरिवंश में ही, छालिक्य गांधर्व, नामक वाद्य मिश्रित संगीत का महत्त्वपूर्ण प्रसंग है।

---

11. 10/33/8, श्रीमद्भागवत ।

'छालिक्य गांधर्व' की व्युत्पत्ति प्रामाणिक स्रोतों के अभाव में कुछ कठिन है। भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र भी इस संबंध में मौन है। जबकि 'हल्लीसक' का उल्लेख और उसकी व्युत्पत्ति लक्षण ग्रंथों में हैं।[12]

छालिक्य गांधर्व के प्रतिष्ठाता-प्रणेता स्वयं श्रीकृष्ण माने गए हैं और कृष्ण चरित से सम्बद्ध होने के कारण इसे भी रास की भांति ही गौरवयुक्त स्थान प्राप्त है। प्राचीन होने के कारण हरिवंश के हल्लीसक में प्रकृति चित्रण तथा गोपिकाओं की व्यक्तिगत मनोदशाओं का सूक्ष्म विवेचन अनुपस्थित है। इसी तरह वैष्णव पुराणों के रास का विस्तृत आध्यात्मिक रूप यहां बहुत ही संक्षिप्त है। जबकि अन्याय परवर्ती वैष्णव पुराण रास के इन स्वरूपों की प्रस्तुति में विष्णु भक्ति और प्रकारांतर से कृष्ण-भक्ति की विशेषताओं को रेखांकित करते हैं। साथ ही, इनमें कृष्ण तथा गोपिकाओं की प्रत्येक अवस्था और मानसिकता का सूक्ष्म वर्णन विशेष ध्यातव्य है। धर्म ग्रंथों के मुकाबले काव्य ग्रंथों में या नाटकों में यह सूक्ष्मता अपने प्रकर्ष पर पहुंच गई है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में मण्डली नृत्य तथा रास हल्लीसक का उल्लेख किया था। भास ने (तीसरी सदी में) बालचरित्र के अंतर्गत कृष्ण के हल्लीस का चित्रण किया। जिसे हरिवंश तथा विष्णु पुराण की भांति इसे अश्लीलता रहित, निर्मल तथा निष्कलुष माना गया है।[13] वेणुगीत, राधा और रास की कल्पना विष्णु पुराण में केवल अपने आरंभिक रूप है।[14] जबकि भागवत के अंतर्गत कृष्ण के रास-महारास के साथ-साथ वेणु गीत का भी सूक्ष्म और विशद वर्णन किया गया है। हरिवंश में इनका अभाव तथा कृष्ण-गोपिकाओं की सरल प्रेम क्रीड़ा यह घोषित करती है कि ये सारे प्रसंग भागवत की अपेक्षा पूर्व हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के काल तक रासलीला के तत्वों का पूर्ण विकास हो चुका था, क्योंकि सम्पूर्ण पौराणिक परंपरा का प्रभाव यहां अपने अत्यंत विकसित रूप में दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्मपुराण में बत्तीस श्लोकों में रासलीला का चित्ताकर्षक वर्णन उपस्थित किया गया है। वहां श्रीकृष्ण की सर्वव्यापकता को प्रमाणित करने के साथ, रासायोजन में अनुष्ठित लीलाओं के कुछ संभावित दोषों का निराकरण भी किया गया है।

कृष्ण चरित की दृष्टि से विष्णु पुराण और भागवत, हरिवंश और मत्स्य पुराण के उत्तरवर्ती हैं। भागवत में कृष्णचरित के अन्तर्गत विविध वृत्तांतों का

12. फर्कुहर, जे०एन०, रेलिजस लिटरेचर आव इण्डिया, पृ० 144
13. द्र० कीथ—संस्कृत ड्रामा, पृ० 99
14. रम्यं गीतध्वनिश्रुत्वा संत्यज्यावसथांस्तथा। आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्रास्ते मधुसुदनः ।।
5.13.16.40: 17; 5.13.33)—विष्णु पुराण

समाहार उसकी उत्तरकालीनता की सूचना देता है। कृष्ण चरित्र के अन्तर्गत रास और हल्लीसक क्रीडा की विकास यात्रा के कई आयाम हैं, लेकिन कृष्ण-कथा के मूल स्वरूप में इनका मुख्य स्तर है। रास-क्रीड़ा का विषय (अभिप्राय या रूढ़िपालन हेतु) परवर्ती पुराण ग्रन्थों में उत्तरोत्तर विस्तार पाता जाता है। विष्णु पुराण तथा श्रीमद्भागवत की रास-क्रीड़ा में केवल कृष्ण तथा गोपिकाओं की क्रीड़ा का ही वर्णन है। वहां या अन्यान्य पुराणों में रास सम्बन्धी प्रतीकात्मकता के लिए न्यून और सीमित स्थान है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो पता चलेगा कि वैष्णव भक्ति की विभिन्न शाखाएँ दसवीं शताब्दी के बाद भी अनेक नवीन रूपों के साथ प्रादुर्भूत होती रही हैं। भागवत, पांचराग्र तथा श्रीवैष्णव परम्पराएँ सूक्ष्म भेदों के ग्राधार पर अलग-अलग विकसित वैष्णव परम्पराओं के रूप में दिखलाई देती हैं। श्रीमद्-भागवत में विष्णु भक्ति की भागवत परम्परा, विष्णु पुराण में पांचरात्र और पद्मपुराण में श्री वैष्णव परम्पराए मिलती हैं। इनमें भागवत तथा पांचरात्र प्राचीन हैं। श्री वैष्णव शाखा इन दो प्राचीन शाखाओं की उत्तरवर्त्तिनी है, जिसमें कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त राधा का सर्वोच्च स्थान तथा कृष्ण की चित्शक्ति के रूप में इनकी प्रतिष्ठा, इस सम्प्रदाय की परवर्त्तिता की द्योतक है। हरिवंश में राधा का बीज रूप में प्रस्तावित अज्ञात व्यक्तित्व विष्णु पुराण तथा भागवत के उपरांत पद्मपुराण में अत्यन्त व्यापक हो गया—जहां राधा, कृष्ण की सहचरी या अनुरक्ता मात्र नहीं, वे नारायण रूप कृष्ण के लिए लक्ष्मी तथा चिद्शक्ति स्वरूपा है। वहां उनको कृष्णमयी तथा परादेवता कहा गया है।[15]

पद्मपुराण में रासक्रीड़ा अपेक्षया व्यापक कलेवर धारण करती है, उसमें ग्राध्यात्मिकता का स्वर प्रमुख हो गया है। गोपियों में कृष्णस्वरूप विष्णु की शक्तियों का तथा राधा में उनकी चित् शक्ति का आरोप किया गया है। कृष्ण यहां योगेश्वर, पारब्रह्म और परमपुरुष के पद पर प्रतिष्ठित हैं। वैकुण्ठ ग्रौर गोलोक के ऊपर स्थित वृन्दावन उनका निवास स्थान है, जहां वे अनादि-अनन्तकाल तक अपनी सहचरियों के संग रास-रमण करते हैं।[16] यहां वर्णित रासलीला का समस्त स्वरूप विधान या प्रतीक अभियोजन—यथा वृन्दावन, गोप, गोपिकाओं, यमुना तथा वहां के पशु-पक्षियों को आद्यन्त आध्यात्मिकता के आवरण में प्रस्तुत किया गया है। इसमें रास मण्डल की गोपिकाओं को योगिनियाँ कही गई हैं। कालिंदी को अमृतवाहिनी सुषुम्ना तथा वृन्दावन को चर्मचक्षुओं के लिए आदर्शनीय

15. 81.52-55, पद्मपुराण (पाताल खण्ड)
16. 69-83 उपरिवत्

कहा गया है। वृन्दावन में पुरुष रूप-कृष्ण तथा प्रकृति-नटी राधा की क्रीड़ा का यह महा-मिलन संयोग ही रास है।[17]

श्रीरास के स्वरूप को आधिदैविक और यौगिक स्वरूप भी प्रदान किया गया है। देवी भागवत पुराण इस दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ प्रदान करता है। यही नहीं, कतिपय तांत्रिक अवधारणाओं के संकेत भी इसमें मिल जाते हैं। वहाँ भी प्रकृति और पुरुष का कालातीत सम्बन्ध ही रास लीला का हेतु बना है। चूंकि प्रकृति स्वयं जड़ है, इसलिए अशक्त है, अक्षम है। इस सम्पूर्ण विश्व (सृष्टि) का आधार भी परम पुरुष श्रीकृष्ण और चित् शक्ति स्वरूपा प्रकृति ही मानी गई है। वहां ऐसी धारणा है कि प्रलय काल के अनन्तर सृष्टिकाल में श्रीकृष्ण अपनी चित्शक्ति से पुनः पुनः सृष्टि करते हैं, जिसमें परमात्मस्वरूप श्री कृष्ण का द्विधाविभक्त वामांगा के संग किया गया चिद् विलास रास कहा गया है।[18]

इसी प्रसंग में वृन्दावन को सहस्रदल कमल बताया गया है, जिसकी एक सहस्र पंखुड़ियां अधोमुखी हैं। क्योंकि वृन्दावन के समस्त वृक्ष अधोमुख बताए जाते हैं। भगवती श्रीप्रिया राधा प्रकृति स्वरूपा या कुलकुण्डलिनी शक्ति तथा श्रीकृष्ण परमात्मा अथवा पुरुष हैं। गोप सुन्दरियां अन्तःकरण की वृत्तियां हैं। श्रीकृष्ण की वंशी की अति मधुर झंकृति ही वह प्रणव नाद है, जिसे योगी सुनते हैं। जिसे सुनते ही गोपबालाएं सम्मोहित हो गईं और विषयरूपी संसार का परि-त्याग कर परमात्मा रूपी श्रीकृष्ण के मिलन को दौड़ पड़ीं। इस रूपक को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से कई बार दोहराया गया है।

इन पुराणों में भक्ति के अवयव भी क्रमशः सुदृढ़ और प्रतिष्ठित होते चले जाते हैं। हरिवंश के कृष्ण चरित में गोपियां विष्णु पुराण और भागवत से भिन्न रूप में प्रदर्शित की गई हैं और उनका उल्लेख सामूहिक रूप से हुआ है—व्यक्ति गत रूप से नहीं। विष्णु पुराण या भागवत में कृष्ण सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त करने वाली गोपी (जिसमें राधा की सम्भावना या कल्पना की जाती है) का भी उल्लेख है। कृष्ण के वियोग-जन्य दुख के समस्त पाप और उनके स्मरण-जन्य सुख से समस्त पुण्य फल को प्राप्त करने वाली गोपी का उल्लेख विष्णु और भागवत की भगवद् भक्ति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

---

17. उपरिवत (पाताल खंड), 77

18. विलास हेतु रास भावना का उदय होते ही कृष्ण द्विधा विभक्त हो जाते हैं—वाम भाग स्त्री और दक्षिण भाग पुरुष। इसी के साथ रासेश (कृष्ण) रास-क्रीड़ा करते हैं—
दृष्ट्वयतां तु तया: सार्धं रासेशो रासमंडले। रासोल्लासेषुसिको रासक्रीडा चकार ह।
नाना प्रकार श्रृंगारं श्रृंगारो मूर्तिमानिव। चकार सुखसम्भोगं यावद्वै व्रह्मणोदिनम् ॥
9 ॥ 2 ॥ 36—देवी भागवत पुराण

कृष्ण के चिंतन मात्र से प्राप्त मुक्ति—कर्मयोगी के कर्मकाण्ड, ऋषियों के कृच्छ तप और ज्ञानियों के ज्ञानवाद को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है। तदनुसार कर्म, ज्ञान या तपोपासना का प्रत्याख्यान हुआ है और भक्ति की महत्ता का प्रवर्त्तन भी। विष्णु (या कृष्ण) की उपासना को सर्वजन सुलभ और सरलतम बताते हुए विष्णु के नाम स्मरण की महिमा—गाथाओं और लीलाओं में वर्णित है। हरिवंश में यह प्रकरण अनुपस्थित है, संभवतः भागवत भक्ति का यह व्यापक स्वरूप और आग्रह हरिवंशोत्तर है।

विभिन्न लीला ग्रन्थों और वैष्णव सम्प्रदायों में लीला और उसके रहस्यों पर कई प्रकार से अलग-अलग प्रकाश डाला गया है। यह विभिन्नता एक दूसरे को काटती नहीं, वरन् एक दूसरे की भावधारा या उनकी प्रेरणाभूमियों को समृद्ध करती है। योग, बौद्ध और वेदांत—तीनों के मेल से शंकर के समय में ही उत्तरी भारत में अद्वैतवाद का प्रचार था। बौद्धों और औपनिषदों के बाहर जाने से अद्वैत ईरान, अरब और मिश्र पहुंचा था। वह मुसलमानों के आगमन के साथ ही, पुनः सूफीमत के व्यापक प्रचार-प्रसार क्रम में भारत लौट गया।[19] कबीर इस धारा का प्रतिनिधित्व करते दिखाई प्रतीत होते हैं। मध्ययुगीन सन्तों की परम्परा वस्तुतः श्रमण परम्पराश्रित रही, जो समचर्या—जाति पांति के उच्छेद या शून्यता आदि पर ज़ोर देती है। उन पर बौद्ध अनात्मवाद और वैदिक आत्मवाद का सम्यक् प्रभाव पड़ा है। महामति प्राणनाथ ने शुद्धाद्वैतवाद, बौद्ध, वैदिक, यौगिक, सूफी सभी साधनाओं और विचार धाराओं का समन्वय किया है। परम्पराश्रित अद्वैत वेदांती ज्ञानमार्ग (शंकर) या ज्ञान कर्म समुच्चय मार्ग (मधुसूदन सरस्वती प्रणीत) को मानते हैं। मध्यकालीन अद्वैतवादी इन्हें नहीं मानते—वे भक्ति मार्ग या ज्ञान भक्ति समुच्चय मार्ग वा योगमार्ग या योगभक्ति समुच्चय मानते हैं। ज्ञान भक्ति के अनन्तर भी वे भक्ति को आवश्यक मानते है। मध्यकालीन और परम्परावादी चिंतन में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह भी है कि

---

19. ईरान के प्रसिद्ध सूफी साधक मंसूर-बिन-हल्लाज (9वीं शती) को 'अनलहक' कहने की गुस्ताखी के चलते ही सूली पर चढ़ा दिया गया। यह उक्ति कट्टर या सनातनपंथी इस्लाम की अवधारणाओं के विरुद्ध थी। क्योंकि परमात्मा और मनुष्य के एकत्व की स्थिति इस्लाम नहीं स्वीकारता। मनुष्य, मनुष्य है; परमात्मा—परमात्मा; वे दोनों वही थे, वही हैं और वही रहेंगें—वह एक नहीं हो सकते। मंसूर का आशय केवल इतना था कि परमात्मा के 'एकत्व' में सभी प्राणी समाहित हैं। अपनी साधना (इबादत या पहुँच) से जो इस संसार से परे हो जाता है, वही वस्तुतः परमात्मा कहा जा सकता है। इसमें मैं, तुम, हम (लोग) की गुंजाइश नहीं। हल्लाज 'अनलहक़' कहते हुए 'अहं' के (बंधन) से परे (मुक्त) हो गए। उनके मुंह से निकली आवाज़ परमात्मा की ही थी।

परम्परागत अद्वैत चिंतन—मूर्तिपूजा, सगुणोपासना, अवतार कल्पना तथा जाति-पाँति व्यवस्था से अपना सामंजस्य बैठाता है। वहाँ परवर्त्ती अद्वैत-साधना पद्धति इन्हें अनावश्यक मानती है। तात्त्विक दृष्टि से प्रेम और भक्ति का महत्त्व बुद्धिवाद, तर्क, कृच्छ्र कर्मकांड या व्रतोद्यापन आदि से अधिक है। एक में कथनी पर जोर है और तो दूसरे में करनी पर—दोनों के सामंजस्य पर। महामति प्राणनाथ ने कबीर, नानक और नरसी या वल्लभ को ही नहीं, मध्य युग के समस्त रहस्यवादी और भक्तिपरक चिंतन को ऐतिहासिक, व्यावहारिक और समन्वयपूर्ण सांस्कृतिक सन्दर्भ—स्वर और स्वरूप—प्रदान किया।

महामति प्राणनाथ ने प्रचलित धर्म सम्प्रदायों तथा तत्कालीन माधुर्य साधनापरक पद्धतियों तथा निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ या विट्ठल सम्प्रदाय में मान्य रास-वैभव को अपने स्वानुभवानुसार प्रकट किया। वल्लभ सम्प्रदायानुसार वे परम ब्रह्म स्वरूप कृष्ण को ज्ञान गम्य नहीं मानते। उन्होंने ज्ञान, योग, भक्ति आदि की योग्यता को स्वीकारते हुए भी प्रेम पर सर्वाधिक बल दिया और अपने 'तारतम मन्त्र' को प्रेम पर ही आधृत किया —और बताया कि कलियुग में प्रेम ही धर्मध्वजा है—

> **सखी प्रेम ध्वजा केहेवाये, जेनूं प्रगट नाम कुली मांहें।**
> **ए तो प्रेम तणां जे पात्र, आपणथीं अलगो न थाए ख्यणमात्र ।।**
>
> २/प्र० ३३, **श्रीरास**

कृष्णानुराग को केन्द्र और उपलक्ष्य बनाकर भागवती नवधा भक्ति और शाण्डिल्य, नारदादि भक्ति सूत्रों में संकेतित एकादश आसक्तियों में से ही अन्तिम पांच— दास्य, सख्य, वात्सल्य, कांत एवं परम विरहासक्ति के आधार पर एक—रागात्मिका भक्ति की भावोपासना का विधान हुआ।

रूप गोस्वामी ने भक्ति के इन रागात्मक तत्त्वों को काव्य शास्त्र में प्रतिष्ठित-विनियोजित नवरसों के आदि और अन्त भावों—रति (शृंगार) और शम (शांत) में मध्य रख कर क्रमशः शांत, प्रीति (दास्य), प्रेयस (सख्य), वात्सल्य और मधुर रस के रूप में पंचभावोपासना का समधुर विन्यास किया। इनके अतिरिक्त शेष सात भावों को भी गौण भक्ति रस के अन्तर्गत उपन्यस्त किया गया। उनकी 'भक्ति रसामृत सिंधु' में पंचभक्ति रसों का सर्वांगीण विवेचन है तथा उज्ज्वल नीलमणि में केवल मधुर रस का पार्यन्तिक विश्लेषण हुआ है। यही नहीं, मधुर रस को पंचम भक्ति रसों में सर्वोपरि मानते हुए इसे विधिवत 'भक्ति रस राज' की संज्ञा प्रदान करते हुए इसकी चूड़ान्त प्रतिष्ठा की गई। इन ग्रंथों की भक्ति विषयक अवधारणाओं का विवेचन और मूल्यांकन राधाकृष्ण भक्ति

को उपजीव्य बनाकर ही किया गया ।—साथ ही, विषय प्रतिपादन की सूक्ष्मता, विवेचना और व्यापकता के कारण यह भक्तिबहुल सम्प्रदायों की साहित्य साधना में सार्वभौम चिंतन के रूप में ग्रहीत, प्रतिफलित और मान्य (पूज्य) हुआ । विभिन्न सम्प्रदायों में भक्ति को कर्म ज्ञान से परे 'पंचम पुरुषार्थ' का पवित्र आस्पद देकर इसके समक्ष ब्रह्मानंद को परमाणु तुल्य ही माना ।[20] इस प्रकार, भक्ति रस की पंचभावोपासना के साथ काव्य रसों को भी विलक्षण दक्षता के साथ समाविष्ट कर लिया गया और लौकिक रसों की तुलना में दिव्य मधुर रस की सामर्थ्य सिद्धि भी प्रमाणित हो गई । जब साधक के हृदय में भगवद् भक्ति मुखरित हो जाती है तो वे इस रागानुगा भक्ति में प्रवेश करने के कारण विधि-निषेधसे ऊपर जाते हैं, उनकी क्रियाएं यथा विधि अनुष्ठित नहीं होने पर भी पूर्ण फलप्रदायिका होती हैं । भगवद् सन्निधि मिल चुकी तो फिर उपदेश, श्रवण तथा उपदेशगंत आचार के पालन के लिए अवकाश कहां रहता है ।

रागात्मिका भक्ति उन आर्तों की भक्ति है जो वैधी भक्ति या औपचारिक चर्याचर्य नहीं जानते या नहीं करते । भगवान को अपने प्रियतम के रूप में ग्रहण करके, उनका आश्रय पाकर अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करते हैं । ब्रज की गोपिकाओं की भक्ति ऐसी ही रागात्मिका भक्ति है, जो भक्ति से श्रेयस्कर, अन्त-रंग और अनौपचारिक है । यह भक्ति स्वयं उपाय न होकर उपेय है । श्रीकृष्ण की कमलपद-सेवा-अर्चा करते हुए आनन्द लाभ करना मोक्ष से बढ़कर है, जिसे चैतन्य मत में 'पंचम पुरुषार्थ' भी कहा गया है ।

चैतन्य प्रवर्तित 'अचिंत्य भेदाभेद दर्शन' में जो चरम सत या परम तत्त्व है—वह भगवान या 'हरि' है । उसका एकांश मात्र ही ईश्वर है, जो संसार में अन्तर्यामी है, उसकी अंग कांति निर्विशेष ब्रह्म है । हरि अंशी है, ईश्वर उसी का अंश है । पूर्णश्री, पूर्ण वैराग्य, पूर्ण वीर्य, पूर्ण विवेक, पूर्ण ज्ञान—और पूर्ण ऐश्वर्य की एकता ही 'हरि' है ।[21] इनमें गुण केन्द्र स्थानीय हैं और अन्य उनके अंगभूत हैं । अपनी पूर्णता को हरि—कृष्ण और राधा के ऐक्य में—युगल मूर्ति में चरितार्थ करते हैं । राधा-कृष्ण परस्पर भक्ति और प्रेम के अपरिहार्य बन्धन से बंधे हैं ।

मध्वादि द्वारा प्रणीत भाष्य का पर्याप्त आदर करते हुए भी चैतन्य

---

20. भक्ति रसामृत सिन्धु—1/11, 18–19–20

21. यहां एक तथ्य विशेष ध्यातव्य है कि महामति प्राणनाथ 'हरि' को परमात्मा का अंश विशेष (विष्णु का पर्याय) मानते हैं । उनका अंशी अक्षरातीत परब्रह्म है । घट घट व्यापी 'ईश्वर' भी उनका अंश विशेष मात्र है ।

श्रीमद्भागवत पुराण को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य समझते थे। वल्लभ और निम्बार्क की भाँति चैतन्य ने भी परमात्मा तथा उसकी शक्ति को कृष्ण और राधा रूप में अभिहित किया। रामानुज और मध्व की तरह नारायण (विष्णु) और लक्ष्मी के रूप में नहीं। चैतन्य कृष्ण को भगवान मानते थे, भगवान के अवतार नहीं। वे वृन्दावन को 'अमरपुरी' और वहाँ के निवासियों को 'मुक्त' मानते थे।

लीला परिकर के तमाम अंग-उपांग और चरित्रों की आध्यात्मिक रूपकात्मक शैली को प्राणनाथ जी ने आवश्यकतानुसार परिवर्तित और परिवर्द्धित भी किया है। तथापि विरह-वेदना महामति की वाणियों का मुख्य स्रोत रही है।

वल्लभाचार्य की परम्परा के दार्शनिक और भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण को गौण करना प्राणनाथ का उद्देश्य या उनकी मान्यता नहीं। दार्शनिक दृष्टि से प्राणनाथ भी शुद्धाद्वैतवादी थे तथा उनका साम्प्रदायिक दृष्टिकोण पुष्टिमार्गी था। पुष्टिमार्गी भक्ति की भावना में ऐकांतिकता और अनन्यता अनिवार्य है। वहाँ एकमात्र प्रियतम ही प्रेमी के लिए ही प्रेय है। भक्त और भगवान में भी उपासक और उपास्य की दूरी बनी रहती है। जबकि प्रेमी को प्रियतम में ही एक होना होता है। यहां व्यवहार समानता का हो जाता है, अंगी-अंगना का। प्रेमी, प्रेम और प्रियतम के बीच लौकिक इति कर्त्तव्यों के किसी भी व्यवधान अथवा अन्तराल का अवकाश नहीं।

आत्मा (विरहिणी नायिका) में प्रियतम के प्रति प्रेम प्रदीप्त होते ही सारे लौकिक कर्त्तव्य बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। इसीलिए तो गोपियां इस वेणुवादन के साथ ही, पति-पुत्रों की सुश्रूषा भूलकर लोक-लाज त्याग श्रीकृष्ण के सम्मुखीन हो जाती हैं। महामति ने श्रीमद्भागवत की कथा (विशेषकर रास पंचाध्यायी) की अन्तर्कथा को आत्मानन्द और आत्मानुभूति के संस्पर्श से सींचा है। अनुवर्त्ती पुराकथाएं तथा साम्प्रदायिक परम्पराएं या गुरु-प्रदत्त 'तारतम' का भी इसमें विशेष महत्त्व रहा है। गुरु देवचन्द्र जी के अलावा वल्लभाचार्य, शुकदेव और नरसी मेहता (नरसैंया) का उल्लेख बार-बार तारतम वाणी में किया गया है। महामति का मूल आशय या मन्तव्य यही है कि वे आत्मा के प्रेमानुराग को परमात्मा की कसौटी पर और आत्मा के आग्रह (हठ) को परमात्मा के स्नेहानुग्रह से शबलित करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध के अन्तर्गत साक्षी और सचेतक बनकर (आत्मा और परमात्मा) दोनों के संकल्प को नित्य, स्थायी और नवीन ही नहीं, बल्कि परम उच्चाशय या गरिमा प्रदान करना चाहते हैं, ताकि 'मोहजल या मायानोपास' का प्रत्याख्यान किया जा सके। इस उद्देश्य की रक्षा प्राणनाथ की वाणी के अध्ययन से ही सम्भव है। 'श्रीरास' की आधार कथा-वस्तु की उपयोगिता केवल इतनी ही है कि अलौकिक आत्म समर्पण को समझने-समझाने

के लिए लौकिक उपकरण का सहारा मिले। ब्रज, रास और जागनी लीला क्रमशः और उच्चतर मूल्यों के आध्यात्मिक प्रतीक और प्रतिमान हैं। महामति ने रास की आध्यात्मिक व्याख्या का संकेत अपनी कई वाणियों में दिया है—पर वे उसका सामाजिक सन्दर्भ भी यथाप्रसंग वर्णित करते रहे हैं। 'रास भूमि' या रास भूमिका का एक निश्चित लक्ष्य भी है—जो व्यक्ति (साधक) चित्त को उदात्ती-कृत करता है। उन्हें क्रमशः प्रेम साधना-शिखर तक ले जाने का संकल्प प्रदान करता है। सकुंडल और सकुमार—जाग्रत और सुप्तात्मा—दोनों को एक-सी मर्यादा मिले—इसका भी आग्रह है—

साथ सुनो एक वचन, आवे बाई सकुंडल सकुमार।
रास खेल घर चलसी, भेले इन भरतार ॥

२६/प्र० ५५/किरंतन

इस 'अखण्ड रास विलास' को साधक या सहृदय का चित्त लीलावत ही ग्रहण करे और तद्वत आचरण करे—यही महामति का आशय है। अपनी सहज गति से लौकिक, अलौकिक और पारलौकिक—अखण्ड और अव्याहत लीला-समुदय में जो प्रवाह है, आनन्द का उच्छल-स्रोत है—उससे शक्ति और ऊर्जा प्राप्त कर आगामी सोपानों को पार करना है। महामति चाहते है इस अविराम लीला-नुष्ठान में साधक या पुण्यात्मा इन लीला सरणियों का विशेष ध्यान रखे तो वह संपूर्ण जगत् के खेलों को लीलावत ग्रहण करेगा—उसका आनन्द प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि इस आनन्द-पूर्ण लीला में (प्रस्थान या प्रसंग भेद के बावजूद) प्रियतम परमात्मा श्रीकृष्ण की प्रसन्नता और उनकी उपस्थिति भी सम्मिलित है। बिना उनके कोई भी क्रीड़ा या लीला निष्पन्न हो ही नहीं सकती—

बुधजी की जोतें कियो प्रकाश, त्रैलोकी को तिमर कियो नास।
लीला खेलें अखंड रास विलास, भई नई रे नवो खंडों आरती ॥

१५/प्र० ५६/किरंतन

अक्षरब्रह्म कृष्ण की ब्रजलीला की शक्ति कालमाया द्वारा रचित अनुवर्ती ब्रह्मांड में अर्थात् गोकुल में हुई। रासलीला तो इस ब्रह्मांड की लीला ही नहीं। वह तो अक्षरब्रह्म की योगमाया की लीला थी—

इन दोऊ में न्यारा मंडल, जाको कहियत है रास।
तहां खेल स्याम सखियन का, ये लीला अविनास ॥

जिन ब्रह्मांड में ब्रज और रासलीला हुई—वे अक्षर के चित्त में अंकित हो गई। कालमाया द्वारा सृष्ट विश्व प्रपंच भी प्रलय में समाप्त हो गया। जागनी

लीलार्थ यह दुनिया यथावत पुनः निर्मित हुई। ज्यों को त्यों—वही नन्द, कृष्ण, यशोदा, बलराम, राधा तथा अन्यान्य गोप-गोपीगण। लेकिन यह सारी सृष्टि ब्रज और रास से भिन्न थी। इस रहस्य को न जानने के कारण ही शास्त्र वेत्तादि श्रीकृष्ण के स्वरूप और लीला को एक कर देते हैं। प्रथम बार कृष्ण और गोपी के रूप में, तथा दूसरी बार रासमण्डल में श्रीकृष्ण और गोपियों के) आत्माओं के अनन्त मिलन में—दुनिया ने देखा। श्री जी स्वरूप में होकर और भी योग्यतापूर्वक और परिपूर्णता से यह कार्य सम्पादित किया गया। अक्षरातीत परमात्मा श्रीकृष्ण ही अनादि सनातन पुरुष हैं—शेष सारी स्वरूप लीलाएं तो उनकी रचित प्रकृति के अधीनस्थ स्वरूपों की ही हैं। परम मोक्ष और परम धाम की आनन्द-प्राप्ति हेतु अक्षरातीत श्रीकृष्ण ही एकमात्र आश्रय हैं। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार से अलग शुद्ध साकार स्वरूप, सर्वगुण सम्पूर्ण, अधिप्रेरक स्रोत और चिन्मय परब्रह्म श्रीकृष्ण ही प्रणामी सम्प्रदाय में मान्य हैं। 'तारतम मन्त्र प्रदाता' सद्गुरु देवचन्द्र और तदुपरांत महामति प्राणनाथ इसी स्वरूप के 'आवेशावतार' हैं।

पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण की त्रिधा लीला—ब्रज, रास और जागनी के अन्तर्गत सम्पन्न हुई। ब्रज में बाल-स्वरूप लीला, रास में किशोर-स्वरूप लीला और तीसरी बार (इंड में) स्वयं प्रभु निजानन्द (गुरु देवचन्द्र जी) के रूप में। 'तीसरी आरती' में श्याम स्वरूप होकर तथा अधिक शक्ति सम्पन्न होकर सुर और असुर दोनों को तारतम देकर कृतार्थ किया। 'श्रीरास' तारतम्य मन्त्र (बीज वचन या आदि वचन) की पूर्वपीठिका है—जिस पर त्रिधा लीला स्वरूपी श्रीकृष्ण की दूसरी लीला (आरती) का माहात्म्य वर्णित है।

प्राणनाथ के आराध्य श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न शुद्ध साकार स्वरूप हैं और शुद्ध सगुण-रूप में भक्ति सुलभ हैं। सगुण और निर्गुण—परमात्मा की स्थितियाँ विशेष हैं, दोनों में कोई व्यवधान या विरोध नहीं। दोनों ही स्थितियां एक दूसरे स्वरूप में विसर्जित हो जाती हैं। इसे प्राणनाथ ने ब्रह्म की व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत स्वीकार किया। वे अपने ब्रह्म को अद्वैतवाद के शब्दों से तो व्यक्त करते ही हैं, पर उसे विशिष्टाद्वैतवादी गुणों से भी श्रीसम्पन्न कर देते हैं।

ब्रह्म में सत्, चित् और आनन्द तीनों घटक समान रूप से उपस्थित हैं। जीव में सत् चित् का तो आविर्भाव रहता है किन्तु आनन्द का तिरोभाव रहता है। अतएव जो ब्रह्म निरामन्दमय हैं, उसे वियोग-वेदना की पीड़ा या यन्त्रणा क्योंकर होने लगी। कृष्ण को विरह या काम में जलाने का अर्थ होता है इस आनन्द

तत्त्व का तिरोभाव दिखलाना। जो शुद्धाद्वैत के अनुसार असंगत होता है।[22] पीड़ा का दंश और तीव्र वेदना की अनुभूति महामति की वाणियों का प्रेरक स्रोत रही है— जिसे श्रीरास, प्रकाश, किरंतन और सिंधी वाणी में लक्ष्य किया जा सकता है। उनके श्रीकृष्ण—गोपियों की भांति विरह-वेदना-मुखर तो नहीं—पर इस शिखर यात्रा में समान रूप से अपनी भूमिका निभाते हैं—"मैं भी तुम्हारी तरह—तुम्हारे बिना नहीं रह पाया। वंशी वादन के बाद—तुम्हारे आने तक का समय काटना कठिन हो गया और विरहजन्य यह अन्तराल युगों के समान बीता"—

एक पल मांहें रे सखियो, कलप अनेक वितीत।
ए दुख मारो जीव जाणे, सखी प्रेम तणी ए रीत॥

३८, प्र० ३७, श्रीरास

अक्षरब्रह्म के हृदय में जो लीला अनादि काल से अव्याहत, अंकित और प्रतिष्ठित है, वह वास्तवी लीला है। यह अक्षरातीत[23] ब्रह्म और उनकी (परा) अंगनाओं का वह चिद्‌विलास है, जिसे उन्होंने अक्षरब्रह्म की मनोकामना पूरी करने के लिए—ब्रज में अवतरित होकर ब्रह्मप्रियाओं की सुरत के साथ प्रकट किया। पूर्णब्रह्म कृष्ण-परायण होकर ही प्रेम से ही इस लीला-रहस्य को जाना जा सकता है। जिसका प्रतिबिंब उनके चिदाकाश में स्थित मूर्त्तमन्त वेदऋचाओं ने देखा तो उसे सविग्रह और साग्रह अनुभव करना चाहा। संसार में उनकी सुरत ही गोपिका यूथों में प्रविष्ट हुई और अक्षरब्रह्म की सूरत के साथ उन्हें सात दिनों तक 'भावानन्दी' ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ। अर्थात् यह आनंद आत्मज्ञानाश्रित या आत्म-ज्ञानार्जित है। वास्तवी लीला का ही प्रतिबिम्ब रूप होने के कारण इसे प्रतिभासिकी भी कहते हैं।

---

22. 'भारतीय साहित्य में पुरुष–विरह विरल है और विरहिणी का वर्णन ही अधिक है। इसका कारण है, भारतीय दार्शनिक संस्कृति। पुरुष सदा निर्लिप्त और स्वतन्त्र है। प्रकृति या माया उसे प्रवृत्ति या आवरण में लाने की चेष्टा करती है। इसलिए आसक्ति का आरोपण स्त्री में ही है। स्त्रीत्व में प्रवृत्ति के कारण नैसर्गिक आर्कषण मानकर उसे प्रार्थिनी बनाया गया है।'—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध (जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-3)। इसके विपरीत फारसी आदि साहित्य में पुरुष को ही विरह वेदना का आश्रय मानने की परम्परा है। इस रुचि-भेद का कारण संस्कृति-भेद है। इस दृष्टि से बाइबिल का 'सांग आव सोलोमन' (2/8-13) विशेष महत्त्वपूर्ण और द्रष्टव्य है।

23. 'अक्षरातीत परब्रह्म ही श्रीराज जी—'राजते स्वयं प्रकाशते यः सः राजः' नामधेय से प्राणनाथ की वाणियों में प्रतिष्ठित हैं। जो स्वयं प्रकाशवान हैं—जिनके प्रकाश से क्षर, अक्षर और इतर लोकों का गुणैश्वर्य समृद्ध और संरक्षित है। इस पूर्ण परात्पर अक्षरातीत ब्रह्म के दो भेद हैं—एक स्वलीलान्तर्गत किशोर स्वरूप का है और दूसरा—अपनी अंगकान्ति विशेष से सर्वत्र परिपूर्ण अद्वैत—जो अजन्मा, अविनाशी, अखण्ड एक (और एकांत) ब्रह्मानन्द स्वरूप है।

इस जगत् (सृष्टि) के मध्य ब्रजभूमि पर जो लीला (कालमाया के ब्रजमण्डल) में हुई, उसे व्यावहारिकी लीला कहते हैं। इसे भी उत्तम जीव ही देख या जान सकते हैं।

यही सत्य या सत् है, जो साधक या अन्वेषक अथवा परमहंस की आस्था है। ब्रह्म-लीलांतर्गत प्रकट होने वाली वास्तवी लीला का ज्ञान कराने के लिए प्रतिबिम्ब लीला भी प्राकृत जगत् में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। महामति का तारतम ज्ञान उन सारे लीला रहस्यों के अर्थों को खोलकर सत्यासत्य-और रास के बिम्बानुबिम्ब को अर्थवत्ता प्रदान करता है—

'ये प्रतिबिंब लीला जो भई इत, सो कारन ब्रह्मसृष्टि के सत।
जो प्रकट लीला न होवे दोए, तो असल नकल की सुध क्यों होए॥
ता कारन ए भई नकल, सुध करने संसार सकल।
सारे अरथ तब होवें सत, जो प्रगट लीला दोउ होवें इत॥'

५०-५१, प्र० ३७॥ प्रकाश हिन्दु०

प्रतिबिम्ब लीला की सार्थकता आनुषंगिक है, अन्यथा वास्तवी लीला का रहस्योद्घाटन भी स्पष्ट न होता।[24] इस उपस्थित और प्राकृत विश्व में दूसरी बार रासमण्डल रचकर श्रीकृष्ण ने समस्त गोपियों को पुनर्वार रास-रसास्वादन कराया। अतः इसे द्वितीय ब्रह्मांड की लीला भी कहा गया। रास कल्प में साक्षात् ब्रह्म प्राकृत जगत् में रासलीला मग्न रहते हैं, तब इनका लीलानुभव महापुरुषों को प्राप्त होता है। परन्तु जिस प्राकृत लीला के अधीन सत्य, तम और रजोगुण के द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, वह प्राकृत लीला भी वास्तवी और व्यावहारिकी भेद से दो प्रकार की है।[25]

महामति ऐसा मानते हैं कि श्रीकृष्ण के लीला-भेद और शक्ति-भेद से मुख्यतः तीन स्वरूप हैं। लीला-क्रम में उनकी अलग-अलग शक्तियों का समावेश रहा।[26]

---

24. वास्तवी तत्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी। आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित्॥
—विष्णु पुराण

25. सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजः सत्त्वः तमोगुणैः। लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी॥
—स्कन्द पुराण (विष्णु खण्ड)

26. महामति के कृष्ण अक्षरातीत ब्रह्म चिद्घन किशोर स्वरूप हैं और समस्त लीला-परिकर सहित परम धाम में नित्य-विहार करते हैं। उनकी प्रेरणा से ही उनके सत-अंग अक्षर ब्रह्म बाल-स्वभाव युक्त होकर अपनी माया से सृष्टि संरचना करते हैं—

बाल चरित्र लीला जोवन, कै बिध सनेह किए सैयन॥
कै लिए प्रेम विलास जो सुख, सो केते कहूं या मुख॥

25, प्र० 37, प्रकाश हिन्दु०

ब्रज में नन्द-यशोदा के यहां प्रकट होने वाले श्रीकृष्ण जी पूर्णब्रह्म परमात्मा के साक्षात् अंग स्वरूप थे। मथुरा में लीला करने वाले वासुदेव कृष्ण, गोकुल-वासी कृष्ण के अंशमात्र थे एवं द्वारिका में प्रस्थान करने वाले विष्णु भगवान मथुरावासी कृष्ण के अंशभूत थे।

कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदय स्थानीय शबल ब्रह्म के चिदाकाश से प्रकट होकर स्वयं मोहमयी निद्रा द्वारा स्वप्न स्वरूप विश्व को रचने वाली सुमंगला को ही इच्छा शक्ति कहा गया है। इस सद्रूपा माया का अव्यक्त रूप ही अव्याकृत है, जिसकी इच्छा से क्षोभ का विस्तार संचार होता है। तदनुसार योगमाया व्यवस्था करती है। सुमंगला ने अव्याकृत में, अव्यक्त रूप चिदाकाश में—विकसित देखने की इच्छा के लिए—शून्य मण्डल में योगमाया (जिसमें पंच शक्तियाँ निहित हैं) को व्यवस्था सौंप दी। योगमाया की प्रेरणा से महामाया-रोहिणी शक्ति ने विश्व को व्यक्त रूप प्रदान किया और स्वतः विश्वरूपा बन गई। जब विश्व स्थल की ओर बढ़ा तो आगे का सम्पूर्ण कार्य कालमाया को सौंप दिया जो गुणात्मिका दृष्टि की व्यवस्था करने लगी। इस विश्व कार्य में काल-निरंजन निरीक्षक था। अक्षरातीत पर पूर्ण निर्भर होते हुए भी स्वतन्त्र रूप से अपनी सत्ता और स्वायत्तता बनाए रखने वाले अक्षरब्रह्म के चार पाद हैं—सत्, सबलिक, केवल और अव्याकृत। प्रथम तीन पाद शुद्ध चेतन के अखंड वर्तमान है। उसके मन की कल्पना का क्षेत्र अव्याकृत है, वही चतुष्पाद विभूति अर्थात् अविद्यावाद, सुविद्यापादा, आनंदपाद और तुरीयापाद में अधिष्ठान बनाए हुए है। इसकी कल्पना के जड़ चेतन का सारा विस्तार मन का है जो आवरण और विक्षेपा—दो शक्तियों की विलक्षण सामर्थ्य का परिणाम है जिसका उदय या लय यथाक्रम होता रहता है। उसका मन अपने 'अव्याकृत'' पाद में इन्हीं शक्तियों का आश्रय ग्रहण कर कल्पना करता है। सृष्टि के समस्त पदार्थ आवरण और विक्षेपा से उपहित (ढंके) प्रतीत होते हैं। विक्षेपा आवरण रूप निद्रा को बढ़ाती है और स्वप्न को खड़ा कर देती है। अव्याकृत का मोह-आवरण ही चेतन जीव को अपने मूल स्वरूप तक पहुंचने नहीं देता—

विक्षेपाऽवृत्ति रूप देव मायायाः कथिते बुद्धेः।
आवृत्ति शक्ति निद्राया विक्षेपा स्वप्न रूपिणी॥

तत्त्वतः सबलिक और केवल में विशेष कोई पार्थक्य नहीं। सारा परमधाम पूर्णब्रह्म के साम्राज्य में है। अखंड रासलीला का स्थान, जैसा उल्लेख किया जा चुका है, सबल ब्रह्म के महाकारण में निर्धारित हुआ। अक्षरब्रह्म ने

जो वस्तु देखी, उसे उसने अपने चिदंतःकरण में धारण कर लिया। अंतः रास सबलिक में ही प्रतिष्ठित हो पाया, केवल ब्रह्म में नहीं। यथा—

ये असल नूर मकान की, नूर सागर साबित।
देखो नूर के तरंग, रास भिस्त कही तित॥

केवल धाम में स्थूल या सूक्ष्म कारण का निर्धारण नहीं, वहां एकमात्र स्वरूप केवल ब्रह्म है। केवल धाम की स्वामिनी ने अपने रचे रासमंडल में केवल धाम के ऐश्वर्य पर परमधाम के ब्रह्मानंद को आमन्त्रित किया था। अतएव रासमंडल का औपचारिक सम्बन्ध केवल के साथ ही संभव है। इसलिए केवल ब्रह्म की स्वामिनी के द्वारा लाए गए उसके धाम में आनन्द का साहचर्य भी इस केवल धाम को प्राप्त हो सका। केवल धाम रसानंद लीला-धाम है और परमधाम का प्रतिभास अथवा प्रतिबिंब (स्वरूप) है। वहां के नौ खडों से नौ रसों की अवधारणा और योग्यता भी स्पष्ट व्यक्त होती है।

कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से सुमंगला नाम्नी शक्ति ने प्रगट होकर महामोह रूपी निद्रा को प्रकट किया। जिससे पुरुष का मन संकल्प विकल्प के द्वारा नारायण या महाविष्णु रूप में प्रकट हुआ वहां पांच पुरुषों का पंचावयव प्रणव कहलाता है। शिव, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—इन देवों का प्रादुर्भाव इन्हीं से होता हे।[27]

महामति प्राणनाथ जी की वाणी में 'श्री राज जी' के रूप में परब्रह्म का निरूपण हुआ है। वे चिद्घन स्वरूप अनादि सत्ता, सत्य और आनन्द हैं। आनन्द अंग श्यामा (स्वामिनी) जी अपनी बारह हजार अंगनाओं (ब्रह्मप्रियाओं—मूर्तमंत कलाओं)—के साथ चेतन स्वरूप में धाम-धनी (स्वामी) को आह्लाद प्रदान करती हैं। अक्षर ब्रह्म नित्य इनके दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं, जहां परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण तथा आनन्द स्वरूप श्यामा—अपने समस्त लीला-परिकर सहित अखंड-प्रेम-लीलोत्सव में मग्न हैं।

'श्री रास' के श्रीकृष्ण अपनी समग्रता में अक्षरातीत ब्रह्म के आवेश स्वरूप हैं, पर विभिन्न लीलाओं में उन्होंने आवश्यकतानुसार स्वयं को प्रकट भी किया है।

27. संसार की उत्पत्ति के पूर्व यही मोहतत्त्व उत्पन्न हुआ। फिर तीन गुणों के अधिदेव ब्रह्मा विष्णु, महेश उत्पन्न हुए। पांच तत्त्व और इनके समायोग से सृष्टि बनी। अक्षर ब्रह्म के मोह तत्त्व से महा विष्णु की उत्पत्ति हुई। तदुपरांत पांच तत्त्व और तीन गुण और अन्यान्य देवों की उत्पत्ति हुई—यह विशेष सृष्टि क्रम है, जिसे प्राणनाथ ने स्वीकृति प्रदान की है। जो भी हो, मोह को उसमें विशेष स्थान मिला है—

इत अक्षर को विलख्यो मन, पांच तत्त्व चौदे भुवन।
यामें महा विष्णु मन, मनथे त्रिगुण, ताथे चिरचर सब उत्पन्न॥

महामति इस विभाजन को ही अपना आधार बनाते हैं और उनका 'तारतम्य' श्री कृष्ण के सम्पूर्ण चरित को इसी आधार पर व्याख्यायित करता है। उनकी लीला के अनुसार उनकी स्वरूप-शक्ति का विवेचन करता है।

रास मण्डल के सृजन और रासलीलानुष्ठान के कारण और प्रयोजन पर विद्वानों ने बहुत प्रकार से विचार किया है। लीलाप्रवण श्री कृष्ण ने अपनी भगवत्ता और पूर्णावतारत्व की अवधारणा से, संदिग्ध या सशंकित धारणा से ग्रस्त देवों की ही नहीं—स्वयं ब्रह्मा तथा इन्द्र के सन्देह की निवृत्ति की और अपना पूर्णावतार[28] प्रमाणित किया।

अक्षरातीत ब्रह्म की अंगनाएँ या विविध कलाएं इस सत्य या तथ्य से अपरिचित और अनभिज्ञ थीं कि मायाजन्य ब्रह्मांड मिथ्या, जड़ और दुःखपूर्ण है। साथ ही, अपने परमात्मा प्रियतम श्री कृष्ण के परम प्रेम से भी उनका अन्तरंग परिचय नहीं हुआ था कि श्री कृष्ण उन्हें कितना प्रेम करते हैं। प्रेम या ज्ञान परमधाम में पूर्ण होने के कारण वे संभवतः एक दूसरे से अनभिज्ञ थे। इसी प्रकार अक्षर—ब्रह्म को 'प्रेम-लीला' की खबर नहीं थी और ब्रह्मानन्द में निमग्न ब्रह्मात्माओं (अंगनाओं) को इस दुःखपूर्ण नश्वर ब्रह्माण्ड (सृष्टि) का पता न था। अतएव दोनों को एक दूसरे से परिचित कराने के उद्देश्य से अभावाश्रित कृत्रिम वातावरण की सृष्टि की गई और मोह को इसमें उपर्युक्त भूमिका दी गई। इसी की साक्षी के लिए ये अंगनाएं अपनी शक्तियों सहित इस ब्रह्माण्ड में तीन बार अवतरित हुई[29] यथा—

१. ब्रज गोकुल में (कालमाया) के ब्रह्मांड में—राधा एवं गोपियों के रूप में,
२. योगमाया की देह में—रास मण्डल में,
३. श्री श्यामाजी—देवचन्द्रजी तथा दूसरे कलेवर में महामति प्राणनाथ और समस्त 'सुन्दर साथ' के रूप में—ये अंगनाएं नर-नारियों की तरह देहधारी हुईं।

अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत ब्रह्म का सत अंग स्वरूप होने से सापेक्ष है, अतः

---

28. श्री मद्भागवत का उत्तम पुरुष या अक्षरातीत ब्रह्म है—जो सत्घन, चिद्घन और आनन्दघन —'सच्चिदानन्दघन'—इन तीन गुणों या शक्तियों का भोक्ता, होता और दृष्टा—पूर्णब्रह्म परमात्मा कहा गया।

29. कालमाया का एजो इंड, उपज्यो ओर जाने सोई ब्रह्मांड।
ए तीसरा इंड नया भया जो अब, अक्षर की सुरत का सब ॥

46/प्र० 37/प्रकाश हिन्दु०

वह अवर या न्यून है ।[30] श्रुतियों ने इसलिए अक्षर ब्रह्म को 'परावार' और पूर्ण ब्रह्म को पूर्णातिपूर्ण कहा गया । तो भी अंगस्वरूप और अंगी का भेद होता ही नहीं[31]—'स्वरूप ए ने लीला दोय'—यह तो मात्र लीलागत भेद है—स्वरूपगत नहीं ।

गीता में प्रोक्त उत्तम पुरुष या अक्षरातीत का आवेश ही, अखंड वृन्दावन में रासलीला का उपलक्ष्य बना । महामति के 'श्रीरास' में सच्चिदानन्द तथा आनन्द-घन की मूर्तिमान स्वरूपा—किशोरी या श्यामा जी कही गई । उत्तम पुरुष को निजनाम श्री कृष्ण कहा गया, जो उक्त अर्द्धांगिनियों वा ब्रह्मात्माओं के साथ 'स्वलीलाद्वैत' में सुस्थित है ।

नित्य गोलोक में गोपियों सहित या गोपिका-यूथ के साथ श्री राधा-कृष्ण जी अहर्निश लीला-विहार करते हैं । यह अखण्ड, अनन्त और आनन्दमय लीला है, जिसे महामति ने 'महारास' की प्रतिबिम्ब लीला कहा है ।[32] वस्तुत: यह लीला अक्षर ब्रह्म के हृदय में अंकित या परावर्तित हुई । जिसका प्रतिबिम्ब उनके चिदाकाश में स्थित मूर्तमंत वेद-ऋचाओं ने देखा और उसे इन्द्रिय-प्रत्यक्ष करना चाहा । फलस्वरूप इस सृष्टि में उनकी सुरत या भाव मूर्तियाँ—गोपियों के देहाकार में प्रविष्ट हुई । लेकिन परमधाम की चिन्मय आनन्द-लीला का सुखानुभव प्राप्त कराने के लिए चेतन रासमण्डल का निर्माण अपेक्षित था । महामति ने इस रास प्रक्रिया को अनुभव सम्मत बनाने के लिए ही अपने 'तारतम' से अनुभव-समृद्ध किया और ज्ञानी तथा योगी की समाधि को प्रेमगम्य बनाने का स्पष्ट आधार प्रदान किया । 'प्रकाश हिन्दुस्तानी' का अन्तिम प्रकरण (संख्या ३७) इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—जिसके अध्ययन-मनन और निदिध्यासन बिना 'रास'

---

30. गीता में अक्षर ब्रह्म को परात्पर पुरुषोत्तम की अपेक्षा न्यून और अपर ही प्रतिपादित किया गया है । क्षर का अर्थ जीव तथा अक्षर का अर्थ ब्रह्म माना गया है—
यस्मात्क्षरमतीतोऽहम क्षरादपि चोत्तम: ।।

अक्षर परमात्मा व पुरुषोत्तम संज्ञक: । अभावप्येक एवार्थौ लीलादेदन सुन्दरि ।
31. अक्षरे सृष्टि कर्त्तृत्वान्न शृंगार रसोदय: । अमायत्वाद्रसात्वन्न पर: सृष्टिकृतिप्रिये ।।
(पटल, माहेश्वर तंत्र)

32. यह लीला परम धाम और क्षर ब्रह्मांड के बीच बेहद भूमिका में संपन्न हुई—जिसे हद के जीव नहीं जान सकते । महामति ने बार-बार इसका संकेत अपनी बानियों में दिया है—

पैंड़ा बेहद वतन का, ए वतनी जाने ।
हद का जीव बेहद का, द्वार क्यों पेहेचाने ।। 82/प्र० 31/प्रकाश हिन्दुस्तानी

की ग्रन्थियाँ नहीं खुलतीं। महामति ने जोगियों के जोग और ज्ञानियों के ज्ञान को प्रेम की कसौटी पर नया उत्कर्ष प्रदान किया और वेदऋचाओं जैसा ज्ञान और ब्रह्मानुभव की साक्षी ब्रह्मांगनाओं को भी प्रेमामृत पिलाकर आप्यायित किया। ज्ञान और योग को प्रेम के विरुद्ध खड़ा करना या ज्ञान तथा योग बनाम प्रेम जैसा कोई विवाद खड़ा करना महामति का उद्देश्य नहीं था—लेकिन प्रेम को भी आध्यात्म पथ या "आत्मनं विद्धि" के लिए ज्ञान और योग की तरह एक सशक्त पथ और पाथेय बनाने का आर्य संकल्प ही उनके तारतम का उद्देश्य था—महामति की निम्नोद्धृत पंक्तियों में यह उपक्रम स्पष्ट वर्णित है—

'याही सुरत की सखियां भई, प्रतिबिम्ब वेद रिचा जो कही।
जाको कह्यो ऊधो ग्यान जोगारंभ, सो क्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिंब ।।

४७/प्र० ३७, प्र० हि०

अक्षर ब्रह्म के हृदयस्थ सबल ब्रह्म के महाकारण में, नित्य (शाश्वत, अखंड) वृंदावन में सुसंपन्न यह रास लीला अप्रतिम और दुर्लभ है। पूर्ण ब्रह्म के संपूर्ण ऐश्वर्यों का जहां पर नित्य और निरंतर उदय हो रहा है, वहीं नित्य सुख धाम, गोलोक प्रांगण स्वरूप, वृंदावन में कुंजविहारी रसराज, रसिक-शिरोमणि और ललित किशोर श्री कृष्ण अपनी प्रियातमा गोपियों के संग रास रचाते हैं। यह रासलीला वास्तवी स्वरूप में प्रकट होने पर और भी महिमा-मंडित हो जाती है।

नित्य वृंदावन धाम में परम कमनीय, त्रिभंग ललित और दिव्य-स्वरूप वेणु वल्लभ श्री कृष्ण अपने पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य के साथ चतुर्दिक व्याप्त होते हैं।[33] रास मंडल के वन, उपवन, समस्त वन राशि, प्रकृति, वीथी, गोप-गोपी, ग्वाल—बाल, यमुना-पुलिन, गिरि-कांतर और प्रांतर सभी महत् अलौकिक सौंदर्य-राशि के साक्षी और सहभागी हैं, पात्र और सहभोक्ता हैं। श्री कृष्ण की उपस्थिति सारे ब्रज मंडल को, उसकी समस्त आकांक्षाओं, उपलब्धियों और संभावनाओं को एक रूप कर देती हैं। वहां के कण-कण में दिव्य ज्योति द्योतित हो रही है। चिन्मय का प्रवेश मृण्मय को इसी प्रकार महिमामंडित या

33. ततश्च स उपदिष्टो गोलोकादुपरि स्थितम्। स्थिरं वायुधृतं नित्यं सर्वसुखास्पदम ।।
नित्य वृन्दावनं नाम नित्यं रास महोत्सवम्। अपश्यत्परम गुह्यं पूर्ण प्रेम रसात्मकम्।
तस्यहि वचनादेव लोचनादेववीक्ष्य तद्रहः। विवश पतितस्तत्र विवृद्ध प्रेम विह्वल ।।
—पद्म पुराण

गौरवान्वित करता है ।[34] परात्पर स्वरूप श्री कृष्ण की अनुवर्त्तिनी गोप-रमणियो की रास नृत्य लीला इसी अभिनंदित और पुण्य भूमि पर सम्पन्न हुई । जिसमें समस्त वृंदावन का परिमल-उत्सव, दिव्य-उल्लास और उच्छल आनंदवेग हिलोरें लेने लगा । प्रकृति की दिव्य और चिन्मयी शोभा अणु-अणु में और दिक्‌दिगंत व्याप्त हो गई । इस मिलन महोत्सव की झांकी का वर्णन करते परा-प्रेमी की वाणी नहीं थकती—

जीवन सखी व्रन्दावन रंग जोईये जी, जोईये अनेक रंग अपार ।
विगतें वन देखाडूं तमने, मारा सुन्दर साथ आधार ।।

१/प्र० १०/श्री रास

नित्य वृंदावन में अनुष्ठित रास का सारा आयोजन योगमाया प्रेरित था । इस पार्थिव और नश्वर शरीर में दिव्य, अलौकिक और दिव्य सुख-संभार को पाने की योग्यता और क्षमता नहीं । योग-शक्ति निर्मित रासमण्डल की अनन्य शोभा और परामानवी या अतिप्राकृत रासानंद का यथार्थ अनुभव कराने के लिए योगशक्ति के शरीर की भी आवश्यकता हुई । अतः रासमंडल में प्रवेश करने के पूर्व ही योगमाया का कलेवर धारण करना पड़ा । योगमाया ने बड़ी कुशलता और युक्तिपूर्वक गोपियों के नश्वर शरीर में अविनश्वर तत्त्व को संस्थापित कर दिया—उन्हें नया चेतन स्वरूप और अनिर्वचनीय शृंगार-लालित्य प्रदान किया—

साथ दौडे रे घणवें आकलो, मननी न पोहोंती हाम ।
जोगमाया सामी आवी जुगत सूं, सिणगार कीधों एणे ठाम ।।

२६/प्र० ५/श्रीरास

रास योग्य इतर शरीर, नया संस्कार, चिन्मय स्वरूप-शृंगार और प्रेम का नया भाव संभार लेकर ही सभी गोपियां—श्यामाजी के साथ रास हेतु प्रस्तुत और प्रवृत्त हुईं—

जोगमायानों देह धरीने, श्री श्यामाजी तयां तैयार ।
ततखिण तिहां तेणे ठामे, मारे साथें कीधों सिणगार ।।

१/प्र० ७/श्रीरास

रासलीला के समस्त पर्यावरण और उसके परिकर, उपादान और भाव उपकरण संभवतः अशरीरी और अनंग थे—इसलिए रासलीला के चेतन का

34. रेतसेत सोभा धरे कांई व्रन्दावन मंझार । सकल कलानो चंद्रमां तेज धरा धरे अपार ।
31/प्र० 1० ।।

एह सरूपने एह व्रन्दावन, ए जमुना त्रट सार जी ।
धरती तीत ब्रह्मांडथी अलगो, ते तारतमे कीधों निराधर जी ।। 36 ।। प्र०-1० श्री रास

स्वरूप लीला पर्याय भी माना जा सकता है—जिसमें सत् चित् का आनंद-आवेश या आदेश भी सम्मिलित था। वस्तुतः लीला ही ब्रह्मांड या संबद्ध सृष्टि-क्रीड़ा का मूल स्रोत या कारण है। इसे श्रीमद्भागवत के इस विशिष्ट संदर्भ से भी संपुष्ट किया जा सकता है। रास रात्रि के अवसानोपरांत जब सब गोपियां अपने-अपने घरों में लौटीं तो रास का रहस्य किसी (घरवाले) पर प्रकट नहीं हो पाया। क्योंकि रास के इन्द्रजाल से विमोहित ब्रजवासी अपनी अपनी स्त्रियों को रात भर अपने पास ही समझते रहे—अतः श्री कृष्ण के प्रति किसी को द्वेष-भाव न हुआ। न उन्होंने गोपियों को ही फटकारा—।[35] दूसरी तरफ रास रस मय आयोजनोत्सव पर जिस-जिस रूप में गोपियों ने अपना संकल्प बताया—श्रीकृष्ण ने अपना प्रेमास्पद प्रदान कर पूर्ण किया ताकि उनकी मनोकामनाएं अपूर्ण न रह जायें। उन्हें हर स्तर पर पूर्ण आनंद प्राप्त हो और असंतोष न रह जाये—इसलिए उन्होंने अपने तेजांश को सभी गोप-रमणियों में बराबर-बराबर वितरित किया ताकि सबके मनोरथ पूरे हो सकें—

सखी सखी प्रते स्याम, वालें जीऐं देह धर्या।
कांई वल्लभ सूं आ वार, आनंद अति करया॥
मारा पूरण मनोरथ जेह, थया वरसूं मली।
कांई रही नहीं लवलेस, बालाजीसूं रंग रली।

१-२/प्र० ४४/श्रीरास

चित्त का असन्तोष भी (अहंकार सदृश) चित्त के विकार का कारण बनता है। इसी के परिहार हेतु लिए रासलीलाधीश्वर श्री कृष्ण अपनी योगमाया शक्ति के द्वारा प्रत्येक दो-दो गोपियों के मध्य प्रकट थे—

बालेंजी ए कीधों विचार, केम मलसे सघली नार।
त्यारे देह धर्या अनेक, सखी सखी प्रते—एक॥ ३२/प्र० ३३ **श्री रास**

अक्षर ब्रह्म कालमाया और योगमाया द्वारा अनेकशः और अगणित ब्रह्मांडों की रचना कर उन्हें मिटाया करते हैं। इसलिए उनकी लीला को बाल-लीला कहा गया। जैसे बालक रेत पर घरौंदा बना-बनाकर मिटा दिया करता हैं। अक्षर ब्रह्म की आज्ञानुसार दुःख, असत्य और जड़ता से पूर्ण विश्व की रचना की गई और ब्रह्मात्माओं को मोह ग्रस्त (अरवाहों को फरामोश कर) इस ब्रह्माण्ड में

---

35. नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्थ मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वन्स्वान्दारान् ब्रजोकस ॥ 10/38/33/श्रीमद्भागवत

महामति ने इसका कारण जागतिक प्रलय और पुनः ज्यों का त्यों सृष्टि रचना बताया।

उतारा गया। महामति ने 'श्री रास' ग्रंथ का आरम्भ इसी मोह ग्रस्त संसार—जिसके चर्तुदिक दावाग्नि प्रज्वलित है—किया है। मोहमाया से ग्रस्त और त्रस्त संसार असाध्य रोगों और रोगों की गुंजलक में अपने अंतर की अपार जलन लिए कराह रहा है। मायाप्रेरित दुष्ट—सज्जनों को यातना पहुंचा रहे हैं और उन्हें आधे क्षण के लिए भी शांति (समाधि) प्राप्त नहीं। संसार कष्टों का ही पर्याय है और कष्ट या यातनाएँ—सभी माया प्रेरित हैं—

हवे पेहेलां मोह जलनी कहूँ वात, ते तां दुखरूपी दिन-रात।
दावानल बले कै भांत, तेणी केटली कहूँ विख्यात ।।
विस्वने लागी जाने व्राध मांहें अगिन बले अगाध।
ते तां पीडे दुष्ट ने साध, नही अधखिणनी समाध ।।

१-२, प्र० १/श्रीरास

योगमाया अधीन जो रास सम्पन्न हुआ—उसे आधी निद्रा और आधी जाग्रतावथा की लीला बताया गया है अर्थात् वह स्वप्न की लीला थी—

'कछुक नींद कछुक सुध, रास को सुख लियो या बिध।'

अक्षरातीत श्री कृष्ण के प्रति गोपियाँ सहज ही आर्कषित हुईं, परन्तु श्री कृष्ण को अपने पतिरूप में पहचान लेने पर भी—अपने मूल स्वरूप एवं परमधाम के प्रति अनभिज्ञ रहीं—क्योंकि 'निद्रा' (अर्थात् माया) का लेश (या प्रवेश) रास मंडल में बना ही रहा—इसीलिए इसे स्वप्न-लीला कहा गया—

कछू नींद कछू जाग्रत भए, जोगमाया के सिनगार जो कहे।
जोगमाया में खेले रास, आनन्द मन आनी उलास ।।

३३/प्र० ३७/प्रकाश हिन्दु०

रासलीला का वास्तवी[37] स्वरूप वह है—जिसमें अक्षर ब्रह्म की मनोकामना

---

37. नित्य गोलोक में होने वाली लीला वास्तवी लीला की प्रतिबिम्ब लीला मानी गई है। मृत्यु लोक पर उसका जो प्रतिबिम्ब होता है—वह गोलोक लीला का आभास मात्र है। बृहद्-वामन पुराण में रासलीला का स्थान नित्य गोलोक में मानते हुए उसे केवल धामाश्रित माना गया है—

ब्रह्मानन्दमयो लोको नित्य गोलोक संज्ञकः। निगुणोऽनद्यनन्तश्च वर्त्तते केवलऽक्षर ।।
पेहेला तकरार हूद घर, दूजा किस्ती पर।
तीसरा भया फजर का, जाने वाही लैलत कदर ।। 16/प्र० 13/खुलासा

'परब्रह्म' अधिष्ठाता, रचयिता प्रेरक एवं अनादि सत्ता का द्योतक है। नारायण और महा-विष्णु जो संसार के मालिक और पालक हैं ईश्वर हैं। विष्णु के अवतार कृष्ण हैं—जिन्होंने गोकुल त्याग के बाद मथुरा की लीलाएँ कीं

पूर्ण करने के लिए—अक्षरातीत ब्रह्म और उनकी अंगनाओं की क्रीड़ाओं का अवतरण हुआ। ब्रज में अवतरित ब्रह्मप्रियाओं की सुरत (भाव-निर्मितियों) के साथ अक्षर के चिदन्तःकरण में—सांसारिक देहाभिमान एवं मायामोह प्रेरित (ग्रस्त) जो राग-बंधन हैं—उसके प्रत्याख्यान हेतु इसका आयोजन किया गया। इस लीला के लिए योगमाया का नया चेतन ब्रह्माण्ड—परमधाम के आवेश से अनुग्रहीत और अक्षरातीत की सत्ता-शक्ति और महिमा से अभिमंडित—बेहद भूमिका में बनाया गया। यह रास-संसृति प्रत्यक्ष जड़ जगत् या साक्षात् संसार की हद भूमि से अलग थी। यही लीला अक्षर के हृदय में अंकित हुई—जिसका प्रतिबिंब या प्रतिभास उनके चिदाकाश में अवस्थित मूर्त्तमन्त वेद ऋचाओं ने देखा। तदुपरांत—

पीछे जोग माया को भयो पतन, तब नींद रही अख्यर सैयन।
ब्रज लीलासों बांधी सुरत, अखण्ड भई चढ़ि आई चित॥
अख्यर चित में ऐसो भयो, ताको नाम सदा सिव कह्यो।
ब्रज रास दोऊ ब्रह्मांड, ए ब्रह्म लीला भई अखण्ड॥

४२-४३, प्र० ३७, उपरिवत्

श्रीमद्भागवत में अंतर्ध्यान-लीला प्रसंग दो बार उल्लेखित है। पहली बार सामूहिक रासनृत्य-क्रम में गोपियों के मन में मान (अहंकार) होने पर और दूसरी बार विशिष्ट गोपिका के साथ लीला-क्रम में विशेष अधिकार जताने (मान के उदित होने) पर। परवर्ती अंतर्ध्यान-लीला विशेष, महत्त्वपूर्ण, कदाचित् अप्रत्याशित और रहस्यपूर्ण भी है। त्रिभंग ललित और त्रिभुवन कमनीय मन्मथमन्मथ श्री कृष्ण को एकांत में पाकर जब श्रीप्रिया का मान बढ़ गया और अन्यान्य गोपियों के मुकाबिले उसका पदैश्वर्य अभिमान व्यंजक हो गया तो वन के एक निभृत निकुंज के निकट श्रीकृष्ण को अपने निकटतम पाकर गर्वान्विता गोपिका ने यह (मानपूर्वक) जब 'कहा अब आगे चला नहीं जाता, जहां तुम्हारा जी चाहे मुझे ले चलो।' श्रीकृष्ण ने उसके अहंकार के भंजन का लक्ष्य सामने रखकर उसके मान की रक्षा की और उसे अपने कंधे पर उठाने को सहमत हो गए। मानवती गोप नायिका जैसे ही उन पर आरूढ़ होने लगी कि श्रीकृष्ण अंतर्ध्यान हो गए।[38]

---

38. एवमुक्तः प्रियामह स्कंध आरुह्यामिति।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ 10/39/30/श्रीमद्भागवत

'श्रीरास' के इकतीसवें प्रकरण के अंत में तथा बत्तीसवें प्रकरण के आरंभ से ही महामति ने प्रसंगानुकूल 'रामत अंतर्ध्यानकी' शीर्षकान्तर्गत इस लीला-प्रसंग को और भी नाटकीय विस्तार प्रदान किया है। जिससे गोप-सखियों का समस्त अहंकार, अनुरोध और अभिप्राय उनकी माधुर्य भावना में परिणत या पर्यवसित हो सके।[39]

प्रिय-संयोग के तीव्र आनंद-योग से मन का पूर्व-संस्कार आसानी से नहीं छूटता—इसलिए गोपवधुएं या व्रजांगनाएं विरह के दंश को इतनी जल्दी भूल गईं। तब विरह की तीव्रता को और भी गरिमा प्रदान करने के लिए सहज ही उपलब्ध श्रीकृष्ण अकस्मात् अंतर्हित हो गए। क्योंकि कृष्ण (और स्वयं महामति) बार-बार इस मोह-प्रपंच तथा अहंकार से मुक्त होने का दृष्टांत और संदेश देना चाहते हैं—

मान घणों मानवंतियों ने, तामसियों भुंभार ।
प्रेम घणों अंग आ संगे, एणे व्रह नहीं लगार ॥
तामस माहें तामसियों, एणी वातडी कही न जाये ।
कहे इन्द्रावती सुनो रे साथ जी, वालें एम कीधां अन्तराएं ॥

६-७॥प्र० ३१, श्रीरास

मानभंग के कारण अंतर्ध्यान के प्रसंग को महामति ने अधिक विस्तार नहीं दिया है, पर विरह-जन्य उच्छ्‌वास को न केवल 'श्रीरास' में बल्कि परवर्त्ती सभी वाणी-ग्रंथों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया है। उनकी इस अंतर्ध्यान-लीला का उद्देश्य गोपियों के उत्तरोत्तर विकासोन्मुख गर्व और अहंकार का मर्दन करना भी था। चित्त में अहंकारोदय होते ही वहां से भगवान अंतर्हित हो जाते हैं। इस गर्व का ह्रास करने की विधि थी, तात्कालिक उपेक्षावृत्ति मात्र—जिससे गोपियों को तत्क्षण अपनी भूल का बोध हुआ और ये अनुताप करने लगीं।

---

39. महामति रास संदर्भ में भी देव विषयक रति भाव को भक्ति से उदात्त बनाना चाहते हैं। श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य की माधुरी से हृदय और आंखों का चंचल और विह्वल होना स्वाभाविक ही था। भक्त हृदय तो उनके चरण-कमलों का ही प्रत्याशी है और गोपियों को तो उनकी चरण की धूल ही मिल जाए, इसीलिए वृन्दावन में उनका आगमन हुआ—

जुओ रे सखियो मारा जीवनी वातडी, मारा मनमां एमज थाए।
नयणां ऊपर नेह धरी, हूं तो धरूं वालाजी ने पाए ॥
सुण सुन्दरी एक बात कहूं खरी, ए तो एम केम थाए ।
नयणां ऊपर केम करीस, ए तो नहीं धरवा दिए पाए ॥ 3-4/प्र० 37, श्री रास

अहंकारात्मक वृत्तियों के निरोध से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है। अहंकार नाश के लिए ही सारी धार्मिक संस्थाएं और नैतिक व्याख्याएं सचेष्ट रही हैं। महामति ने उक्त संदर्भों के आलोक में प्रियतम की अंतर्ध्यान लीला के व्याज से जीव (मनुष्य मात्र की) अहंकारी शिखर-यात्रा को निष्फल और व्यर्थ घोषित किया है। केवल 'श्रीरास' ही नहीं, प्रकाश (गुजराती तथा हिन्दुस्तानी) षटरितु, कलश (गुजराती तथा हिन्दुस्तानी), सिंधी वाणी तथा कियामतनामा आदि वाणी संग्रहों में उन्होंने इस दृष्टांत के सहारे यह वक्तव्य सामने रखा है कि जो परमात्मा प्रेम के निर्व्याज स्नेह-सुधा सागर की मधुर तरंगों में ही डूबा रहना चाहता है, वह केवल आत्मा की तनिक और क्षणिक अहम्मन्यता के कारण अंतर्ध्यान हो जाता है। अहंकार का पर्दा उठ जाए तो दोनों एक दूसरे के समीप और निकटस्थ ही रहते हैं। क्योंकि यह सारा आयोजन, जिनमें चैतन्य रूप श्रीकृष्ण अभिव्यक्त (या प्रसन्न) रहते हैं, तभी तक रास रसमय है; किंतु उनका तिरोभाव होते ही यह विषमय हो जाता है। भगवान के अंतर्हित हो जाने पर गोपांगनाएं भी इसलिए व्याकुल हो जाती हैं।

महामति ने यह सारा प्रकरण अपने हृदय की पीड़ा से समृद्ध या पुरस्कृत किया है, जिससे यह वियोगजन्य पश्चाताप से विशेष उल्लेखित हो उठा है। वहां, जहां गोपियां अपनी मूर्खता पर बार-बार पछताती हैं, सिर पीटती हैं, भूमि पर-पछाड़ खा-खाकर गिरती हैं, एक-दूसरे को सांत्वना देती हैं। उन सबकी अवस्था बहुत ही दयनीय है—

एक पडे एक लडथडे, एक आंसूडा ढाले अपार।
केम चाले काया बापडी, मारा जीवन बिना आधार।।
कठण वेला मूने जाए रे बेहेनी, जेम रे निसरतां प्राण।
काया एम घर हरे, अमें नहीं रे गोताए निरवाण।।

२६-२७, प्र० ३२/ श्रीरास

ऐसी प्राण-सखाओं को, जिन्होंने उन्हें सम्मान देते हुए प्रेम का प्रतिदान मांगा; उनके रास-निमन्त्रण को हर कीमत पर स्वीकार किया—छोड़कर जाना अप्रत्याशित ही लगता है। इसलिए गोप बालाओं के इस उलाहने को कि—'हम जब आप के लिए घर संसार छोड़ कर आ गई तो आपने हमें घर लौट जाने की सलाह क्यों दी'!—श्रीकृष्ण ने भी उनकी विरह-वेदनाजन्य विवशता को उचित आदर दिया और इस बात से उन्होंने आश्वस्त किया कि वे केवल यही देख रहे थे कि उनके चित्त में उन्हीं माया-जन्य वृत्तियों और विकारों का संस्कार तो शेष

नहीं रहा। यही नहीं, श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे उनकी सारी मनोकामनाओं को पूरा करेंगे, अपनी तमाम लीलाओं में, आनन्दपूर्ण रामतों के साथ सम्मिलित करेंगे।

सखियों को और क्या चाहिए, वे कृष्ण के प्रेम से विगलित हो उठीं। उनके आँसू पोछने के लिए साक्षात् श्रीकृष्ण उपस्थित थे।[38] उनको विभिन्न प्रकार के खेलों में हिस्सा लेने को आमन्त्रित कर रहे थे। यही नहीं, श्रीकृष्ण ने संकेत-शैली में उन्हें सतर्क भी कर दिया कि इन आनन्दपूर्ण क्षणों (खेलों) में, जिनमें उनकी समस्त मनोवांछाएं पूरी होंगी, वे माया के बन्धन (मायानो पास) पर भी अपनी दृष्टि रखेंगे। यह शायद उनकी शर्त हो रही होगी। वे यह परखना चाहते थे कि इनमें जागतिक मानापमान या सांसारिक मनोवृत्तियां (विकृतियां) न रह जाएं—

सखी पूरूं मनोरथ तमतणां, कांई करसू ते रंग विलास।
करवा रामत अति घणी, में जोयूं मायानो पास॥

५६, प्र० ६, श्री रास

महामति ने 'श्रीरास' में अक्षर के हृदय में सम्पन्न हो रही लीला तथा श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने का एक महत्त्वपूर्ण कारण और भी प्रस्तुत किया है। वे कहते है कि अक्षर ब्रह्म और और ब्रह्मात्माएं रमण करते हुए रास-लीला के वास्तविक उद्देश्य से च्युत हो गए। उन्हें अपने स्वरूप की सुधि न रही। दोनों लीला में पूर्णतया मग्न हो गए तो अक्षरातीत श्रीकृष्ण ने अपना आवेश रास के कलेवर से हटा लिया। अक्षर ब्रह्म चौंके—

कौन बन, कौन सखियां, कौन हम, यों चौंक फिरी आंतम॥

तब फिर दोबारा रास—यवनिका उठाकर अक्षरातीत श्रीकृष्ण के भजनानंदी स्वरूप ने रासलीला की।[39] अलगाव की स्थिति में जो ब्रजलीला गोपियों ने नाटक की तरह की, वह रासलीला के साथ अक्षर ब्रह्म के हृदय में अंकित हुई। इन्हीं दोनों लीलाओं को वास्तवी अखण्ड लीला माना गया।

'श्रीरास' में महामति ने निर्मल शरत्पूर्णिमा की व्याप्त गौर-चन्द्रिका में—जिसमें सारी सृष्टि चन्द्रस्नात थी—इस विशेष अन्धकार का प्रयोजन और रहस्य दूसरे

---

38. तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानञ्च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥—10/48/39/श्रीमद्भागत

39. प्रथमं भजनानंद निरुपयितुं स्त्रीषुं स्वानन्द स्थापनीय इति तासु रत्यर्थं मिच्छां कृतवानित्याह भगवानपीति"—रास पंचाध्यायी, श्री सुबोधिनी टीका, प्रथम अध्याय संस्कृत सीरीज —प्र० सं० पृ० 16

ही शब्दों में व्यक्त किया है, जहां गोपियों को आगे कुछ भी नहीं सूझ रहा था—

वन गेहेवर अमें जोईयूं, आगल तो दीसे अन्धार।
हवे ते किहां अमें जोईये, मूने सुध नहीं अंग सार।।

(३३/प्रकरण-३२/श्रीरास)

अन्तर्ध्यान लीला के उपरांत जब समस्त विरहणी गोपियाँ श्रीकृष्ण और उनकी श्रीप्रिया को ढूंढने लगीं तो उन्हें पुनः निराशा हुई। इधर श्रीकृष्ण भी निकुंज लीला की एकमात्र अधिकारिणी गोपी (श्यामा—राधाजी) के अहंकार भंजन और अन्यान्य गोपियों को अपनी समबुद्धि का बोध कराते हुए उनके मन की ईर्ष्या वृत्ति के शमनार्थ, उसे एकाकिनी छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गए। गोपियों ने चन्द्र-ज्योत्स्ना में सब जगह ढूंढा, किन्तु आगे घोर अन्धकार का साम्राज्य निकट आ गया तो वे लौट गईं।[40]

'श्रीरास' के अन्तिम प्रकरण में उपर्युक्त रहस्य पर पड़े आवरण को स्वयं श्रीकृष्ण ने अपनी साक्षी देकर हटाया है। वे गोपियों की भांति इस अन्धकार-जन्य विरह के समान सहभोक्ता थे। आनन्दपूर्ण रास गोष्ठी के मध्य ही अन्तर्ध्यान और तदुपरांत अन्धकार का कारण राह में एक वृक्ष का आड़े आ जाना बताया गया।

आपण रंग भर रमतां, व्रख आडो आव्यो क्षण एक।
तमें प्रेमें जाण्यूं के युग बीत्या, एम दीठां दुख अनेक।।

(३७/प्रकरण-४७/श्रीरास)

वर्तमान में जिए जा रहे अभिशप्त क्षणों का प्रत्याख्यान, प्रभु के स्नेहानुग्रह से ही होता है। वस्तुतः प्रेम प्रतीक्षातुर तपस्या का प्रतिफल है, जब प्रभु स्वयं साक्षात् उपस्थित होकर अपने स्नेह-सान्निध्य से सींचते हैं—

सखियो मारी बात सुणो, कां करो ते एवडा दुख।
पुरूं मनोरथ तमतणां, सघली बातें देऊं सुख।।
मारूं अंग वालूं तमतणे वचन वालूं जिभ्या मुख।
बोलावुं तो मीठे बोलडे, जोऊं सकोमल चख।।

४१-४२/प्र० ४७/श्रीरास

---

40. "यह अन्धकार अक्षर ब्रह्म की महामोह निद्रा का ही था जिसमें योगमाया रचित वृंदावन के अतिरिक्त कुछ भी व्यक्त न था। अक्षर ब्रह्म की सृष्टि रचना करने वाली चित्तवृत्ति रास-लीला में पूर्णतया मग्न थी। अन्य ब्रह्मांड की रचना नहीं हो रही थी। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार भी दिया जा सकता है कि जिसके प्रकाश से सब प्रकाशित हैं वह न दिखाई देने से सब निस्तेज एवं अंधकार पूर्ण हुआ, क्षण भर की लीला युगों-सी लगी"—
हृदय प्रकाश, (महाराजा हिरदे शाह विरचित) प्राणनाथ मिशन, दिल्ली पृ० 32

इसी प्रकरण में श्रीकृष्ण ने अपना वक्तव्य (निवेदन) रखा है और अपनी उपस्थिति तथा अन्तर्ध्यान लीला का औचित्य स्पष्ट किया है। जिसका आशय इतना ही है कि जीवात्मा (मनुष्य) अपनी तमाम सदिच्छाओं के बावजूद भगवत्-सन्निधि में भी यदि अपने स्वभाव-विकार को छोड़ नहीं पाता तो उसकी यही दुर्बलता और अवधानता पुनः उसके सारे संकल्प और अभिप्राय को नष्ट कर देती है और वह माया के पाश में बंध जाता है। प्रभु का संकेत इसी ओर है।—

सांभलो सखियो बात कहूँ, मैं जोयूं मायानूं पास।
केम रमाए रामत रैणी, मन उछरंगे रास।। २०/प्र० ४७। श्रीरास

—'हे सखियों, तब मैंने तुम में माया का तनिक लेश देखकर ही ऐसा कहा था। नहीं तो मेरे मन में तो सदैव यही उमंग थी कि मैं तुम्हें पूरी रात भर कैसे खेल खिलाऊं—कहीं मायाप्रेरित जागतिक संस्कार का प्राबल्य तुम्हें विचलित न कर दे।'

महामति ने 'तारतम वाणी में' शुकदेव या नरसी के साक्ष्याधार को कृतज्ञता पूर्वक उल्लेखित करते हुए भी उनके आशय या वक्तव्य को अन्तिम नहीं माना है। महामति अन्यान्य विद्वानों की भांति प्रकारांतर या भाषान्तर द्वारा इसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते, जैसा कि अन्यान्य भाषाकार या टीकाकार करते रहते हैं—

आहीं सोहेली थई तम थकी, एहेने ओलखतूं कोए नथी।
सुकदेवें तो काईंक कथी, बीजा रह्या मथी मथी।। ३५/प्र० १/श्रीरास

शुकदेव मुनि या नरसी मेहता की सीमित पात्रता और नरसी की बहिरंग भूमिका को यथा प्रसंग महामति ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 'रास' जैसे जटिल विषय और कामाध्यात्म प्रेरित प्रसंग को महामति ने 'बेहद' की लीला बताया है— जिसमें 'अधिकारी' के अलावा किसी का प्रवेश वर्जित बताया गया है। इसलिए रास पंचाध्यायी, तारतमवाणी[41] और प्रणामी सम्प्रदाय की प्रश्न-पुष्पांजलि[42] में बार-बार यह जिज्ञासा की गयी है। महामति ने 'रास' रहस्य

41. क्या जाने हद के जीवड़े, बेहद की बातें। रास में खेले अखंड, इत उठे प्रभातें।
लीला सुकें वरनन करी, वृज रास वखाना। बेहद की वानी बिना ठौर-ठौर वंधाना।।
ए पंच अध्याई होवे क्योंकर, मेरे मुनीजी की बान। पर सारसमे बीच अटक्या रस आए सुजान।
50, 60, 69, प्र० 31/प्रकाश हिन्दुस्तानी

42. व्रज अरु रास अखंड है, अरु परलय कहा असंग।
रास रात्रि नित अचल रहो, ये सब कहो प्रसंग।।
कहो विचार विवेक ते कित है बिम्ब उजास। जाको है प्रतिबिम्ब यह, दृश्य रूप प्रकाश।
निराकार को जग कबहुं, उठे नहीं प्रतिबिम्ब। है नित्य सर्वत्र सत कौन ठौर है बिम्ब।।

को स्पष्ट करते हुए इसे 'बेहद'—भूमि की लीला बताया है—जिसमें अक्षरातीत परब्रह्म का आवेश अक्षर ब्रह्म को प्राप्त हुआ। जिस रास में प्रवेश पाने के लिए अक्षर ब्रह्म की पात्रता भी सर्वथा उपयुक्त नहीं—और जहां की दिव्य और चिन्मय लीला का एक अंश प्राप्त करने के लिए ब्रह्मांगनाओं की सुरिता को योगमाया प्रदत्त चेतन शरीर का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है—उसके रास सुख को हद का प्राणी कैसे हस्तगत कर सकता है। बेहद (असीम) में हद (ससीम) का प्रवेश सम्भव ही नहीं—

जो बल किया नरसैयें, कोई करे न और।
हद के जीव बेहद की, लीला देखी या ठौर॥

५६/प्र० ३१/**प्रकाश, हिन्दु०**

स्वयं शुकदेव रास के लौकिक अर्थ सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न की सम्भावना और अनुभवातीत कथा तथा वर्णनातीत रास-माहात्म्य से सशंकित थे। उन्होंने स्वयं स्वीकारा है—

'ए वानी मेरे मुख थें ना पड़े, ना तेरे श्रवना संचरे।
ए जोग आपन नाहीं दोएं, तो इन लीला को सुख क्यों होए॥

१४/प्र० ३३/**उपरिवत**

वस्तुतः शुकदेव जी को सात दिनों तक ही भावानन्दी कृष्ण-लीला का आनन्द प्राप्त हुआ और वे इसी भावावेश में रास के आनन्द का वर्णन करने लगे। जिन तमाम सम्भावनाओं के साथ वेद-ऋचाओं को अक्षरातीत के अखण्ड रास का थोड़ा-सा प्रतिभास हुआ था, उसे नरसी मेहता ने भी अनुभव किया था। वे बेहद भूमि से छन छन कर आती हुई शीतल और प्रेमल रास लहरी का जायजा भर ले सके ही थे कि चार दरवाजे उनके आड़े आ गए—

नरसैंया दौड़या रस को, वानी करेरे पुकार।
रस जाए हुआ अन्दर, आड़े दरवाजे चार॥
द्वार ने इन बेहद के, लेहेरें आवें सीतल।
सो इत खड़ा लेवही, रस की प्रेमल॥
इन दरवाजे नरसैयां, प्रेमें लपटाना,
लीला पिछले साथ में, सुख ले समाना।

५७-५८/प्र० ३१/प्रकाश **हिन्दु०**

महामति ने यत्र-तत्र इन प्रसंगों को आधार बना कर केवल यही बताना

चाहा है कि जब तक दैवी या अतिप्राकृत व्यवस्था नहीं होगी, 'बेहद' की पहचान असम्भव है और जब इस व्यवस्था के अन्तर्गत कोई 'तारतम्य' न हो तो सारी लीला-सरणि का उच्छेद हो जाता है। योगमाया की लीला-योजना के अन्तर्गत जब तक अक्षरातीत का आवेश संयोजित रहता है, तब तक रासलीला का सारा कार्यक्रम निर्विघ्न सम्पन्न और सम्पादित होता रहता है और उनका आवेश जैसे ही विदा होता है—सारा आयोजन स्थगित हो जाता है—

जोग माया में खेल जो खेले, संग जोस धनी के भेले ।
जोग माया में बाढ्यो आवेस, सुध नहीं दुख सुख लव लेस ।।
फेर मूल सरूपें देख्या तित, ए दोऊ मगन हुए खेलत ।
जब जोस लियो खेंचकर, तब चित चौंक भई अख्यर ।।

३४-३५/**प्र० ३७/उपरिवत**

'श्री रास' में भी अक्षरातीत के आवेश से निष्पन्न जो रास-लीला सम्पन्न हो रही थी, वह अचानक अन्तर्हित हो जाने से विघ्नित और व्याहत हो गई। विरह-संतप्त गोपियों को पुनः जब वह आवेश[43] प्राप्त हुआ तो उन्होंने स्वामी को नए स्वरूप और वेष में देखा और वे प्रियतम के स्नेहानुराग से अभिषिक्त हुईं—

आया सरूप कर नए सिनगार, मजनानंद सुख लिए अपार ।
दोऊ आतम खेले मिने खांत, सुख जोस दियो कै भांत ।। ४०/उपरिवत

महामति ने इसीलिए 'इन्द्रावती' नायिका का स्वरूपावलम्बन ग्रहण किया है, क्योंकि वह अक्षरातीत के परमधाम की प्रिय-ब्रह्मांगना है। जब तक उस ब्रह्मात्मा का अनुप्रवेश और साक्ष्य प्राप्त नहीं होगा—'हद' के साधक के लिए 'बेहद' का सुखानुभव असम्भव है—

'ए वानी बेहद प्रगटी, इन्द्रावती मुख ।
बोहोत विधें हम रस पिए, बेहद के सुख ।।

८४/प्र० **३१/उपरिवत**

महामति ने कुमारिकाओं को 'ईश्वरीय सृष्टि' को कहा है, जो ब्रह्मसृष्टि का आनन्द प्राप्त करने के लिए व्रत-साधना करती रहीं। व्रजवधुओं के रूप में

43. "कृष्ण के अंतर्ध्यान हो जाने पर वियोग के दुःख का अनुभव हुआ। उन्होंने प्रियतम की महिमा के साथ-साथ अपनी शक्ति का भी अनुभव किया। इसलिए श्रीराधा जी को कृष्ण बनाकर वे व्रज लीला का नाटक खेलने में सफल हुईं। उस नाटक में वे इतनी तल्लीन हुईं कि वियोग का दुःख भी भूल गईं। उस आकर्षक खेल में स्वयं श्रीकृष्ण भागीदार बनने को विवश हो गए।" महामति प्राणनाथ एवं तारतम वाणी—श्रीमती विमला मेहता, पृ०51

जिन ब्रह्मात्माओं (या ब्रह्ममुनियों) का उल्लेख है, वे सुख दुःखमय विश्व देखने की इच्छा से संसार में आईं। कुमारिकाएं अक्षर की वेद ऋचाए हैं, जिन्होंने परम धाम का आनन्द प्राप्त करना चाहा। चूंकि कुमारिकाए—परमधाम की नहीं हैं, दूसरे शब्दों में, ब्रह्म सृष्टियां नहीं हैं, इसलिए धनी ने उन्हें तपःपूत प्रेम के आधार पर रास (कल्प) में 'ब्रह्मसृष्टि' के अन्तर्भूत कर लिया, जिससे उन्हें रासानन्द प्राप्त हुआ। इन प्रकार धनी श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी रास—लीला में सम्मिलित किया—

> **जेटली नाहती कातिक कुमारिका, ए वासना नहीं उतपंन।**
> **एनी लज्या लोपावी हरीने वस्तर, तेसूं कीधों वाएदो बचन ॥**
> **जो सखी हुती कुमारका, घर नहीं तेहेना अंग।**
> **सनेह बल दया लीधी धणी तणी, ते मलीने भली साथने रंग ॥**
> **साथ दौड़े रे घणवें आकलो मननी न पोहोतीं हाम।**
> **जोगमाया सामी आवी जुगतसूं, सिगणार कीधों एणे ठाम ॥**
>
> **—२७-२९/प्र० ५/श्रीरास**

कुमारिकाओं की संख्या भी चौबीस हजार बताई गई है। ये अक्षर-ब्रह्म की 'सुरिता' से प्रकट हुई थीं, जिन्होंने कात्यायन व्रतोद्यापन किया था। कृष्ण की वंशी का आह्वान सुनकर ये भी अपने-अपने घरों से निकलीं और कालमाया के शरीर का परित्याग कर सुरता (वासना) रूप से रासमण्डल में प्रविष्ट हुईं। रासमण्डल के वृहद् और विशिष्ट लीला-परिकर में इनकी सत्तास्मिता पृथक् नहीं थी। केवल ब्रह्मप्रियाओं के अधीनस्थ होकर उन्होंने रासलीला का सुखानुभव प्राप्त किया था। 'अखण्ड-रास केवल मण्डल' में कुमारिका सखियों के शरीर पृथक् नहीं थे। अक्षर का बाल-स्वरूप होने पर बाल-भाव बना रहता और किशोर लीला के पूर्णानन्द का अनुभव न हो पाता। अक्षरातीत के आवेश स्वरूप को धारण करके उन्होंने भी किशोर लीला के आनन्द का अनुभव किया। उनकी सुरिता ने कुमारिकाओं में नारी (किशोरी) रूप में आनन्द का अनुभव किया।

> **और कुमारका व्रज वधू संग जेह, सुरत सबे अक्षर की एह।**
> **जो व्रत करके मिली संग स्याम, मूल अंग याके नहीं धाम ॥**
> **बेन सुनके चली कुमार, भवसागर यों उतरी पार।**
> **इनकी सुरत मिली सब सखियों माहीं, अंग याके रास में नांहि ॥**
> **या विध मुक्त इनों की भई, कुमारका सखियां जो कही ॥**
>
> **—३०-३२/प्र० ३७, प्रकाश हिन्दुस्तानी**

गोपियों ने जब ब्रज कुमारिकाओं के रूप में, केवल हविष्यान्न खाकर कात्यायनी की पूजा की और व्रत पालन किया तो उनके दो उद्देश्य थे—

—नन्दनन्दन श्याम सुन्दर उन्हें पति रूप में प्राप्त हों,

—भगवान के श्री चरणों को स्पर्श करने का अधिकार प्राप्त हो।

महामति प्राणनाथ की व्यवस्था और धारणा के अनुसार जीव और ईश्वरीय सृष्टि को ब्रह्म-प्रियाओं के माध्यम से ही अखण्डानन्द मिलता है। उनके अन्तःकरण में ब्राह्मी सुरत का प्रवेश हो तभी वे अखण्डानन्द की भोक्ता बन जाती हैं। कुमारिकाओं का उदाहरण लेकर कोई भी भक्त जीव अखण्डानन्द का अधिकारी बन जाता है।

गोपियों की उपस्थित संख्या के बराबर रूप धारण करके, प्रत्येक गोपी के साथ पृथक्-पृथक् विहार करके श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में निहित अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, जो उन्होंने गोप-कन्याओं के कात्यायनी व्रत (भागवत—१०, १२, १-६) से प्रसन्न होकर वरदान के रूप में की थी।[44] पति रूप में उन्होंने उनका पाणि-ग्रहण किया था और परीक्षक प्रेमी के रूप में उनका चीर-हरण। गोपियों का यह आशय और संकल्प स्वयं उन्हीं को ज्ञात था। अध्यात्म पक्ष में 'चीर-हरण' प्रसंग का विशेष अर्थ और प्रयोजन है। भक्त और भगवान के एकांत मिलन—जिसमें किसी प्रकार के (बाह्य) आवरण बाधक न हों, का प्रतीक है। चीर और लज्जा का आवरण व्यक्ति या जीवात्मा के अहं के विसर्जन को द्योतित करता है। क्योंकि सामाजिक या नैतिक मर्यादा की भावना तभी उपादेय और आवश्यक होती है, जब तक वह लोक सापेक्ष या लोकोन्मुख होती है। लेकिन जब भक्त या साधक की वृत्तियाँ पूर्णतया ईश्वरोन्मुखी हो जाती हैं तो सामाजिक कृत्य या मर्यादा बधन निरर्थक ही नहीं, ईश्वरोपलब्धि में यही किंचित्—कदाचित् बाधक भी हो जाते हैं। इसलिए गोपियां ही नहीं, कृष्ण भी सामाजिक रूढ़ मर्यादाओं को तोड़ने में नहीं हिचकते वे चीर-हरण प्रसंग में गोपिकाओं को जल से निर्वसन निकल आने को न केवल प्रेरित, बल्कि विवश भी करते हैं।

---

44. —तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्श कामया।
धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबला ।। (10, 22, 24)
—यताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ।। (10, 22, 27) श्रीमद्भागवत

महामति ने 'श्रीरास' में वैधी भक्ति नहीं, अपितु रागात्मिका भक्ति पर विशेष जोर दिया। बाह्य आचरण, कृच्छ साधन और मर्यादा को वे अनावश्यक महत्त्व नहीं देते। न वे कृष्ण के मानवी या ऐहिक स्वरूप के व्याख्याता हैं। अतः वे इस दृष्टि से जयदेव या नरसी से अलग हो जाते हैं। जिन्होंने भक्ति और श्रृंगार का अनुपम माधुर्य-मांडन किया। महामति की मधुरोपासना का चरम लक्ष्य ब्रह्मानन्द है। सबको पावन करने वाला, परमपावन वैकुण्ठादि लोकों से परे, अविनाशी रास-मण्डल का वर्णन शब्दातीत है। चेतन प्रकाश पूर्ण रास-मण्डल का यथार्थ वर्णन तो अखण्ड वृन्दावन के चेतन शब्द ही कर सकते हैं। सांसारिक और ससीम (लौकिक) शब्दार्थ द्वारा उनके ऐश्वर्य और माधुर्य का वर्णन नहीं हो सकता—महामति ने शताधिक बार इस वक्तव्य को दोहराया है। लीला-भेद से उन (श्रीकृष्ण) की शक्ति, ऐश्वर्य यथा माधुर्य स्वरूप में न्यूनाधिक अन्तर लक्ष्य किया जा सकता है।

अष्टछाप के उपर्युक्त कवि जो भक्तिभाव से श्रीनाथ जी (श्रीकृष्ण के पुष्टी मार्गीय विग्रह) की भक्ति करते थे, भक्तिभाव की उच्चता के कारण श्री कृष्ण के परम भगवदीय अष्ट सखा (या अष्टसखी) मान लिए गए, जो गोपाल कृष्ण की बाल्य और किशोर लीला के संगी—सखा (या सखी) में सर्वाधिक घनिष्ठ, समानवय, समानशील और समान-व्यसन थे।[45] सहजिया सम्प्रदाय ने स्त्री की चौरासी अंगुल के शरीर को ही ८४ कोस वाला व्रजमण्डल घोषित किया था।[46] अष्टछाप या कृष्ण लीला-कवियों का विशेष ध्यान कृष्ण के उस चरित्र पर ही रहा, जो रस और आनन्द का प्रतीक है। उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप पुष्टमार्गी भक्ति का लीला विषय नहीं हो सकता। उनके रसेश्वर के रूप में जिन सन्दर्भों को महामति ने कुमारिकाओं के प्रसंग में जोड़ा है, उनमें इन्हें रास

45. उनका क्रम इस प्रकार है—सूरदास-कृष्ण-चंपकलता ; परमानन्ददास-तोक-चंद्रभागा ; कुंभनदास-अर्जुन—विशाखा ; कृष्णदास—वृषभ—ललिता ; छीत-स्वामी—सुबल-पद्मा ; गोविंददास—श्रीदामा-भामा ; चतुर्भुजदास-विशाल-विमला ; नंददास-भोज-चन्द्र रेखा।

46. परकीया—साधना के लिए सहजिया वर्ग ने देह को वृन्दावन माना है। वे वृन्दावन के भू-संस्थान को देह के रूप में इस प्रकार घटित करते हैं—वृन्दा-कुंज स्तन हैं, तालवन शिर है, नासिका मदनकुंज और देह रस का सरोवर है। 'चैतन्य चरितामृत' में कहा गया है कि प्रेम के पथ पर बिना सखी या गुरु के सफलता नहीं आती। सहजिया इसको इस प्रकार ग्रहण करते हैं कि बिना प्रकृति या मंजरी (स्त्री) का संपर्क किए प्रेम की साधना नहीं हो सकती।'' डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि० सं०, पृ० 191

के समय प्रभु प्रदत्त वचन (आश्वासन) और योगमाया प्रदत्त ब्रह्म सृष्टियों के चिन्मय शरीर तथा ब्रह्मसृष्टि के अन्तर्भूत होकर रस का आनन्द प्राप्त होने का उल्लेख किया है।

ललित किशोर कृष्ण ने, एक शारदी साध्या-वेला में, कुसुमित कानन में पर्यटन करते हुए देखा कि प्राची में अरुणाभ सुधाकर का उदय हुआ है और अपनी अन्यमनस्कता (या लीलाचातुरी) वश वंशी की तान टेर दी। उद्दाम प्रेम की आवेगपूर्ण और रसमयी धार के आकर्षण से ब्रज वनिताओं ने हठात् और अनायास स्वयं को श्रीकृष्ण की मधुर सन्निधि में पाया।

लेकिन त्रिभंगी कृष्ण की वंकिम छविच्छटा से गोपियां तब मर्माहत हो उठीं जब उन्होंने तटस्थता प्रदर्शित करते हुए उनके इस गहन रात्रि में वन दौड़े चले आने का कारण पूछा। यही नहीं, उन्हें घर-परिवार की मर्यादा बताई, वेद-शास्त्रों की दुहाई देते हुए पातिव्रत्य निभाने की प्रेरणा दी। 'श्रीरास' के ये सारे प्रेरक प्रसंग श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण और स्मृति ग्रंथों से मिलते-जुलते से हैं। लीला-बिहारी श्रीकृष्ण के विदग्ध वचनों को सुन कर गोपियों का हतप्रभ होना स्वाभाविक ही था। कहाँ वे कृष्ण की वंशी की टेर सुनकर सारा गृह-कार्य छोड़, पति और बच्चों के साथ-साथ घर की मर्यादा लांघ आई थी और यहां श्री कृष्ण उन्हें उपदेश पिलाने लगे :—

सखियो हजी मारे केहेवुं छे, तमे श्रवणा देजो चित्त।
मरजादा केम मूकिए, आपण चालिए केम अनित।।—२२/प्र० ९/**श्रीरास**

तदुपरांत उन्होंने गोपियों की आर्य-मर्यादा को वेद-पुराण का दृष्टांत देते हुए पुनः उन्हें घर लौट जाने को कहा।[47] क्योंकि पति—भवरोगी, आंधलो (अन्धा) कोढ़ी, अभागा, जन्म से दरिद्र, पिंगल या खोटा हो तो भी कुलवन्ती नारियाँ उसका परित्याग नहीं करतीं।[48]

---

47. श्री रास—24-30, प्र० 9।

48. इसी आलोक में निम्नोद्धृत श्लोक विशेष द्रष्टव्य हैं :—

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा। पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी।।
—10/25/29 श्रीमद्भागवत

मनु स्मृति का श्लोक पति के प्रति नारी के कर्तव्य की व्याख्या इस प्रकार करता है—
'विशील कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः।'
—5/154/मनुस्मृति

—अर्थात पति भ्रष्ट, दुःशील, स्वच्छन्द (उच्छृंखल) अथवा गुणहीन कैसा भी क्यों न हो—तो भी पतिव्रता स्त्री को भगवान् के समान उसकी सेवा करनी चाहिए।

गोपियों पर इस अनुदेश-मूलक आरोप का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वे भी कृष्ण द्वारा दिए गए दृष्टांत का उत्तर उपालम्भ में देने लगी। और उन्होंने न केवल अपने प्रेम से, बल्कि तर्क से भी श्री कृष्ण की सारी शंकाओं को निरस्त कर दिया। उनके तर्क में शक्ति थी, निष्ठा थी और आस्था थी कि वे कृष्ण को मना लेंगी। उन्होंने कृष्ण के आक्षेप या प्रश्न द्वारा ही उन्हें निरुत्तर कर दिया—'जब अवगुणी या अयोग्य पति त्यागने या तिरस्कार योग्य नहीं तो फिर (तुम-सा) गुणवान पति कैसे त्यागा जाए। बताओ, तुममें कोई अवगुण या दोष है? नहीं, तो फिर हम अपने पूर्व (पति) सम्बन्ध को कैसे तोड़ दें—

अवगुण पत नव मूकवो, तो गुण धणी मूकिए केमजी।
तममां अवगुण किहां छे, तमे कां कहो अमने एमजी॥ ३६/उपरिवत

गोपियां यहीं नहीं रुकतीं। वे अपनी विवशता, कृष्ण के प्रेम के बिना अपनी निरर्थकता और अपनी प्रतीक्षा की बातें करती हैं—'यह प्रेम तो आपका ही दिया हुआ है। इस प्यास और तड़प से आप ही मुक्ति दिला सकते हैं। इस तन-मन जीवन (तथा यौवन-धन) पर मात्र आपका ही अधिकार है। आम का पेड़ (आनन्द और प्रेम रूपी बेल) तो आप के ही हाथों लगाया हुआ है, लेकिन समस्त कुटुम्ब, परिवार-परिजन, पुरजन आदि के द्वारा चतुर्दिक कांटों (मर्यादाओं) की बाड़ लगा दी गई है। उनका इस (प्रेम रूपी) फल पर क्या अधिकार है? वे तो अकारण ही रखवाले और शास्ता बन बैठे हैं—

फल रोप्यो आंबो तमतणो, बाड़ कांटा कुटंम पाखल।
बीजो झांपों रखोपूं करे, कांई स्यो रे सनमंध तेसूं फल॥ ४१/उपरिवत

जिस प्रकार बेल से फूल और जल से अलग मीन का कोई अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार यदि आप का भी प्रेम प्राप्त नहीं हुआ तो यह शरीर अभी छूट जाएगा। यह हमारी धृष्टता ही रही होगी या हमारे प्रेम में मर्म का अभाव कि हमने आपके कठोर वचन को सुन लिया और फिर भी शरीर नहीं छूटा।' गोपियों की आत्म-प्रताड़ना का यह एक सर्वोत्तम निदर्शन और विलक्षण उदाहरण है—

'अम माहें कांई अमपणू, जो होसे आ वार।
तो वचन एवा तमतणां, अमें नहीं सांभलू निराधार॥ ४८॥ उपरिवत

'श्रीरास' के आगामी कई प्रकरण श्रीकृष्ण, श्यामाजी (अर्थात् श्रीराधा) और गोपियों के बीच होने वाली विभिन्न क्रीड़ाओं के विवरण प्रस्तुत करते हैं—जिनमें

वृन्दावन की शोभा, कई प्रकार की लीलाएं, क्रीडाएं, सखियों की शोभा-राशि का वर्णन, परस्पर प्रेमोप्रचार, दान और मान लीला आदि के प्रसंग प्रमुख हैं।

प्रियतम प्रतीक्षा की एकरसता और तज्जन्य विरहावस्था को सोद्देश्य बनाने के लिए गोपियों ने कृष्ण-लीलानुकृति का आलम्बन ग्रहण किया। वे स्वयं इन लीलाओं का आश्रय भी बनीं। प्रकरण तेंतीस इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, जिसकी विभिन्न चौपाइयों (कोष्ठकांतर्गत) में इन लीलाओं, यथा— बाल-लीला (४, ५), (पूतना वध (६, ७), अन्यान्य असुर-संहार (८), माखन-लीला (६-१५), यमलार्जुन मुक्ति लीला (१६-१६), गोवर्धन लीला (२१), गोचारण लीला (२२), दानलीला (२३-२५) तथा प्रकटलीला(२६) का उल्लेख है।

भागवत में लीला-क्रम इस प्रकार है—लीलारम्भ, लीलानुकृति, पूतना वध शकट-भंजन, गोप-लीला, वत्सासुर-बकासुर बध, गोवर्धन-लीला, कालीय दमन, दावानल, दान-लीला, उलूखल-लीला (यमलार्जुन-लीला) तथा अन्यान्य लीलाएं। इनमें जल-विहार, उपवन लीला वन लीला, व निकुंज-लीला के साथ ही लीला-प्रसंगों की समाप्ति हो जाती है। समापन के पूर्व अरिष्टासुर के आगमन की सूचना मिलती है। इसी बीच परीक्षित श्रीकृष्ण को रासलीला से सम्बन्धित प्रश्नगर्भी शंकाएं उपस्थित करते हैं और शुकदेव मुनि उनका समाधान करते हैं। भागवत-कथा यहीं समाप्त नहीं होती पर रास-पंचाध्यायी और उसमें निहित रास-प्रसंग तथा सम्बन्धित लीलाएं यहीं समाप्त हो जाती हैं।

महामति ने झीलना[49] (जल विहार, प्र०-४५), उपचार-लीला, उपवन लीला (कुंज-लीला, प्र०-४६) तथा व्यजन (भोग) लीला का विस्तार से विवेचन किया है। अन्त में, (प्र०-४७) श्रीकृष्ण के प्रेम सिक्त वचन और आश्वासन से श्री रास का समापन होता है। इस वार्ता के आधार पर 'श्री रास–' जिसका स्थायी रस शृंगार (वियोग और संयोग) उभयनिष्ठ है, उसकी परि समाप्ति शांत या निर्वेद में होती है। यह प्रकरण कृष्ण की विभिन्न केलि-क्रीड़ाओं और तदुपरांत वन में ही लीलाओं के समापन की घोषणा करता है। लेकिन इन प्रकरणों में (विशेषकर १, ५, ६, ३२ और ४७) ऐसे सन्दर्भ है, जो महामति की मौलिक अवधारणाओं और स्थापनाओं का संकेत देते हैं। इसमें प्रारम्भ (माया-प्रपंच) नख-शिख वर्णन (श्री ठकुराणी जी, श्री राजजी और श्री साथजीनों शृंगार, प्रकरण (६-८), वृन्दावन शोभा-वर्णन (प्रकरण-१०) केशरवाई नो झगड़ो

49. भागवत में विभिन्न लीलाजन्य क्लांति को तथा गोपियों के स्वेद-श्रम के प्रक्षालन हेतु जल-क्रीड़ा का आयोजन किया गया है। (10/23—24/33)

(प्रकरण-३९) तथा भोग (प्रकरण-४७) विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। नख-शिख शृंगार वर्णन, विभिन्न प्रकार की रामतों से 'श्रीरास' के कलेवर में बहुत वृद्धि हुई है।

'श्रीरास' में सम्पन्न हुए कई आनन्दपूर्ण खेलों का महामति ने विस्तार से विवेचन किया है और लोक में प्रचलित कई क्रीड़ाओं को अलौकिक स्वरूप प्रदान किया है। 'श्रीरास' के कई प्रकरण (११-३०) तक इन क्रीड़ाओं में—यथा नृत्य, चक्करी, ताली, आँख-मिचौली, युगल-क्रीड़ा, फिरकी फिकली, भूल-भूलैया तथा विभिन्न प्रकार की रामतें भी सम्मिलित हैं। इन्द्रावती इन क्रीड़ाओं में स्वामी और सखियों को प्रवृत्त करती है। नृत्य-गीत-रमण-प्रधान इन क्रीड़ाओं में इन्द्रावती ने सारा संकोच त्याग कर प्रियतम का साथ देने के लिए सखियों का बार-बार आह्वान किया है। इन खेलों में बार-बार स्वामी को जाने-अजाने पराजित होना पड़ता है और कई बार वे लीला के लिए स्वयं पराजित होते हुए भी प्रसन्न होते हैं और सखियों को अगाध आनन्द देते हैं—हंसते-हंसते सबका पेट खाली हो जाता है—

'पीउ हारया, हारया कहे स्वरमां, हाँसी हरखे उपजावे।
हूं जीती जीती कहे घोघरे साथ सहूने हंसावे॥
ए रे घूमडले हांसी रे साथने, रहे नहीं केमे झाली।
लडथडे पडे भोम आलोटे, हंसी हंसी पेट आवे रे खाली॥

६-७/प्रकरण २३/श्रीरास

इन क्रीड़ाओं में नायिका इन्द्रावती को विशेष महत्त्व प्राप्त है और उसी की प्रेरणा ग्रहण कर सखियां तदनुसार विभिन्न क्रीड़ाओं में प्रवृत्त होती हैं। इन्द्रावती उन्हें हर खेल का गुर बताती हैं और उनसे होने वाले आनन्द का हवाला देती हैं। ऐसा न हो कि इस आनन्दपूर्ण आयोजन में कोई त्रुटि रह जाये। प्रत्येक खेल उसी की योजना से आरम्भ होता है और सफलतापूर्वक सम्पन्न भी होता है। हर खेल के अन्त में श्याम (धनी) जी अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं और नायिकाओं की अभिलाषा पूरी करने के लिए उनके 'अंग लगते हैं। इन्द्रावती बड़ी कुशलता और योग्यता से इन खेलों का सम्पादन, संचालन और संयोजन करती हैं—वह इनमें तारतम्य बनाये रखती हैं। कोई क्रम नहीं टूटने देतीं—आवेग पूर्ण चुम्बनों द्वारा स्वामी को अपना अंग-संग प्रदान करती हैं।

इन्द्रावती करे रंग, रामत न करे भंग।
रमती फरती वाला संग, छबके चुमन देत री॥

९, प्रकरण २२/उपरिवत

इसलिए समस्त सखियों के साथ प्रियतम को भी इन्द्रावती विशेष प्रिय है। उन्होंने सारी सखियों की टेक (मर्यादा) रख ली, अन्यथा उनका रास-सकल्प पूरा न होता। स्वयं प्रियतम को इन क्रीड़ाओं में इन्द्रावती की भूमिका विशेष रूप से पसन्द आई। वैसे भी इन्द्रावती पर उनका विशेष प्रेम है—

ए रामतडी जोई कहे सखियो, इंद्रावतीऐं राखी रेख।
साथ सहूने वाली घणूं लागी, मारा वालाजी ने वली विसेख॥
८/प्र० २३/श्रीरास

लेकिन इन्द्रावती प्रियतम की इस सौभाग्यपूर्ण उदारता को अपने लिए ही नहीं बटोरना चाहतीं। वह सारी सखियों (सुन्दर साथ— विरहिणी आत्माओं) को प्रिय का प्रेमामृत पिलाना चाहती हैं। क्योंकि प्रियतम इतने समर्थ और कृपालु हैं कि उनके लिए स्वयं यह आनन्दपूर्ण अवदान है। वह योग्य अवसर मिलने पर सखियों को उद्‌बोधित करती हैं, उन्हें बार-बार सावधान करती हैं ताकि इस मौके पर कोई चूक न हो जाए। प्रेमामृत भरा आनन्द सागर जब तरंगायित है तो कोई पीछे क्यों रहे। सबको प्रियतम की प्रेम माधुरी का, उनके आलिंगन, चुम्बन और अंग-संग का भरपूर आनन्द मिले। इसीलिए तो इस अलौकिक रास-रात्रि का आयोजन हुआ है। इन्द्रावती इसीलिए प्रियतम से इस आनन्द-राशि को सबको बराबर बांटने का विशेष आग्रह करती हैं, ताकि किसी भी विरहिणी का मन इस आनन्द से वंचित न रह जाए—सबका मनोरथ पूर्ण हो।[50] ऐसा तभी सम्भव है जब प्रियतम सबके लिए समान रूप से प्राप्य और उपलब्ध हों और हर सखी उनसे साधिकार और निःसंकोच अपना रमण कर सके—

साथ कहे वाला रमो अमसूं ए रामत सहू मन भावी।
सहूना मनोरथ पूरण करवा, सखी सखी प्रते लेओ रंग आवी॥
६/प्रकरण २/श्रीरास

श्री रास में 'आठ सखियों' के विशेष नाम भी इस प्रसंग में विशेष द्रष्टव्य हैं—वे हैं—सुन्दरबाई, इन्द्रावती रत्नावती, लालबाई, आसबाई, कमलावती, फूलबाई और चम्पावती। स्वयं इन्द्रावती इसमें माणिक दे की भूमिका में हैं और एक प्रकार से 'श्रीरास' का सारा रास वैभव उन्हीं की योग्यता से सम्पादित हो सका है। श्यामा जी का विवरण श्रृंगार प्रसंग में—जहां उनका 'नख-शिख'

50. 'केशरबाई नो झगड़ो' (प्र० 39) इस प्रतीक-कथा का एक सूत्र है, जिसमें यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है कि प्रियतम प्रभु सबके लिए समान हैं—उन पर सबका समान अधिकार है—किसी का कोई विशेष अधिकार नहीं।

वर्णन किया गया है—आया है। वे उन व्रजांगनाओं को प्रबोध भी देती हैं—जब वे भाव-विह्वल होकर रास मण्डल में पहुँच जाती हैं। फिर अन्तर्ध्यान लीला के अन्तर्गत उनका वियोग वर्णित है। लेकिन इन्द्रावती (या माणिक दे) रास के सारे प्रसंगों को साधिकार प्रस्तुत करती हैं। वह गोपियों की उद्विग्नता में उनको ढाढस बंधातीं और रास के योग्य उनका शृंगार कराती हैं तथा 'रास की सभी लीलाओं, क्रीड़ाओं या रामतों की पूरी जानकारी भी दे देती हैं ताकि 'इस बार' कहीं कोई चूक न हो जाये और प्रियतम पुनः अन्तर्हित न हो जायें।

इन विवरणों से रासमण्डल के वैभव का स्पष्ट चित्रण हुग्रा है। इन प्रसंगों (प्रकरण-१० से ३०) में ग्रात्मा विभिन्न खेलों में प्रियतम के साथ रमण करती है, ऐसा अनुभव होता है। प्रकरण-१० में श्रीमद्‌भागवत की तरह यहाँ रास लीला का समापन हुआ है; परन्तु ग्रन्य स्थलों में रासलीला की रात को 'अखण्ड रात' भी बताया गया है। वह अखण्ड रात्रि व्रज-लीला में पुनः होनेवाली कृष्ण-लीला से भिन्न है।

यह सारा आयोजन उसी आनन्दमयी क्रिया का एक अंश है। "भगवान् सरूप हैं, उसका यह रूप विश्व के सौंदर्य का सार—सर्वस्व है। वह विश्व की संरचना ग्रौर सम्भरण, बिना किसी प्रयोजन के, लीला के रूप में करता है। ग्रवतार धारण कर प्रत्यक्ष रूप में भी वह नरलीला करता है। यह लीला ही ब्रह्म की कला है, जिसमें वह आत्मानन्द के लिए, बिना किसी प्रत्यक्ष प्रयोजन के प्रवृत्त होता है"।[51] महामति ने भी लीला का ग्रायोजन ब्रह्मात्माग्रों के आनन्द-वर्धन हेतु बताया है।

इंद्रियों के सभी व्यापार वस्तुतः मन द्वारा संचालित होते है। काम भावना का उद्‌गम भी मन में ही होता है। सांसारिक सम्बन्धों में ऐषणाएं बढ़ती है। कम नहीं होतीं। मन लोकोत्तर और पारलौकिक आनन्द में—रमण करने लगे तो सांसारिक ऐषणाओं की ओर भागता नहीं। परमात्मा के साथ सम्बन्ध होने पर रास-लीला में आनन्दित मन काम-वासनाग्रों में ग्रासक्त नहीं होता। काम-वासना से मुक्ति रास का ग्रानन्द प्राप्त होने पर ही मिल सकती है। योग-साधनाएं मन को नियंत्रित करती हैं। रास में वह तृप्त और आनन्दित होता है।

जब सतसुख हिरदे में आवे, अरबा तबहीं निकस के जावे।
जब सत सुख धनी पाया, तब जीवरा क्योंकर पकड़े काया ॥

---

51. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका : डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र० सं०, पृ० 68

जब अन्तर आंखां खुलाई, तब तो बाहर की मुंदाई।
जब अंतर में लीला समानी, तब अंग लोहू रह्या न पानी ॥

२१-२२/प्र० ७६/**किरंतन**

—एही रस तारतम का, चढ़या जेहेर उतारे ।
निर विषी काया करे, जीव जागे करारे ॥

१४२, प्र० ३१, **प्रकाश हिन्दु०**

भगवान श्रीकृष्ण तो आत्माराम हैं। वे अपने आपमें ही संतुष्ट और परिपूर्ण हैं। इस प्रकार जब वे अखण्ड हैं, उनमें कोई दूसरा है ही नहीं, तब (उनके मन में) काम की कल्पना ही कैसे सम्भव हो सकती है? ऐसे प्रश्न कई बार उठाए जाते हैं कि रास-लीला के प्रयोजन का औचित्य क्या है? क्यों उन्होंने काम-परायण पुरुष की-सी दीनता, स्त्री परवशता और स्त्रियों की कुटिलता दिखलाते हुए, वहां उन गोपियों के साथ एकान्त में क्रीड़ा की थी। एक खेल रचा था—और उन्होंने गोपियों के साथ कालिंदी के जल में, गजेन्द्र की लीलाओं के समान रमण किया।

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम ॥

१०/३०/३५/**श्रीमद्भागवत**

रासपंचाध्यायी के प्रथम श्लोक का आरम्भ ही भगवान नामधेय से किया गया है। कृष्ण के लिए यह साभिप्राय—विशेषण यह सिद्ध करता है कि शुकदेव को यह लीला साक्षात् परब्रह्म स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण को लोकोत्तर लीला के रूप में ही अभिप्रेत थी। रमणोत्सुक कृष्ण को आत्माराम, अच्युत, सत्यकाम, आप्तकाम, मन्मथ-मन्मथ और रासलीलोत्सव के समय योगेश्वर कहा गया है। गोपियों के अन्तःकरण में भी श्रीकृष्ण के संग लीला-विहार की सदिच्छा के समानान्तर ही श्रीकृष्ण ने अपनी अखण्ड, अचिन्त्य, अनिर्वाच्य, अप्रतिम इच्छा शक्ति से अपने दिव्य, अप्राकृत शरीर में मध्य की किशोरावस्था को अभिव्यक्त करके युवती गोपांगनाओं के साथ रमण करने की इच्छा की—

'रेमे रेमेशो ब्रजसुंदरी भिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ।

१०/१७/३३, **श्रीमद्भागवत**

लीलेच्छा की यह मिलन भित्ति परम निर्मल प्रेम की चारु-शिला पर खड़ी है। अतः यह मिलन सर्वथा दोष-शून्य है। ऐसा नहीं होता तो स्वयं कृष्ण यह न स्वीकारते कि—गोपियों के प्रेम का प्रतिकार वे देवताओं की सी आयु पाकर

प्राप्त नहीं कर सकते क्यों कि प्रतिप्रेम करना जीव का धर्म है, । परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण में जीव धर्म का आरोप सम्भव और उचित नही :—

'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यंविबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेह श्रृंखला संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ।।

—(१०/२२/३२/श्रीमद्भागवत

रासोपरांत परीक्षित के इस यक्ष प्रश्न का कि योगीराज श्री कृष्ण तो पूर्णकाम हैं, उनसे यह निन्दनीय कार्य क्योंकर हो गया—तो शुकदेव मुनि ने पुनः अग्नि का दृष्टांत देते हुए कहा कि अपवित्र और पवित्र पदार्थों का भक्षण करने के बाद भी अग्नि की पवित्रता में किसी प्रकार का संसर्ग-दोष उत्पन्न नहीं होता । जो अग्नि अपवित्र मृत देह का भक्षण करती है, वही निष्पन्न यज्ञ की आहुतियां भी ग्रहण करती है । इसी तरह मूर्खतापूर्ण आचरण करता हुआ रुद्र से भिन्न व्यक्ति यदि समुद्रोत्पन्न विष का पान कर ले तो वह मृत्यु को ही प्राप्त होगा । धर्म का व्यतिक्रम यहाँ नहीं है । मर्त्य मनुष्य कभी मन से भी ऐसा आचरण न करें ।[52] शास्त्रों ने बार-बार इसका निषेध किया है ।[53]

आत्मा अंश है—अंशी से मिलन रास है । ब्रज-वृन्दावन में सम्पादित इन दिव्य लीलाओं विशेषकर 'श्रीरास' के अन्तर्गत रास-लीला का वर्णन करने की सद्प्रेरणा महामति को परब्रह्म स्वरूप सद्गुरु देवचन्द्र जी से ही मिली थी । अक्षरातीत परब्रह्म (श्री राज जी) ने परमधाम का अलौकिक सुख स्वरूप और आनन्द महामति को भी प्रदान किया । ताकि वे इस अनुभव-निधि को अभिव्यक्ति दे सकें—जिसे उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार व्यक्त भी किया । 'श्री रास' का आध्यात्मिक रास मण्डल प्रकारान्तर से परमधाम का ही लीलायतन हैं । श्री कृष्ण के साथ राधा एवं अन्यान्य गोप-वधुओं की कांता-रति या माधुर्य भाव-व्यंजक लीलाओं को ही इसमें स्थान मिला है । महामति ने स्वामिनी श्यामा जी की अन्तरंग नायिका विशेषकर—इन्द्रावती के रूप में—संपूर्ण लीला रहस्यों को तारतम वाणी में हस्तामलकवत् प्रस्तुत किया है और साथ ही उनकी तथा अपनी साक्षी भी प्रदान की है—

---

52. श्रीमद्भागवत—10, 30-321-33

53. 'लीलया' पद से इस शंका का समाधान होता है कि अपनी आत्मा की प्रसक्ति में रमण करने वाले आत्माराम श्रीकृष्ण का गोप रमणियों के साथ रास-रमण किसी प्रकार की वासनात्मक उत्तेजना अथवा कामपरायणता से संबंधित या अनुबंधित नहीं था—

रेमे स भगवांस्ताभिरात्मा रामोऽपि लीलया ।। 10/20/33 उपरिवत् ।

व्रजतणी लीला कही, वली विसेखे रास ।
श्री धाम तणा सुख वरणवे, दिए निध प्राणनाथ ।।

४६, प्र० १, श्री रास

इस सम्पूर्ण रागानुरंजित और आनन्दपूर्ण रास-क्रीड़ा में जिन महाभागों (परमहंसों) को परमानन्द स्वरूप श्री व्रजचन्द की अनुभूति होती है, उनके लिए तो यही आनन्दमय है। यह सम्पूर्ण प्रकृति श्रीकृष्ण के चतुर्दिक घूम रही है। ब्रह्मांड का गतिशील भाव-लास्य प्रकृति का नृत्य—अर्थात् राधा-कृष्ण का 'नित्य रास' है। हमारे शरीर में भी प्रियतम परमात्मा की यह नित्य लीला अहर्निश सम्पादित हो रही है। हमारे प्रत्येक अंग—हाथ, पाँव, जिह्वा, मन, प्राण सभी नृत्यरत हैं। सारा समायोजन उसी की प्रसन्नता के लिए है। सबका आश्रय है। आराध्य केवल शुद्ध चेतना ही है। वही एक रस रहकर इनकी इन सबकी गतिविधि का निरीक्षण, संरक्षण, संभरण और संचालन करता है।

'श्रीरास' महामति की स्वानुभूति-प्रसूत वाणी की सबसे पहली कृती रचना है। विरहानुभूति की तीव्रता पहले 'श्रीरास' में फिर 'षटरितु' और तदुपरांत 'सिंधी वाणी' में आकर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई हैं। उन्होंने इन कृतियों में परमात्मा के आवेश को इन्द्रावती, सखी, प्राण प्रियतमा या प्रेयसी की अन्तरंग भूमिका में भी स्वीकार किया है। चरम-परम विरहासक्ति की मनः-स्थिति में आत्मा—परमात्मा के अगोचर स्वरूप में तदाकार हो जाती है। इस माधुर्य भावलोक में प्रियतम की उपस्थिति किसी भी विधि-निषेध को नहीं स्वीकारती। महामति ने इस निषेध को असामाजिक या अमर्यादित हो जाने की किसी भी स्थिति या दिशा को अपनी मान्यता नहीं प्रदान की। बल्कि परम्परा-सिद्ध ऐसी व्यवस्थाओं का सायास विरोध किया। 'श्री रास' में प्रेम या भक्ति के अनायास उन्माद में जिस अलौकिक रस का परिपाक या दिव्य आनन्द का निदर्शन प्राप्त है, वह अपने वर्णन में कहीं भी अन्यथा नहीं हुआ है। पर इसमें शृंगार-पक्ष को भी हेय या तिरस्कृत भूमिका नहीं मिली है। जहाँ वह शुद्ध माधुर्य भाव की निर्मल अभिव्यक्ति है, वहीं वह दाम्पत्य प्रेम-प्रतीक के सर्वश्रेष्ठ निदर्शन की पूर्व पीठिका भी है—

तुम दुलहा मैं दुलहिनी, और न जानूं बात ।
इसकसों सेवा करूँ, सब अंगो साख्यात ।।

१७, प्र० ६२, किरंतन

'श्रीरास' जोशवाणी है। इस ग्रन्थ का अवतरण हबसा नजर-बन्दी के दिनों

में हुआ था ।[54] इस कारावास को 'प्रबोधपुरी' भी कहा गया है—जहाँ यह दिव्य वाणी प्रस्फुटित हुई । यहीं से महामति की आध्यात्मिक-यात्रा का प्रारम्भ हुआ । इसके अलावा प्रकाश (गुजराती) षटरितु और कलश की कुछ परवर्त्ती वाणियाँ भी यहीं प्रकट हुई । इनकी वाणियों में परब्रह्म का आवेश ही जाग्रत हुआ है, जिसे लिपिबद्ध किया गया । महामति जी ने 'श्रीरास' के आरम्भ में ही स्वीकार कर लिया है कि काव्य-शास्त्र, व्याकरण, छन्द-शास्त्र (पिंगल) रचना-विधान (लघु, गुरु मात्रा ज्ञान) की जानकारी किसी कवि के लिए कदाचित् बहुत महत्त्वपूर्ण होगी । जिसका अर्थोपयोग और विनियोजन आदि तो मैं भी जानता हूँ । लेकिन परा-वाणी में भला इसका क्या औचित्य ? प्रभु-सन्निध्य और उनके स्मृति-सातत्य में ये सारी (औपचारिक) चीजें पीछे ही छूट जाती हैं । फिर मेरा काम कवि की भाँति कविताई करना भी नहीं, इससे मेरा क्या लगाव और क्या लेना-देना ! मुझे तो अपने प्राण-प्रियतम के वचनों को दोहराना और उनके वचनानुदेश को अपनी शक्ति और सामर्थ्य भर वाणी में संजोना भर है, बस इतना ही—

> लघु दीरघ पिंगल चतुराई, एह तो किवनी छे बड़ाई ।
> एणे अरथ हूँ जाणू सही, पण आ निधमां तै सोभे नहीं ।।
> मारे तो नथी कांई किवनु काम, वचन केहेवा मारे धनी श्रीधाम ।
> जे आहीं आवीने कह्या, गजा सारू मारे चितमां रह्या ।।
> (२-४, प्र० २, श्री रास)

'श्रीरास' (तारतम वाणी में संग्रहीत) में कुल ९०७ चौपाइयां हैं और इसमें ४७ प्रकरण हैं । इन प्रकरणों को उपशीर्षकों में बाँटा गया है, जिनका क्रम इस प्रकार है—मोहजल (प्रकरण १, २), भूंडा जीव जागजेरे (प्र०-३) श्री ठकुरानीजी नों सिंणगार (प्र०-६) श्री साथजी नों सिंणगार (प्र०-७) श्री राज जीनों सिणगार (प्र०-८), उथला, रे सखियो सांभलो (प्र०-९) वृन्दावन देखाडयू (प्र०-१०), रामत पेहेली (प्र०-११), हम चड़ी सखी संग रे (प्र० ३१), रामत

---

54. श्री देवचंद्रजी के धामगमन के पश्चात् उनकी धर्म गद्दी पर उनके पुत्र बिहारीजी बैठे । मेहेराज (महामति) ने स्वयं जामनगर का प्रधानमंत्री पद सम्भाला । किंतु राज्य के अविवेकी जामवजीर ने मिथ्यारोप लगाकर इन्हें कारागार में बन्द कर दिया । इसी समय सूबेदार कुतुबुद्दीन खां ने जामनगर पर चढ़ाई कर दी । जामवजीर मेहेराज को बंदी गृह में ही छोड़कर अहमदाबाद चला गया । इस कारा-यंत्रणा से मेहेराज को चाहे जितनी पीड़ा पहुँची, इसे इन्होंने आध्यात्मिक वाणी में प्रकट किया । यह यंत्रणा आध्यात्मिक विरह की प्रणय-पत्रिका बन गई । श्रीरास, 'प्रकाश,' 'षटरितु' तथा परवर्त्ती वानियों में परमात्मा के योग्य आत्म-निवेदन का यह महत्त्वपूर्ण स्रोत-संदर्भ बनी ।

अन्तरध्याननी (प्र०-३२), केसरबाई नो झगडो (प्र०-३९), झीलणां (प्र०-४५) भोग (प्र०-४६)। प्रायः सभी प्रकरण अलग-अलग रागों में आरम्भ होते हैं और इनकी संख्या भी लगभग बीस है[55], जिसे महामति के शिष्य और सम्प्रदायी वाद्य-यन्त्रों के साथ गाते भी थे।

'श्री रास'—'रास पंचाध्यायी' से कई मायनों में समानता भी रखता है। यूं अन्यान्य पुराणों या पुरा कथाओं तथा महामति की अपनी अवधारणाओं का विकास इसमें लक्ष्य किया जा सकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसे महामति ने अपनी साक्षी से प्रामाणिक और समृद्ध किया है। इन्द्रावती भी वहां कुशल नायिका के रूप में उपस्थित थीं। महामति सम्पूर्ण रास-लीला का उपलक्ष्य ही बदल देते हैं, भले ही कथानक या सन्दर्भ सूत्रों में कहीं एकतानता न हो। उनकी सम्पूर्ण रास लीला का आयोजन, इससे भी महत्त्वपूर्ण 'जागनी लीला' की प्रारम्भिक भूमिका मात्र है। रास-लीला साधन है, साध्य नहीं; यह मात्र सांत्वना है, साधना नहीं। मूल वस्तु है मोह का विसर्जन, माया का तिरस्कार और इसी संसार और शरीर द्वारा चिन्मय भगवत-तत्त्व की प्राप्ति। उन्होंने संसार की सारी चर्या को लीला माना है। प्रियतम इसी में कहीं छिपे हैं, इसी में से निकलेंगे, इस विश्वास के साथ चलना—केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि सबके लिए। रास लीला का अर्थ ही है, सबके लिए, सबके साथ, सबके योग्य लीला—जिसमें सभी समान रूप से भाग ले रहे हैं। इस अमृत-तत्त्व पर सबका समान अधिकार है। प्रियतम के अनुग्रह की वर्षा सब पर समान रूप से होती है। उनकी मुरली की पुकार से सबको आमन्त्रण मिलता है, सब दौड़े आते हैं। सबको यही लगता है कि उनका ही नाम लेकर स्वामी बुला रहे हैं।

रास-पंचाध्यायी का यह सन्दर्भ जिसमें श्रीकृष्ण-वेणु की जादूभरी टेर को सुन कर समस्त व्रजवनिताएं सम्मोहित हो गई,[56] 'श्री रास' में पंचम प्रकरण से प्रारम्भ हुआ है और इन विवरणों में भी प्रायः समानता है।[57] बल्कि ये पंक्तियां अनुदित सी जान पड़ती हैं—

55. प्रकरण (कोष्ठकांतर्गत) क्रम से इन रागों का उल्लेख किया गया है :—चाल (1, 37, 42), मारु (2, 15, 20, 41), धन्यासरी (3, 4, 6, 7, 13), धन्या (10, 43), कालेरो (11, 14, 18, 25, 31, 34), चरचरी (12, 16, 19, 22, 30, 36), सिंधूडो (17, 23), वंसत (24), मेवाडो (9), काफी (21), सामेरी (27, 33), आसावरी (28), कल्याण (29), केदारो (38, 40), (45), गोडी (45), वेराडी (46), रामग्री (47)।

56. भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः। वीक्ष्य रंतु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।
10/1/29॥

57. निशम्यगीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीत मानसाः।
आजग्मु रन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कांतो जवलोलकुण्डलाः॥ 10/4/29/श्रीमद्भागवत।
इस वंशी की टेर में 'क्लीं' बीज का गान था—जिसे सुनते ही वे अभीष्ट स्थल की ओर चल पड़ीं। श्रुति स्वरूपा गोपियों के हृदयों में यही अप्राकृत काम पहले ही बीज रूप में विद्यमान था—जिसका पल्लवन मात्र हुआ।

सरद निसा रे पूनम तणी, आव्यो ते आसो रे मास ।
सकल कलानो चंद्रमां, एणी रजनीएं कीधों रे रास ।।

सझाने समे रे वेण वाईयो, कांई वृन्दावन मोंझार ।
एणे समे सहू उभूं मूक्यूं, तेहेने आडो न आव्यो रे संसार ।।

(४, ६, प्र० ५, श्रीरास)

इसी प्रकार आठवें प्रकरण का आरम्भ भी रास-पंचाध्यायी के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर हुआ है—

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमन कारणम् ।। (१०/२८/२६)

रजन्येषा घोर रूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमा ।। (१०/२६/१६)

इन प्रसंगों से 'श्रीरास' के विभिन्न प्रसंगों की तुलना या उसका समानान्तर उद्धरणसह अध्ययन यहां अभिप्रेत नहीं। रास पंचाध्यायी तथा अन्य पौराणिक रास-सन्दर्भ महामति के लिए अवश्य ही साक्ष्याधार रहे हैं, यह बिल्कुल स्पष्ट है। उनके गुरु देवचन्द्रजी तो श्रीमद्भागवत का पारायण और प्रवचन करते ही थे। उनके पूर्ववर्ती नरसी मेहता[58] का उल्लेख तारतम वाणी में—उनकी उपलब्धियों और सीमाओं के साथ कई बार किया है। ऐसा कहा जाता है कि इन्हें श्री भगवान शंकर की अनुकम्पा से वृन्दावन में सम्पादित हो रहे रास के आनन्दोल्लास में भाग लेने का अवसर मिला, ये जहां मशाल दिखाने का कार्य करने लगे। इसलिए रास के अन्तरंग और उच्छल आयोजन में भी इनकी नाम भूमिका नेपथ्य तक ही सीमित रही है। इस आनन्द क्रीड़ा के लिए अन्तराल में एक वृक्ष आड़

58. वल्लभाचार्य के समकालीन, लेकिन उनके सम्प्रदाय के प्रभाव से मुक्त — गुजरात के प्रमुख संत-कवि। विभिन्न पुराणों तथा जयदेव के गीत गोविंद का प्रभाव इन पर रहा। साधु-संत की मंडलियों में रासलीला के समय नरसैयां (इन्हीं का दूसरा नाम) स्त्री-वेश धारण किया करते। इनकी 'रास सहस्र-पदी' में घटनाओं का क्रम ठीक नहीं है। अन्यान्य रचनाएं —'समरा-रास' (रचनाकाल वि० 15वीं सदी), 'हार माला,' 'सुरत संग्राम,' 'चातुरी षोडषी,' 'शृंगार माला' तथा 'सामलदास नो विवाह' हैं। भक्त नरसी (नरसैंयां) के अनुसार रास लीला का एक उद्देश्य कामदेव के अहंकार का मोचन भी था—

मनमथे मान झुकावीयूं, करी रमण रसाल ।
नांचता नेह झउ लागी रही, गाय गोपी गोवाल ।।

आ गया।[59] जिससे उनको आगे का ब्योरा नहीं प्राप्त हो सका। सम्भवतः वह निकुंज लीला रही होगी, जिसमें राधा कृष्ण के अतिरिक्त और किसी का प्रवेश वर्जित है। इस वृक्ष को एक प्रतीक भी माना गया है, जो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को प्रतिनिधित्व देता है। महामति ने बार-बार रास लीलामें अपनी अन्तरंग भूमिका का उल्लेख किया है कि कैसे वे गुरु-कृपा से समस्त विधि-निषेधों का प्रत्याख्यान कर लीला-रहस्यों के परे पहुँच गए थे।[60]

नरसी मेहता के अलावा वैष्णव रास के प्रमुख कवि-गायक सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवि परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास तथा नन्ददास थे—जो सख्य भाव से श्रीनाथ जी (श्रीकृष्ण का पुष्टि मार्गीय विग्रह) की भक्ति करते थे। वल्लभाचार्य, चैतन्य, सखी समाज वाले वैष्णव, मीरांबाई, वैकुण्ठदास और गुरुगोविन्द सिंह जी जैसे सम्प्रदाय-संस्थापकों और वैष्णव सहजियों तथा भक्तों के अलावा ब्रजबुलि, मैथिली (के कवि विद्यापति, उमापति) असमी (के शंकरदेव), उड़िया (के पंचसखा) आदि भाषाओं एवं बोलियों में तथा लोक-गीतों में कृष्ण की लीलाओं का प्राचुर्य देखा जा सकता है।

महामति ने रास पंचाध्यायी की कथा-यात्रा को तद्वत स्वीकार नहीं किया है—उसे अपनी विरहानुभूतियों से दीप्त और संयोजित कर—उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन, और संशोधन भी किया है। मध्य युग के व्यापक भक्ति आन्दोलन की जो मूल चेतना थी, उसे विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय अपनी-अपनी दार्शनिक उपपत्तियों और अवधारणाओं से सींच रहे थे। महामति का इन सारी साधना-पद्धतियों से क्रमशः दृढ़तर परिचय होता गया। 'श्रीरास' के कृष्ण को उन्होंने एक बार फिर ऐतिहासिक और वैश्विक सन्दर्भ प्रदान किया तथा प्रकाश, खुलासा, किरंतन

---

59. नरसैयां इन पेंडे खड़ा, लीला बेहद गाए।
बल करे अति निसंक, मिने पैठ्यो न जाए।।
जो बल किया नरसैएं कोई करे ना और।
हद के जीव बेहद की, लीला देखी या ठौर।।
नरसैयां दौड़या रस को, वानी करे रे पुकार।
रस जाए हुआ अंदर, आड़े दरवाजे चार।।

55-57, प्र० 31, प्रकाश हिन्दुस्तानी

60. ए वानी बेहद प्रगटी, इंद्रावती मुख। बोहोत बिधें हम रस पिए, बेहद के सुख।।

94, प्र० 31 प्रकाश हिन्दुस्तानी

और सनंध आदि परिवर्ती बानियों में उनके विराट स्वरूप को सगौरव प्रतिष्ठित किया। गीता के बाद कदाचित् इतना बड़ा प्रयास किसी से नहीं किया। क्योंकि उनके श्रीकृष्ण मात्र अवतारी या पौराणिक गाथा-नायक या चरित्र नहीं, वे विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सम्प्रदायों की मूल चेतना का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। 'श्रीरास' उनकी इस महनीय यशोगाथा और आर्य भूमिका का प्रस्थान-विंदु मात्र हैं।

श्रीमद्भागवत को प्रमाण मानकर ही 'श्रीरास' का प्रणयन हुआ है। पर महामति ने उसके अनुशासन और बन्धन को स्वीकार नहीं किया है, जो परम्परा-वादियों या सम्प्रदायाश्रितों का रहा है, या उन्हें जो आदमी को खास नस्ल या गिरोह की सामग्री मात्र बनाकर रख देते हैं।

महामति का विशिष्ट योगदान इस रूप में श्लाघ्य है कि उनके कृष्ण—व्यक्ति, अवतार, पात्र और चरित्र की सभी सीमाओं को लांघकर विश्वजनीन हो उठे हैं। 'श्रीरास' में इसका कोई विशेष संकेत नहीं है। पर उनकी समवेत लीलाओं में 'रास' के ये प्रसंग अपने लालित्य और विभिन्न रामतों के कारण मात्र विशिष्ट ही नहीं—अपितु रास में उनकी त्रिधा लीला द्वारा इनके सबसे रहस्यपूर्ण अंग पर प्रकाश डाला गया है—जिसे 'तारतम' प्रकाश में महामति ने स्पष्ट किया है।

'रास' और तद्विषयक सृष्टि रचना के 'मिथक' को व्यापक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि प्रदान करते हुए इसे 'नूह तोफान' की पुरा कथा से जोड़ने का भी महामति ने प्रयत्न किया है।[61] इस विलक्षण आयोजन में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। यही 'नूह तोफान' में किश्ती को बाग में ले आना है। तूफान के बाद नया ब्रह्मांड बना। उसमें ब्रज, मथुरा, गोपियों का स्वरूप तो वही रहा पर जहाँ से ब्रजलीला समाप्त हुई, सृष्टि वहाँ से पुनः आरम्भ भी हुई। केवल अक्षरातीत, ब्रह्म और ब्रह्मांगनाए वहां उपस्थित नहीं थीं।[62]

'श्रीरास' मूलतः गुजराती भाषा में लिखित महामति की पहली रचना होने के कारण उनके भावुक हृदय से सबके निकट है। कारा-यन्त्रणा भुगतते हुए उनके विभिन्न मनोभावों, मनोदशाओं और अश्रुपूरित विरह की प्रामाणिक व्यथा-

---

61. स्याम रास से बरारब, ल्याया साहेब का फुरमान।
    हकीकत अखंड धाम की, तिन बांधी सब जहान ।। 31/प्र० 13/खुलासा

62. पेहेलें भाई दोऊ अवतरे, एक स्याम दूजा हलधर।
    स्याम सरूप ब्रह्म का, खेले रास जो लीला कर ।।
    दो बेटे नूह नबीय के, एक स्याम दूजा हिसाम।
    स्यामें सगारी किस्ती मिने, दिया रूहों को आराम ।। 27-28, प्र० 13, उपरिवत

गाथा है। पर यह पीड़ा और यातना की अवधि भागवती आस्था से संयुत और प्रेम पूरित है। इसलिए अन्तर से निःसृत 'श्री रास' वाणी में अक्षरातीत परमात्मा के चिन्मय एवं दिव्य सौंदर्य के गोचर स्वरूप का भी बार-बार उल्लेख किया गया है, जो अहैतुकी कृपा के लिए लीलाश्रय ग्रहण करते हैं। भक्त हृदय इन लीलाओं को देखकर या अपने अन्तःकरण में संजोकर गद्गद् चित्त से अनुरंजित होता है। इसी लीला-सौंदर्य ने गोपियों को चिन्मय-रास-रति के लिए प्रेरित किया। इसीलिए 'श्री रास' महामति के वेदनापूर्ण संसार और संस्कार की आत्मोपलब्धि ही नहीं; परम प्रियतम के विमल प्रेमानुग्रह का निर्मल नैवेद्य भी है।

'श्री रास'—दर्शन

—डॉ॰ हरेन्द्र प्रसाद वर्मा

रास-लीला श्री कृष्ण की सभी लीलाओं में सर्वाधिक मनोहारी, प्रेमिल एवं सरस लीला है। इस कारण 'रास पंचाध्यायी' को श्रीमद्भागवत का प्राण माना जाता है। इसके बिना श्रीमद्भागवत निष्प्राण है। इसमें वर्णित रासलीला वैष्णव, धर्म का भी जीवन-धन है और गोपी-प्रेम प्रेम के चरमोत्कर्ष का प्रतिमान। वेद के श्रद्धा भाव और प्रार्थना-अर्चना ने उपनिषद् में आकर ज्ञान का रूप ले लिया। वैदिक कर्म-कांड, यज्ञ, बलि, हवन, दान आदि देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के निमित्त समर्पित थे। परंतु उपनिषदों में कर्म-कांडों का निराकरण कर दिया गया, क्योंकि वे अहं को ही सम्पुष्ट और सबल करनेवाले तथा मोक्ष में बाधक थे। इस कारण कर्मकांडों के स्थान पर उपनिषदों ने 'आत्मानं विद्धि' (आत्मा को जानो) पर जोर दिया, क्योंकि आत्मज्ञान ही अंततोगत्वा परमात्म-ज्ञान बन जाता है और आत्मा—परमात्मा के साथ एकत्व का अनुभव कर 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अयंमात्मा ब्रह्म' की स्थिति में पहुंचती है। उपनिषद् काल के बाद पौराणिक काल में भागवत धर्म (वैष्णव धर्म) का उदय हुआ और निर्गुण, निराकार ब्रह्म, जो शून्य और निर्वैयक्तिक प्रतीत होता है, उसके स्थान पर सगुण, साकार और व्यक्तित्व सम्पन्न ईश्वर की उपासना पर बल दिया गया। ज्ञान का स्थान प्रेम ने ले लिया। मनुष्य और परमेश्वर के बीच प्रेम-सम्बन्ध माना गया।

प्रेमी भक्त का मन सदा परमात्मा के ध्यान में डूबा रहता है और परमात्मा का ध्यान भी सदा भक्तों की ओर लगा रहता है। वे एक क्षण के लिए भी उसे विस्मृत नहीं करते, बल्कि सदैव उसके योग एवं क्षेम का भार अपने ऊपर लिए रहते हैं। महामति के शब्दों में:—

ब्रह तमारो नव सहूं, गायूं तमारूं गाऊं ।
अंग मारूं अलगो न करूं, प्रेम तमने पाऊं ।।
तमे केहेसो जे ऐम कहे छे, नेहेचे जाणो जीव मांहें ।
तमारा समजो तम बिना, एक अधख्यण में न खमाए ।।

(२५, ३४ प्र० ४७, श्री रास)

इस पूर्ण वैयक्तिक वातावरण में ही प्रेम-भावना का उदय हुआ और प्रभु प्रेमियों ने मुक्ति और भुक्ति दोनों को ही प्रेम के लिए ठुकरा दिया। प्रभु के प्रेमपाश में बंध जाना, उन्हें मुक्ति से अधिक प्रिय लगा। श्रीमद्भागवत में गोपी-प्रेम का आदर्श उपस्थित किया गया। ब्रह्मादिक देवता तक गोपियों के भाग्य से ईर्ष्या करते हैं और वृन्दावन में किसी भी योनि में जन्म-ग्रहण करने को तरसते हैं।[1]

"नंद आदि व्रजवासी गोपी के धन्य-भाग्य हैं। वास्तव में यह उनका अहोभाग्य है, क्योंकि परमानंद स्वरूप सनातन पूर्णब्रह्म स्वयं उनके अपने सगे-संबंधी और सहृदय हैं। इस व्रजभूमि के किसी वन में और विशेष करके गोकुल में किसी भी योनि में जन्म हो जाए, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी। क्योंकि वहां जन्म होने पर आपके किसी न किसी प्रेमी के चरणों की धूलि मुझ पर पड़ जाएगी। आप ही उनके जीवन धन है। इसलिए उनके चरणों की धूलि मिलना आपके चरणों की धूलि मिलने के सदृश् है। आपके चरणों की धूलि तो श्रुतियां अनादि काल से अभी तक ढूंढ रही हैं।"

प्रेमी भक्त मुक्ति से अधिक महत्त्व प्रेम को देते हैं, क्योंकि मुक्ति की कामना भी दु:ख की प्रतिक्रिया से उत्पन्न है। व्यक्ति दु:ख और बंधन की पीड़ा से ही मुमूर्षु होता है। परंतु भक्त पीड़ा का पुजारी होता है। वह मानता है कि पीड़ा और प्रीति सगी बहनें हैं। वह पीड़ा से भागना नहीं चाहता, क्योंकि उसे पीड़ा में भी प्रभु का दर्शन होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गीतांजलि में लिखा है:—'प्रभु, तुम यदि दु:ख के वेष में आओगे तब भी मैं तुम्हें पहचान लूंगा।' क्योंकि दु:ख तो प्रेमी का चिरसंगी है।

दुख खाना दुख पीवना, दुखै हमारो आहार ॥

१६, प्र० १८, **किरंतन**

महामति प्राणनाथ भी पीड़ा से प्यार करते हैं। प्रियतम का विरह पाकर अनुग्रहीत और तड़प में आनन्दित होते हैं। प्रियतम की विरहजन्य पीड़ा में जब इतना रस है, तो उसके मिलन में कितना आनंद होगा।

1. अहोभाग्य महोभाग्य नंद गोप ब्रजोकसाम् । यान्मित्रं परमानंद पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
तद् भूरिभाग्य सिह जन्म किमप्यहव्यां । यद् गोकुलेऽपि कतमाधि रज्जोभिषेक्य् ॥
यज्जोवितं उ निखिलं भगवान मुकुन्द । त्वद्यारित यत्पदारज श्रुति मृण्यमेव ॥
(भागवत, 10/14/32, 38)

जो दु:ख तुम्हीं विछुरे, मोहे लाग्यो तासों प्यार ।
ऐता सुख तेरे विरह में, तो कौन सुख होसी विहार ।।
८, प्र० ११, सनंध

प्रेम लोक-परलोक की सभी गणनाओं के परे एवं सभी धारणाओं के अतीत है। प्रेमी इन सबों का हिसाब नहीं करता, वह तो केवल प्रभु को प्यार करना जानता है। प्रभु के अलावा उसे और कुछ सूझता ही नहीं।

चौदे तबक हिसाब में, हिसाब निरंजन सुन ।
न्यारा इस्क हिसाब थें, जिन देख्या पीउ वतन ।।
नहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन ।
इस्क आगे चल गया, सबद समाना सुंन ।।
२, ४६ प्र० ६, कलस हि०

प्रेम शब्दातीत है। शब्द वस्तु जगत् की चीज़ हैं, जबकि प्रेम आत्मिक तत्त्व है। परम प्रेम में निमज्जित होने पर पता चलता हैं कि प्रत्येक प्रेम कृष्ण-प्रेम हैं। हमारी हर खोज वस्तुत: श्रीकृष्ण की ही खोज है। वही प्रेम जब जगत् की वस्तुओं पर प्रक्षिप्त हो जाता है तो काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष हमें प्रिय मालूम पड़ने लगते हैं। और जिस प्रकार अज्ञानी जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखकर उसे झपटने के लिए जल में कूद पड़ता है, उसी प्रकार सांसारिक प्राणी भी काम, अर्थ और मोक्ष को ओर आकृष्ट होते हैं — उन्हें परम पुरुषार्थ मानते हैं। परंतु परमात्मा का सान्निध्य पाए बिना परम विश्राम उपलब्ध नहीं होता। परमात्मा के मिलन के रस के बिना आत्मा कभी भी शान्ति को उपलब्ध नहीं होती, जैसे मछली जल के बिना कभी भी शान्त नहीं हो सकती।

रे मन त्रिषा न बुझे तेरी झांझुए, प्रतिबिम्ब पकड़यो न जाए ।
ज्यों जलचर जल बिना न रहे, जो तूं करे अनेक उपाय ।।
२, प्र० २५, किरंतन

जो प्रभु के प्रेम को जान लेता है, उसका रसपान कर लेता है उसके लिए अन्य सब आलम्बन निरर्थक हो जाते हैं —

जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावे ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावे ।।
(भ्रमर गीत)

इसलिए भक्त पत्ता-पत्ता भटकने के बदले, मूल श्री कृष्ण को ही पकड़ता है। क्योंकि 'अब कहो बाकी क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल'। यही कारण है कि गोपियों ने उद्धव से ज्ञान, योग आदि का असबाब लेने की बजाय उस साहूकार के ही दर्शन की मांग की जिसने वह असबाव देकर उन्हें भेजा था।[1] महामति का अटल विश्वास है कि प्रभु हमसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, इसलिए वे मुक्ति या निर्वाण तक को उनके प्रेम के समक्ष ठुकरा देते हैं—उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं।

तुमारे गुन की कहा कहूं बात, तुम लाड़ पूरे करे अपन्यात।
पिउ ने अपनी जानी परवांन, इन्द्रावती चरने राखी निर्वान॥

१७, प्र० १९, प्रकाश हिन्दु०

प्रेम पूर्ण आत्म दान है। प्रेम अपना लक्ष्य—अपना पुरस्कार आप ही है वह किसी अन्य लक्ष्य का साधन नहीं, बल्कि सब कुछ दे दिया जाता है और सब कुछ देने के बावजूद एक कसक रहती है कि हाय कुछ भी नहीं दिया!

प्रेम में प्रेमी-प्रेमिका का सहज तादात्म्य हो जाता है। उस संबंध में कुछ भी गुह्य, कुछ भी गोपन नहीं रहता। अतएव प्रेम के माध्यम से परमात्मा का गुप्त रहस्य भी सहज ही समझ में आ जाता है—

आसिक मासूक दो अंग, दो इस्के होत एक।
तो आसिक मासूके के दिल को, क्यों न कहे गुझ बिवेक॥

भगवान ने उद्धव से स्वयं कहा है—

—"मैं न तो उतना योग से प्राप्त होता हूँ, न सांख्य से, न स्वाध्याय से, न तप से और न त्याग से, जितना प्रेम से। मैं संतों का प्रिय आत्मा हूँ और एकमात्र श्रद्धा और अनन्य भक्ति से ही पकड़ में आता हूँ। मेरी एकनिष्ठ भक्ति चांडाल को भी पवित्र कर देती है। जो गद्गद् वाणी से द्रवित चित्त हो, कभी रोता है, कभी हंसता है, लज्जा को छोड़कर कभी गाता है, कभी नाचता है, वह मेरी भक्ति में लीन हो पूरे विश्व को पवित्र कर देता है"[2]—

पोथि पढि पढि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

(—कबीर वाणी)

प्रेम जो महान धन है, वही पंचम पुरुषार्थ है। प्रेम में काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को त्याग दिया जाता है। यह श्रीकृष्ण के माधुर्य रस का

1. मुंह मांगो पैहों सूरज प्रभु, साहहिं आन दिखावहु। (भ्रमर गीत)
2. श्रीमद्भागवत

आस्वादन कराता है। प्रेम से ही श्री कृष्ण अपने भक्तों के वश में होते हैं। प्रेम से ही श्री कृष्ण की सेवा का आनंद मिलता है।[1]

प्रेम साधना का मर्म है—निःस्वार्थ प्रेम करना। ईश्वर से प्रेम का लक्ष्य न तो इह लौकिक और न तो पारलौकिक लाभ की प्राप्ति है। प्रेम अपना उच्चतम पुरस्कार आप ही है, क्योंकि प्रेम ही परमात्मा है और परमात्मा प्रेममय है।

रास की परम्परा—

गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण की रासलीला की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। ईस्वी सन् की पहली शती में ही भास के 'बाल-चरित' में श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन होता है। 'गाथा सप्तशती' में राधा-कृष्ण एवं गोपी-लीला का सरस एवं मनोहारी वर्णन है। 'हरिवंश पुराण' में सर्वप्रथम श्री कृष्ण की ब्रजलीला का निदर्शन होता है। परंतु वास्तव में कृष्ण की लीलाओं का अखंड कोश तो श्रीमद्भागवत है, जिसमें २४ विभिन्न अवतारों का वर्णन करके श्री कृष्ण की प्रतिष्ठा पूर्णावतार के रूप में की गई है। श्रीकृष्ण के पूर्व जितने भी अवतार हुए, वे अंशावतार थे—श्रीकृष्ण की विभिन्न कला मात्र थे, परंतु श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान ही हैं— 'एते चांशकला पुंसः कृष्णास्तु भगवान स्वयं।'—यह श्रीमद्भागवत का महावाक्य है।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का विशद वर्णन है। जिसमें दशम स्कंध में वर्णित रास पंचाध्यायी तो नाभिकीय व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य रखता है। यद्यपि रासलीला के प्रसंग में श्रीमद्भागवत में राधा का नाम उल्लेख नहीं है, जिसका प्रचुर उल्लेख परवर्ती कृष्ण-काव्यों और वैष्णव सम्प्रदायी ग्रंथों में भरा पड़ा हैं। राधा के चरित्र का उद्भव और विकास तथा रास में उसका समावेश ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और पद्मपुराण में सर्वप्रथम दृष्टिगत होता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्ण जन्म (खंड अध्याय २८) में रास लीला का सरस वर्णन है। इस में ८ लाख गोपियों के भी सम्मिलित होने का उल्लेख है। अध्याय ५२ एवं ५३ में पुनः राधा-कृष्ण एवं गोपियों की रास-क्रीड़ा का वर्णन है तथा अध्याय ६९ में राधाकृष्ण की केलि-क्रीड़ा का शृंगारिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

---

1. पंचम पुरुषार्थ सेइ प्रेम महाधन। कृष्णेर माधुर्य-रस कराय आस्वादन।
प्रेम हइते कृष्ण हय नित भक्तवश। प्रेम हइते पाय कृष्णेर सेवा सुखरस।।
(श्री चैतन्य चरितामृत)

पद्मपुराण में भी राधा-कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का सविस्तार वर्णन आया है। इसमें भी राधा पूर्ण गौरव मंडित रूप में उपस्थित हुई हैं।

राधा कृष्ण से अभिन्न हैं। दार्शनिक दृष्टि से पद्मपुराण में श्रीकृष्ण के संग रमण करने वाली राधा को मूल प्रकृति और गोपिकाओं को प्रकृति का अंश माना गया है। रासलीला को पुरुष-प्रकृति की लीला के रूप में समझाया गया है। श्रीकृष्ण पुरुष हैं और गोपियां अष्ट प्रकृति एवं षोडश आद्य प्रकृति का प्रतीक।

श्रीमद्भागवत के टीकाकारों ने भी रास पंचाध्यायी पर टीका एंव भाष्य लिखकर उसके धार्मिक एंव आध्यात्मिक पक्षों को उजागर किया। वल्लभाचार्य ने तो 'प्रस्थानत्रयी' (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता) के साथ श्रीमद्भागवत को भी जोड़ दिया और उसकी 'सुबोधिनी टीका' लिखकर श्री कृष्ण की लीलाओं का दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विवेचन किया।

श्री कृष्ण के प्रेम में आकंठ डूबे श्री चैतन्य ने श्री कृष्ण के नित्य रास-रस का छक कर पान किया। उन्होंने भी रासलीला में राधाजी का प्रमुख स्थान स्वीकारते हुंए उन्हें श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति माना और 'महाभाव स्वरूपा', 'ठकुरानी', 'सर्वगुण खनि', 'कृष्ण-कांता-शिरोमणि' आदि विशेषणों से अभिहित किया।[1]

'श्री चैतन्य चरितामृत' में रासलीला के नित्य स्वरूप का निदर्शन हुआ। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्री सनातन गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत को वैष्णवों का आधारभूत ग्रंथ ठहराया। श्री जीव गोस्वामी ने भी 'क्रम संदर्भ', 'वृहत्क्रम-संदर्भ, आदि टीकाएं लिखीं तथा 'षट संदर्भ' नामक स्वतंत्र ग्रंथ लिखकर रास-लीला की शास्त्रीय विवेचना की। जयदेव ने 'गीत-गोविंद' में अत्यंत कोमल-कांत-पदावली में राधा-कृष्ण के मिलन का शृंगारिक वर्णन प्रस्तुत किया।

श्रीकृष्ण को केन्द्र बनाकर अनेक वैष्णव सम्प्रदाओं का विकास हुआ—जिनमें मधुरोपासना पर बल दिया गया, जैसे—वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग, निम्बार्क का

1. ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेमेर सार भाव। भावेर परम पराकाष्ठा, नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठकुरानी। सर्व गुण खनि, कृष्ण कांता शिरोमणि॥
(चैतन्य चरितामृत, आदिलीला 4/68)

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय, चैतन्य महाप्रभु का गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय, हितहरिवंश का राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदास स्वामी का सखी सम्प्रदाय आदि ।

संस्कृत की भांति लोकभाषा, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में भी राधा-कृष्ण सम्बन्धी अनेक काव्यों का सृजन हुआ, जिनका सुन्दर उदाहरण अष्ट छाप के कवियों (कुम्भनदास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी चतुर्भुजदास और नंददास) का कृष्ण काव्य है। रासलीला के वर्णन की परम्परा में, महामति प्राणनाथ का 'श्रीरास' एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो माला के विभिन्न मनकों के बीच सुमेरु की भाँति सुशोभित है ।

महामति प्राणनाथ के गुरु निजानंद स्वामी श्री देवचन्द्र जी कुछ वर्षों तक हरिदास जी के साथ रहे। बाद में स्वयं श्री कृष्ण के 'तारत्तम मंत्र' में दीक्षित होकर निजानंद सम्प्रदाय चलाया ।

वैष्णव भक्त कवियों में गुजरात के अन्यतम भक्त नरसी मेहता भी हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चरित को आधार बनाकर गुजराती भाषा में कृष्ण-काव्य की रचना की। महामति प्राणनाथ ने भी इनका सादर उल्लेख किया है। नरसी श्रीकृष्ण को अपना पति मानते थे। उन्होंने भी मधुर भाव से श्रीकृष्ण की उपासना की। उन्होंने श्रीकृष्ण और गोपियों के मिलन और विरह सम्बन्धी ४० पद लिखे जो उनकी 'शृंगारमाला' में संग्रहीत हैं। इसके अलावा उन्होंने 'सुरत संग्राम' नामक ग्रन्थ की रचना भी की। जिनमें उन्होंने गोपियों की जीत दिखाई है। नरसी मेहता ने रास लीला को ही अपने काव्य का केन्द्रीय विषय चुना और उसका ललित वर्णन प्रस्तुत किया। उनके पदों में आत्म-निवेदन, समर्पण एवं तन्मयता का भाव प्रधान है। शरद की पूर्णिमा में जब श्री कृष्ण ने वंशी बजाई, तो उसे सुनकर गोपियों की क्या दशा हुई, उसका निदर्शन उन्होंने निम्न शब्दों में किया—

बाँसउरी बाई माटे बहाले, मंदिर में न रहे बाय रे ।
व्याकुल थई जे बहालाने जेवा शुं करूं उपाय रे ।।

"—मेरे प्रियतम ने बांसुरी बजा दी, अब मुझसे घर में नहीं रहा जाता, मैं अत्यंत व्याकुल हूँ। मैं उन्हें देखने का क्या उपाय करूं ?"

भक्त नरसी मेहता रासलीला के प्रत्यक्ष दर्शियों में माने जाते हैं। उनकी अपनी मान्यता थी कि वे भगवान शिव के साथ गोलोक गए थे और उन्होंने

राधा-कृष्ण की रासलीला के अवसर पर मशाल दिखाने का कार्य किया था। उनके कृष्ण लीला सम्बन्धी पद गुजरात में बहुत लोकप्रिय हैं।

श्री देवचन्द्र जी अपने सुन्दर साथ को नरसी मेहता के पद सुनाया करते थे। महामति प्राणनाथ जी ने व्रजलीला सम्बन्धी नरसी मेहता के विवरण को प्रामाणिक माना है, परन्तु रासलीला को नहीं।[1] उनके आदेशानुसार ही महामति स्वामी जी ने ज्ञान का यह उजाला फैलाया। नरसी मेहता ने जो व्रजलीला का वर्णन किया, उसे हमें बताया। हमें नरसी मेहता के वचनों पर विचार करना चाहिए। धनी ने हमसे प्रेम करके यह धन हमें दिया है। महामति ने स्वीकारा है कि—

'व्रजलीला के सम्बन्ध में नरसी मेहता ने जो वचन कहे हैं वे अत्यन्त विवेकपूर्ण है। यदि हम उन वचनों को विचार कर चलें तो हमारा चलन विशेष हो जाये' —

व्रजलीला अति मोटी छे, जो जो नरसैयां वचन प्रमाण।
ए पगला सरवे आपणा, जागी सको ते जाग।।

११/प्र० ४, श्री रास

रासलीला के सम्बन्ध में महामति नरसी मेहता की सीमाओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं उनका प्रवेश रास की अंतरंग भूमिका में नहीं हुआ। उन्होंने इस पार खड़े होकर ही रासलीला का दर्शन किया। यद्यपि उन्होंने बेहद भूमिका की लीला का गान किया है, लेकिन उसमें उनका प्रवेश नहीं हो सका। फिर भी नरसी मेहता ने जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। क्योंकि हद की भूमिका का होते हुए भी उन्होंने बेहद भूमिका की लीला का यहीं से दर्शन किया। उनके साथ कठिनाई यह हुई कि वे उस सुवास के आनंद में डूब गए, लहरों में खो गए। फल यह हुआ कि उनका हृदय तो रास के रस में आह्लादित हो गया

---

1. एटला माटे आ अजवालूं, वालें जीएं कीधूं आ वार।
नरसैयां वचन प्रगट कीधां, कांई व्रज तणा विचार ।।
कहें इंद्रावती नरसैंया वचन, जो जोईए करीने चित्त।
धणिए जे धन आपयूं, कांई करी आपणने हित ।।

1, प्र० 4 श्री रास

और अंतरंग भूमिका में उनकी गति नहीं हो सकी। परन्तु नरसी मेहता ने बेहद भूमिका का सुवास लेकर उसे अपने शब्दों द्वारा प्रसारित किया। हद के जीव के लिए बेहद भूमिका में प्रवेश पाना अत्यंत कठिन है—

क्या जाने हदके जीवड़े, बेहद की बातें ।

५०/प्र०३२/ प्रकाश हिन्दु०

चार दरवाजे सम्भवतः—मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार—उनके आड़े आ गए—और वे बेहद भूमि तक नहीं पहुंच सके।

भाव-समाधि की उच्चतर स्थितियों में असीम शक्ति, शांति एवं आनन्द का अनुभव होता है। साधक उसमें ही लिप्त हो जाता है और असीम में उसका प्रवेश नहीं हो पाता। मन, चित्त, बुद्धि एवं अहंकार का ही परदा है, जो परमात्मा-दर्शन नहीं होने देता और जिसने सबों को परास्त कर रखा है। महामति उन्हें उलटकर, हारे लोगों को जिताने, उनकी अधोगामी प्रवृत्ति एवं उल्टी प्रवृत्ति को ऊर्ध्वगामी एवं भगवदाभिमुख बनाकर—कुटिला प्रकृति को सम कर संसार को अखंड सुख प्रदान करने अवतीर्ण हुए हैं।[1]

महामति का दावा है कि व्रजलीला तो काल माया की लीला—हद की लीला—है, जिसका संदेश तो सबों ने दिया परन्तु बेहद भूमिका का संदेश उनके बिना दूसरा कौन दे सकता है—

अब इहां से लीला हद की, सो तो सारे केहेसी ।
पर बेहद वाणी हम बिना, दूजा कौन देसी ॥

५४, प्र० ३१, प्र० हिन्दु०

'श्री रास' के प्रणयन का उद्देश्य —

'श्री रास' के माध्यम से महामति प्राणनाथ ने बेहद भूमिका में होने वाले आत्मा-परमात्मा के नित्य-रास का निदर्शन कराने की चेष्टा की है। श्री रास के प्रणयन का लक्ष्य या संकल्प मात्र भाषा-चमत्कार या काव्य-कला का प्रदर्शन करना नहीं है। यदि उसमें ये विशेषताएँ हैं तो वे सहज और सांयोगिक हैं, सायास नहीं। अन्य रीति कालीन कृष्ण काव्यों की भाँति 'श्री रास' शृंगार रस का निर्देशन करने वाला कोई निरूपक काव्य-ग्रंथ नहीं है, बल्कि इसका आध्यात्मिक

---

1. अहंकार मन चित बुध, इन किए सब जेर। अब हारे सब जिताय के, फेरूं सो उल्टे फेर।
प्रकृत सबे पिंड की, सीधी करूं सनमुख। दुख अगनी टाल के, देखाऊं ते अखंड सुख ॥
25/26, प्र• 21/कलस हिन्दु०

लक्ष्य एवं मूल्य है। महामति ने अपनी स्वानुभूत लीला का वर्णन उसमें सम्मिलित एक कुशल नायिका के रूप में किया है। सम्प्रदाय की मान्यताओं और उनकी अपनी स्वीकारोक्तियों के अनुसार तो वे अक्षरातीत परमात्मा की ब्रह्मांगनाओं में एक इन्द्रावती है, जो आत्मा को सूक्ष्म तंत्री से झंकृत कर ब्रह्मसृष्टियों को फरामोशी की नींद से जगाकर, परमधाम वापस ले जाने के निमित्त धराधाम पर अवतीर्ण हुए।

वे ब्रज और रास को अपनी ही लीला मानते हैं, क्योंकि उनमें उन्होंने श्री कृष्ण के प्रेम में विलास किया--

ब्रह्मांड दोऊ अखंड किए, तामें लीला हमारी एह।
तीन लीला माया मिने, हम प्रेमें विलसी जेह ॥

२३, प्र० ७४, **कलश हिन्दु०**

इस माया जगत् में अवतीर्ण होकर तारतम ज्ञान के प्रकाश में उन्होंने अक्षर ब्रह्म के हृदय में हो रही शाश्वत रासलीला का दर्शन अपने 'सुन्दर साथ' को कराया और समस्त संसार को उस सुख में भाग लेने का आह्वान किया—

हम देखें वृन्दाबन इतथे तहां भी खेले पिया साथ।
करें विनोदें नित नए, बनही मिने विलास ॥

७/प्र० २०/**कलश हिन्दु०**

बुधमूल अक्षर की, आई हमारे पास।
जोगमाया को ब्रह्मांड, तिन हिरदे था रास ॥

ब्रजरास में हम रमे, बुध हती रास के रंग।
अब आए जाहेर हुई, इत उदर मेरे संग ॥

८८, ९०/प्र० २३/**कलश हिन्दु०**

रासलीला के वर्णन से महामति अपनी संगी आत्माओं को उनकी अपनी ही प्रणय-लीला की झलक दिखाते हैं—काव्य रचना करना उनका उद्देश्य नहीं था। उन्होंने लिखा—मुझे कोई कविता तो करनी नहीं। मैं तो अपने स्वामी के वचनों को बताने के लिए प्रस्तुत हुई हूं। जो वचन उन्होंने यहां आकर कहे और मेरी शक्ति के अनुसार जो मेरे मन में रह गए, वही मैं बता रही हूं। सुन्दरसाथ से मैं वही वचन कहूंगी जो पहली बार (ब्रज और रास में) हमारे और श्री कृष्ण के प्रेम के सम्बन्ध में धनी (श्री देवचन्द्र जी) ने मुझे प्रतिबोधित किया।

मारे तो नथी कांई किवनुं काम, वचन केहेवा मारे धणी श्री धाम ।
जो आहीं आवी ने कह्या, गजा सारूं मारे चितमां रह्या ।।
साथ आगल कहीस हूं तेह, पेहेलां फेराना सनेह ।
धणिएं जे कह्या अमने, सांभलो साथ कहूं तमने ।।

४-५, प्र० २ श्री रास

'श्री रास' के वर्णन का प्रयोजन मात्र 'स्वान्तः सुखाय' नहीं बल्कि सुदंरसाथ को जगाना, उनमें अक्षरातीत परमात्मा की स्मृति जगाना है। सुन्दरसाथ वस्तुतः अक्षरातीत ब्रह्म की वासनाएं—उनके अंग हैं, जो उनसे विलग हो माया-संसार में भटक रहे और दुःख पा रहे हैं। जिनका दुःख महामति को सहन नहीं है। इसलिए महामति बोधिसत्व या जीसस की भांति सभी सुंदरसाथ के उद्धार के लिए कटिबद्ध हैं :

कोईक दिन साथ मोहजल में लेहेर बिना पछटाने ।
कहे महामत प्यारी मोहे वासना, ना सहूं मुख करमाने ।।

२८/प्र० २१/कलश हिन्दुस्तानी

अनंतकाल से सुन्दरसाथ मोहजल में सहारे के बिना दुख भोग रहे हैं। महामति की ये वासनाएं (आत्माएं) अत्यंत प्रिय हैं। इनका कुम्हलाया मुख उनसे देखा नहीं जाता है। अतएव वे श्री रास के वर्णन के माध्यम से सुन्दरसाथ (ब्रह्मांगनाओं) में मूल वतन (परमधाम) की सुधि जगाना चाहते हैं। यदि सुदंरसाथ उनकी बातों का दृढ़तापूर्वक श्रवण, मनन और ग्रहण करें, तो वे पैगम्बराने दावे के साथ कहते हैं कि वे बालाजी (श्रीकृष्ण) को प्रकट करके दिखा सकते है।

तमे जोपे ग्रहजो द्रढ़ मन करी, हूं तमने कहूं फरी फरी ।
साथ सकल लेजो चित धरी, हूं वालो जी देखाडूं प्रगट करी ।।

६/प्र० २ श्री रास

वे प्रतिश्रुत हैं कि इस तारतम ज्ञान की सहायता से वे किसी का संदेह बाकी नहीं रखेंगे। यह वाणी विशिष्ट वाणी है, साधारण काव्य नहीं। इससे पार के पार—अक्षरातीत परमात्मा का बोध होता है। अपरंपार का विवेक आता है।

नहीं राखूं संदेह एक, पैया काढूं सहूना छेक ।
आ वाणी थासे अति विसेख, कहूं पारना पार विवेक ।।

४३/प्र०१/श्रीरास

महामति रासलीला के प्रसंग को मात्र मिथक, कपोल-कल्पना या दंतकथा नहीं मानते हैं। यह सत्य एवं तथ्य है। इसलिए तत्सम्बन्धी वर्णनों को 'सत्यवाणी', 'सत्यवचन' आदि विशेषणों से अभिहित करते हैं। इस तथ्य को वे स्वयं अपने अनुभव एवं श्रुति (भागवत, पुराण आदि) दोनों से सम्पुष्ट करते हैं। अतएव श्री रास का लक्ष्य मात्र चित्त-विलास या अनुरंजन नहीं, बल्कि ऐहिक ऐषणाओं से मुक्ति का पथ प्रशस्त करना और आत्मा को परमात्मा से मिलन के आनंद का रसास्वादन करने के लिए निमंत्रित करना है—

सास्त्र पुराण वेदांत जो, भागवत पूरे साख।
नहीं कथा ए दंतनी, सत वाणी ए वाक ॥

३६/प्र०१/श्री रास

रास का वैशिष्ट्य—

रास का अपना महत्त्व, एवं वैशिष्ट्य है। रास का अनुभव ब्रह्मांड के नश्वर, असीम दुःखों के बोध और परमधाम के असीम, अविनाशी. अखंड अनुभवों के बीच की कड़ी है। सांसारिक शब्दों में वर्णित होने के कारण यह सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य और साधारण साधक की पहुँच के भीतर है। जहां निराकार में प्रवेश सब कुछ खो देने, शून्य में विलीन हो जाने की भावना से मन को भ्रमित एवं भयभीत-सा बना सकता है, वहाँ रास-वर्णन आनंद की अनन्तता और प्रभु का शाश्वत आधार निर्देशित कर नित्यानंद एवं नित्य जीवन की ओर आकृष्ट करता है, जिसमें नित नवरस का उद्रेक है।

अखंड लीला अति भली, नित नित नवले रंग ॥

५१/प्र० १६ कलस हिन्दु०

इसमे ज्ञान की शुष्कता नहीं, प्रेम का रस है। स्वाधीनता की नीरसता और निरपेक्षता नहीं, प्रेम की सरस पराधीनता और समर्पण है। प्रेमी सदा प्रभु को अपनी ओर हाथ बढ़ाए हुए सहारा देने को समुत्सुक पाता है। इसलिए उसे न कोई भय है, न चिंता। रास का वर्णन आत्मा में परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध एवं पूर्व राग का अभिज्ञान जगाता है। यह लौकिक सुख की क्षणिकता का बोध कराकर अनन्त आनन्द की सुरिता जगाता हैं। मोह और अज्ञान के कारण जगत् में परमात्मा का प्रतिबिंब पाकर व्यक्ति उसी की मरीचिका में भटकता रहता है। परन्तु रास का श्रवण, मनन और निदिध्यासन उसी काम-विकार से

मुक्त और परिशुद्ध कर परमधाम के दर्शन एवं रसास्वादन का अधिकारी बनाता है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—'भगवान जीवों पर कृपा करने के लिए ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं।[1] वे ऐसी लीलाएं करते हैं जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जाएं। जो धीर पुरुष ब्रज वनिताओं और भगवान श्री कृष्ण के चरित, और रास-विलास का श्रद्धा के साथ श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में पराभक्ति की प्राप्ति होती है और वह शीघ्र ही हृदय-रोग (कामादि विकार) से मुक्त हो जाता है।[2]

महामति की भी धारणा है कि बिना रास दर्शन के 'जागनी' संभव नहीं। रासलीला के श्रवण से मन के विकार दूर होते हैं, चित्त निर्मल होता हैं और मनुष्य रास-दर्शन का अधिकारी होता है। रास में जब तक व्यक्ति जग न जाए, तब तक परमात्मा से मिलन के आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

जो लों न काढ़ूं विकार, तोलों क्यों करके जगाए।
जागे बिना इन रास को, किन निजसुख लिए न जाए ॥

२२, प्र० २१ कलस हि०

जिस प्रकार कुछ प्रतीक, कुछ चिह्न भूली-बिसरी स्मृति को जगा देते हैं और व्यक्ति को वस्तु की प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। उसी प्रकार रास का वर्णन भी आत्म-विस्मृत आत्माओं में परमधाम की चेतना जगा देता है। रास के रस को जानने पर ही निजानन्द की प्राप्ति होती है। प्रियतम से मिलन के बाद ही इसका रस जाना जाता है—

'अब सुख रास कहा कहूं, जाने निज सुख होए।
ए सुख साथ पीउ बिना, न जाने कोए ॥

१११/प्र० ३१ प्रकाश हिन्दु०

याद आवें सारे सुख और जीव नैनों भी देखे।
तारतम सब सुख देवहीं विध विध अलेखे ॥

१३०, प्र० ३१ प्रकाश हि०

श्री लालदास जी ने भी अपनी 'बीतक' में रास पंचाध्यायी के माहात्म्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि जो इस रास पंचाध्यायी को श्रद्धापूर्वक सुनता,

---

1. अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहयास्थित:। भजते तादृशी: क्रीड़ाया श्रुत्वा तत्परोभवेत् ॥
   विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णो:। श्रद्धान्वितोऽनुश्रणुयादक वर्णयेद च: ॥
   भक्तिपरां भगवति प्रतिलभ्य कामं। हृद्रोगमाश्व पहिनोत्यचिरेण धीर: ॥
   10/33/37/40 श्रीमद्भागवत
2. 'एह पंच अध्याई स्रद्धा कर सुने गाए करे प्रेम।
   हिरदे रोग जाए धीर होए कर संसार पोहांचे छेम ॥ (बीतक, भूमिका 19/29)

गाता एवं प्रभु से प्रेम करता है, उसका हृदय रोग (कामादि विकार) मिट जाता है। वह शांत और धीर हो जाता है तथा संसार के कर्तव्यों को समाप्त कर शाश्वत धाम में पहुंच जाता है।

रासलीला—स्वरूप विश्लेषण:—

महामति प्राणनाथ के १७ ग्रंथों के संग्रह 'कुलजम स्वरूप' में 'श्री रास' को प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि इसे हिन्दू धर्म के प्रतीक-स्वरूप ग्रहण किया गया है और प्रेम का काव्य होने के कारण इसे 'इंजील' की संज्ञा भी दी गई है। इसकी व्याख्या प्रकाश, कलस, किरन्तन आदि ग्रन्थों में हुई है। इसी प्रकार सनन्ध को कुरान की संज्ञा दी गई है और उसका विश्लेषण मारफत, कयामतनामा आदि ग्रन्थों में किया गया है। साथ ही, इन दोनों परम्पराओं का समन्वय खुलासा नामक ग्रन्थ में किया गया है।

श्री रास श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों में वर्णित रासलीला के प्रसंग पर आधारित है।

रासलीला परमधाम की अखंड-लीला, आत्मा परमात्मा का आनंद-मिलन है, जो जगत् लीला से भिन्न एवं अक्षरातीत परमात्मा के आनंद स्वरूप से अभिन्न है। 'लीला' का अर्थ है—क्रीड़ा। लीला सहज ही बिना प्रयास के आयोजित एवं खेली जाती हैं। यह सत्-चित्-आनंद परमात्मा के आनंद तत्त्व की क्रीड़ा है। वल्लभाचार्य ने लीला की व्याख्या करते हुए बताया हैं कि "लीला विलास की इच्छा है, यह कार्य नहीं, क्रीड़ा है। क्रीड़ा से भिन्न इसका कोई प्रयोजन नहीं होता। किए गए कार्य में भी कर्ता का कोई बाहरी अभिप्राय नहीं रहता। यह कर्ता के प्रयास से उत्पन्न नहीं होता है।[1]

रस रूप (रसो वै सः) परमात्मा की रस प्रदान करने की इच्छा से आत्माओं के संग सरस क्रीड़ा रास लीला कही जाती हैं। पूर्णब्रह्म सनातन रस-स्वरूप, रसराज, 'रसिक शेखर', पारब्रह्म, अखिल रसामृत विग्रह भगवान श्रीकृष्ण

1. लीला नाम विलासेच्छा। कार्यं व्यतिरेकेण।
कृति मात्रम्। नत या कृत्यांबहि: कार्यं जन्यते।
जनितमपि कार्यं नाभिप्रेतम्। नापि कृर्त्तिरि, प्रयासं जनयति।
किन्त्वत: कारण पूर्णे। आनंदे तदुल्लासेन कार्यं जनन सदृशी क्रिया क्वचिदुत्पद्यते।
(श्रीमद्भागवत, वल्लभाचार्य, तृतीय स्कंध—सुबोधिनी टीका)

की चिदानंद रसमयी दिव्य-क्रीड़ा का नाम ही रास है। इसमें न कोई जड़ शरीर रहता है, न प्राकृत अंग-संग और न इसके संबंध की प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही। यह चिदानंद परमात्मा का दिव्य-विहार है, जो दिव्य-लीला-धाम में सर्वदा सम्पन्न होते रहने पर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

लघु भागवतामृत के अनुसार लीला दो प्रकार की है। —प्रकट लीला और अप्रकट लीला—'प्रगटाप्रगट: चेति लीला सो यं द्विविधो उच्चते।'

जो लीला प्रपंच-गोचर है, उसे प्रकट लीला और जो सब प्रकार के प्रपंचों के परे एवं अवांगमनस अगोचर हैं, उसे अप्रकटलीला कहते हैं—

प्रपंच गोचरत्वेन सा लीला प्रगटास्मृता।
अन्यास्तु प्रगटा भांति ता दृश्यगोचरा ॥ —लघु भागवतामृत

परमात्मा की रास लीला नित्य और अविनाशी है।

रासलीला श्रीकृष्ण गोपी, खेले सदा अविनास ॥
६/प्र० १६, कलश हिन्दु०।

चैतन्य महाप्रभु ने भी कहा है कि श्रीकृष्ण की लीला नित्य है, परन्तु कोई-कोई भाग्यवान ही उसे देख पाता है।[1]

लीला का आध्यात्मिक तत्त्व अलौकिक है। उसे सबों के लिए जानना और समझना संभव नहीं है। जीव-सृष्टि की पहुंच वहाँ तक संभव नहीं है।[2] केवल ब्रह्म-सृष्टियां ही उसके रहस्य को समझ सकती हैं। परमधाम में ईश्वर-सृष्टि का भी प्रवेश संभव नहीं है।

मोहोल मंदिर को नाहीं पार, धाम लीला अति बड़ो विस्तार।
इन लीला की काहूं न खबर, आज लगे बिना इन घर ॥
ब्रह्मसृष्ट विना न जाने कोए, ए सृष्ट ब्रह्मथें न्यारी न होए।
सो निध ब्रह्मसृष्ट ल्याईयां इत, ना तो ए लीला दुनिया में कित ॥
७२, प्र० ३७, प्र० हि०

श्री कृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है—'नाहं प्रकाश : सर्वस्य योगमाया

1. नित्य लीला करे जदुराय।
केउ केउ भाग्यवान देखते पाय ॥ —चैतन्य चरितामृत

2. जीव-सृष्टि में उस लीला को सहन कर पाने की क्षमता नहीं। उनके कल्याणार्थ उसे संसार के प्राकृत रूप में उतारा गया।

समावृत: ।'—'योगमाया से समावृत—ढंके होने के कारण सभी के लिए मैं प्रकाशित नहीं होता हूँ, सभी मुझे नहीं जान सकते हैं।' 'स्कंध पुराण' में भी बताया गया हैं कि श्रीकृष्ण की लीला का रहस्य प्रकृति से परे हैं, इस कारण सभी लोग उसे नहीं समझ सकते हैं। श्रीकृष्ण की लीला जब प्राकृत जगत् में होती है, तभी यह सामान्य लोगों के अनुभव में आती है। लीला दो प्रकार की है— वास्तवी और व्यावहारिकी ।[1]

वास्तवी लीला स्वसंवेद है—आत्मज्ञान द्वारा जानी जा सकती है। व्यावहारिकी लीला को उत्तम जीव जान सकते हैं। परंतु वास्तवी लीला के ज्ञान के बिना व्यावहारिकी लीला और व्यावहारिकी लीला के बिना वास्तवी लीला का यथार्थ स्वरूप-बोध नहीं होता। प्रतीयमान लीला न हो, तो असल और नकल की पहचान कैसे होगी? जगत् को नकल की लीला दिखाकर सत्य की लीला की ओर ले जाना ही लीला का प्रयोजन है —

जो प्रगट लीला ना होवे दोए, तो असल नकल की सुध क्यों होए।
ता कारन ए भई नकल, सुध करने संसार सकल ।।

५० प्र० ३७, प्रकाश हिन्दु०

त्रिविध लीला—

प्राणनाथ ने लीला की विविधता की दृष्टि से लीला को तीन भागों में बांटा है—(१) ब्रज लीला (२) रासलीला और (३) जागनी लीला । इन्हें चेतना की विभिन्न अवस्था भी माना जा सकता है। ब्रज लीला में चेतना पूर्णतः सुषुप्त है, रास लीला में अर्द्ध जागरित और अर्द्ध सुप्त एवं जागनी लीला पूर्ण आत्म-जागरण की स्थिति है ।[2]

---

1. रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते । प्रकृत्या खेल सस्तांस्य लीलाऽन्यैरनुभूयते ।।
सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजः सत्व तमोगुणैः । लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ।।

2. ब्रजलीला रात दिन अखंड, रासलीला अखंड रात रे ।
पीउजी विना विवेक कौन केहसी, हुआ प्रतिबिंब तीसरा प्रभात रे ।। 41, प्र०6, प्र०हिन्दु०
ज्यों नीद में देखिए सुपन, यों ब्रज की सुख लियो सैयन ।
सुपन जोगमाया को जोए. आधी नीद में देख्या सोए ।।
कछुक नींद कछू सुध, रास को सुख लियो या विध ।
जागनी को जागते सुख, ए लीला सुख क्यो कहूं या मुख ।।
जागनी में लीला धाम जाहेर, निसान हिरदे लिए चित धर ।
तब उपज्यो आनंद सबों करार, ले नजरों लीला नित बिहार ।।
109-11/प्र० 37, प्रकाश हिन्दु०

ब्रजलीला मानो नींद में स्वप्न की भांति खेली गई लीला है। रासलीला अर्द्ध जागरण में देखी गई लीला और 'जागनी' पूर्णतः जाग्रत हो परमात्मा के संग नित्य-विहार का आनंद लेना है। जागनी लीला में तीन लीला ब्रज, रास और जागनी—के साथ ही परम धाम की चौथी लीला-घर की लीला का भी अनुभव एवं आनंद होता है। चारों लीलाओं का आनंद ध्यानानुभव द्वारा इसी ब्रह्मांड (जागनी लीला के ब्रह्मांड) में प्राप्त किया जा सकता है।[1]

ब्रजलीला—

११ वर्ष ५२ दिन तक श्री कृष्ण नें अक्षर ब्रह्म की आत्मा और अक्षरातीत का आवेश लेकर जो बाल लीला की उसे 'ब्रज लीला' की संज्ञा दी जाती है। ऐसा माना गया है कि ब्रजलीला में श्रीकृष्ण में अक्षरातीत परमात्मा के आवेश का अवतरण तो था ही, उनमें अनेक अवतारों के अंश भी थे। उनमें गोलोकनाथ तथा भूमा विष्णु भी साथ थे एवं चार व्यूह—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—भी कार्य कर रहे थे। श्री कृष्ण के कलेवर में संपूर्ण तेजोराशि एवं चार व्यूहों का समावेश था। अतएव जो कार्य जिस अवतार या व्यूह का था तदनुसार सबों ने श्रीकृष्ण को रूप में सम्पन्न किया। अतएव सारी लीलाओं को श्री कृष्ण की ही लीला माना गया। परन्तु पूर्ण ब्रह्म आवेश रहने से ब्रजलीला को ब्रह्मलीला भी कहते हैं। ब्रजलीला अक्षर ब्रह्म रचित काल माया के ब्रह्मांड में आयोजित हुई! अक्षर-ब्रह्म की इस धाम लीला का अनुभव अक्षरातीत परमात्मा के संग रह कर ब्रह्मांगनाओं ने किया। ब्रजलीला में गो-चारण, दान लीला और आदि कई बाल लीलाएं हुई, जिनका रस गोपियों ने लिया।

दो भुजा सरुप जो स्याम, आतम अख्यर जोस धनीधाम।
ए खेल देखया सैंया सबन हम खेले धनी भेले आनंद ।।
बाल चरित्र लीला जोबन कै बिध सनेह किए सैयन।
कै लिए प्रेम विलास जो सुख, सो केते कहु या मुख ।।

अक्षरब्रह्म की सुख-दुःखमयी द्वन्द्वात्मक सृष्टि के दर्शन के लिए ब्रह्मांगनाएं ब्रजवनिताओं के रूप में ब्रज में अवतरित हुईं। वे अपना स्वरूप बिल्कुल भूल कर श्री कृष्ण के प्रेम में निमग्न हो गईं। यद्यपि वे सब गृह-कार्य

1. जब जाग देखी सुख जागनी, ए सुख सहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की, चारों को यामे भोग ।। कलश हिन्दु० ।।

आदि करती थीं, परन्तु उनका मन सदा श्रीकृष्ण के प्रेम-सागर में संतरण करता रहता था। वे प्रेम रस में बिल्कुल विभोर रहा करती थीं । उठते-बैठते-चलते हर क्षण उनके मन में श्री कृष्ण का ही ध्यान समाया रहता था। श्रीकृष्ण ही उनके नयनों में बसे रहते थे। जब श्रीकृष्ण गोचारण के लिए वन चले जाते तो विरह की एक-एक घड़ी उन्हें एक-एक युग की भांति प्रतीत होता। तब उनका स्मरण, गुणकथन आदि होता था। सब आपस में उनका ही विचार, उनकी ही बातें करती थीं। दिन-रात श्रीं कृष्ण की बातों में ही व्यतीत होता था। एक क्षण के लिए भी श्रीकृष्ण उनसे अलग हो जाते, तो विरह का दारुण दुःख उन्हें असह्य प्रतीत होता था। जब वे बछड़ों को लेकर वन चले जाते थे, तो उनका दिन रोते बीतता था। जब श्री कृष्ण पास में होते, तो वे दोने में दही भरकर उन्हें खिलाती थीं। उनके संग तरह-तरह का खेल खेलती थीं। इस प्रकार ११ वर्ष ५२ दिन व्यतीत हो गए। श्री कृष्ण के सहज प्रेम में गोपियां सब कुछ भूल बैठी थीं। कृष्ण से उनका क्या संबंध है, इसे भी वे भूल चुकी थीं। अपने घर की लीला का उन्हें स्मरण ही नहीं था। वे मानो गहन निद्रा की अवस्था में थीं। तब श्रीकृष्ण ने परमधाम का आनंद देने तथा किशोरानंद की भावना को तृप्त करने और उनमें परमधाम की स्मृति जगाने के लिए उनकी आधी नींद उड़ा दी और रासलीला का आयोजन किया।[1] रासलीला योगमाया के चिन्मय ब्रह्मांड में हुई। जबकि ब्रजलीला माया के मृण्मय ब्रह्मांड में। ब्रजलीला के बाद कालमाया लुप्त हो गई और योगमाया का नया ब्रह्मांड रचा गया।

अग्यारे बरस लों लीला करी काल माया इतही पर हरी।
योगमाया कर रास जो खेले, कै सुख साथ लिए पीउ भेले।।

१०-११, प्र० प्रकाश हिन्दु०

रास लीला:—

अक्षरातीत पारब्रह्म परमात्मा की ब्रह्मांगनाओं के संग होने वाली लीला रासलीला है। ब्रह्म रस सरूप है (ब्रह्म वै रसः)। जहाँ सभी रसों का समूह हो, जहां रस की राशि बिखर रही हो, रस ही रस छलक रहा हो उसे 'रास' कहते हैं—रसाणां समूहः रासः। दूसरे शब्दों में, आत्मा के परमात्मा से मिलन

1. तब धाम धनिएं कियो विचार, ए दोऊ मगन हुए खेले नर नार।
मूल वचन की नाहीं सुध, ए दोऊ खेलें सुपन की बुध।।
एह बात धनी चित्तसों ल्याए, आधी नींद दई उडाए।
अग्यारे बरस और बावन दिन, ता पीछे पोहोंचे वृन्दावन।। 27, 28, प्र० 38 प्र. हि.

का अपूर्वरस 'रास' कहा जाता है और उसकी लीला को रासलीला की संज्ञा दी गई है ।

अब हम मिने थे ए रस, इत आए छलकाना ।
छोल आई ज्यों सागर अंग थे उभराना ।।

आश्विन के महीने में शरद् ऋतु की पूर्णिमा में चन्द्रमा सोलहों कलाओं से चमक रहा था । शीतल मंद समीर बह रहा था । इसी समय श्रीकृष्ण ने बांसुरी बजाई । उनकी बांसुरी की आवाज सुनकर गोपियां बेताब हो उठीं । वे अपनी सुध-बुध भूल गईं । जो जहाँ और जिस अवस्था में थीं वहीं उसी अवस्था में वे श्रीकृष्ण की बांसुरी के सम्मोहन में खिचती सी चली आईं । उनके मार्ग में संसार का मोह नहीं आया । वे सहज ही माया की सीमा पार कर गईं । जो गोपी गाय दुह रही थी, उनके हाथ से दूध का मटका गिर गया । जो घर के काम कर रही थी, वे अपने पति और श्वसुर के सामने ही लोक-लाज खोकर दौड़ पड़ीं । कोई गोपी पति से बात कर रही थी और बच्चे को दूध पिला रही थी, उसकी गोद से बच्चा गिर पड़ा । जो भोजन परोस रही थी, उनके हाथ से थाली गिर पड़ी । वे सुध-बुध खो बैठीं । उन्हें माता-पिता, पति, सास-श्वसुर किसी की भी परवाह नहीं रही । अपने बच्चों का रोना भी उन्हें सुनाई नहीं पड़ा । यहां तक कि उन्हें अपने तन-बदन की भी सुधि नहीं रही । प्रेम में माया का निराकरण कितना सुगम और सहज हो जाता है । जिस माया का पार बड़े-बड़े ऋषि-मुनि नहीं पा सकते हैं, वह माया गोपियों के लिए कोई बाधा नहीं बन सकी । भवसागर उनके लिए 'गोपद परिमाण' हो गया । श्रीकृष्ण के महान आकर्षण में जगत् का आकर्षण सुबह के चिराग के समान मंद पड़ जाता है । महामति ने गोपियों को तामसी, राजसी और स्वांतसी—तीन वर्गों में विभाजित किया है । ठीक ऐसा विभाजन श्रीमद्भागवत में नहीं हुआ है । तामसी गोपियां यद्यपि संसार का सब कार्य करती थीं, परंतु उनका ध्यान सतत् श्रीकृष्ण में लगा रहता था, इसलिए वंशी की ध्वनि सुनते ही वे दौड़ पड़ीं । राजसी गोपियां श्रृंगार में लगी हुई थी, परंतु जब उन्होंने श्रीकृष्ण का वेणु-स्वर सुना तो वे ऐसी विह्वल हो गई कि पांव का आभूषण उन्होंने कान में और कान का आभूषण पांव में पहन लिया । एक आंख में अंजन किया और दूसरी वैसे ही रह गयी । उन्होंने थोड़ा-बहुत देखा और उन्हें लगा कि देर हो गई । अतएव वे तामसियों के पीछे भागीं । सात्विकी गोपियां कुछ देर विचार करती रहीं । जब उन्होंने देखा कि उनके स्वजन संबंधी उनकी राह रोके हुए हैं तो उन्हें बड़ा कष्ट

हुग्रा कि ये दुर्जन लोगउ नकी राह क्यों रोके हुए हैं। क्या ये नहीं जानते कि श्रीकृष्ण इनके पति हैं? वास्तव में तो श्रीकृष्ण ही एकमात्र पति हैं ग्रौर बाकी सभी आत्माएँ तो उनकी ग्रंगनांएं हैं। उनमें श्रीकृष्ण के विरह की ऐसी ज्वाला प्रज्ज्वलित हुई कि उन्होंने तत्क्षण वहीं देह त्याग दिया, फिर भी सबों के पहले ही श्रीकृष्ण के पास अविलंब पहुंच गईं। वहां योगमाया ने ब्रज-वधुग्रों का नवीन शृंगार किया। उन्हें चेतन रूप प्रदान किया। वे देह और मन के तल से ऊपर उठकर चेतना के तल पर अवतरित हुईं।

ब्रज-वधुओं के अलावा कुमारिकाओं ने भी रास का ग्रानंद लिया। श्रीमद् भागवत में शुकदेव मुनि ने कुमारिकाओं के स्वरूप पर प्रकाश नहीं डाला है, परंतु महामति ने उसका रहस्योद्घाटन किया है और उसकी तात्त्विक विवेचना की है। कुमारिकाएं ग्रक्षरब्रह्म की सुरत की (वृत्तियां) शक्तियां थीं, जबकि ब्रज वनिताएं ब्रह्म सृष्टियां। कुमारिकाएं वैदिक ऋचाओं का मूर्तिमान रूप थीं। उन्होंने एक बार कार्तिक के महीने में कात्यायनी व्रत, उपवास और स्नान कर के यह वर मांगा था कि श्रीकृष्ण उन्हें पति रूप में मिलें। श्रीकृष्ण ने उनका चीर-हरण करके लोक-लाज के बंधन को तोड़ा था ग्रौर उनका अनन्य प्रेम देखकर उनकी मनोकामना पूर्ण करने का आश्वासन दिया था। महामति के ग्रनुसार ईश्वरीय सृष्टि की पहुंच परमधाम तक नहीं है। वहां केवल ब्रह्मसृष्टियों का ही प्रवेश है। कुमारिकाओं के प्रेम के कारण प्रभु ने उन्हें परमधाम की लीला का रस प्रदान किया। ब्रह्मसृष्टियों के चेतन शरीर में उनकी सुरत का प्रवेश हुआ और उन्हें श्रीकृष्ण के ग्रंग-राग का सुख मिला।[1]

श्रीकृष्ण के वेणु-स्वर को सुनकर गोपियां बेसुध हो दौड़ पड़ीं। इस नश्वर शरीर में परमधाम के अखंड सुख को सहन कर पाने की संभावना नहीं होती। अतएव उनका शरीर छूट गया। कालमाया का खेल समाप्त हो गया और योग-माया ने बड़ी युक्ति से उन्हे अभिनव चेतन रूप प्रदान करके उनका नया शृंगार किया।

जोगमायानों देह धरीने, श्री स्यामा जी थैंया तैयार ॥

श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं है। केवल एक विशिष्ट गोपी के रूप में उसका संकेत माना जा सकता है। परंतु महामति ने

1 वस्तुत: कुमारिकाओं से अक्षरातीत परमात्मा का सशरीर संबन्ध नहीं हुआ। जब अक्षर ब्रह्म से अक्षरातीत ने अपना आवेश खींच लिया तो वे अन्तर्ध्यान हो गए। अत: अक्षर ब्रह्म का ब्रह्मात्माओं के साथ रमण नहीं हुआ।

राधा का स्पष्ट उल्लेख किया है। राधा वृषभानु और प्रभावती की कन्या थी जिसमें अक्षरातीत की आनंद अंग श्यामाजी की सुरिता उतरी थी। राधा श्यामा जी का जागतिक रूप थी। महामति ने दोनों के स्वरूप को स्पष्ट किया। कृष्ण की तरह व्रज और रास की नायिका के भी भेद हैं:—व्रज की राधा श्यामा जी का अवतरण है, जो रास लीला तक रहा। सूरदास ने राधा और कृष्ण का विवाह भी रचाया है, परन्तु महामति के अनुसार इनका विवाह नहीं हुआ था। इनके बीच केवल मूल सम्बन्ध और तज्जनित पूर्व राग था।

राधाबाई पिता वृषभान जी, प्रभावती बाई मात।
सुदामा कल्याणजी, याथें छोटो क्रस्नजी भ्रात॥
कल्याणबाई नारी सुदामा, अंग धरत अति बड़ाई।
करत हांसी कै भांतें, याकी स्याम सों सगाई॥
मंदिर छे मांडवे आगे, चरी चड़े दूध माट।
स्यामा गोद प्रभावती, ले बैठत हैं खाट॥
मांगा किया राधाबाई का, पर ब्याहे नहीं प्राननाथ।
मूल सनमंधे एके अंगे, विलसत वल्लभ साथ॥

२८-३१, प्र० १९, कलस हि०

व्रज की राधा का संबंध अक्षरातीत श्रीकृष्ण से था। रासलीला के बाद व्रज की गोपियों में प्रकटी वेद ऋचाओं अथवा कुमारिकाओं के स्वामी अक्षर ब्रह्म थे। यही कारण है कि विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण (द्वारिकाधीश) के साथ उनका विवाह नहीं हुआ। वे तो अपने मन में श्रीकृष्ण से रमण करती थीं।

महामति ने रासलीला का वर्णन करने के पूर्व श्यामाजी, उनकी सखियां एवं श्री जी के नख-शिख श्रृंगार का सविस्तार, भव्य एवं मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने चेतन वृन्दावन के सौन्दर्य का भी हृदयग्राही वर्णन किया है जो प्रसंग श्रीमद्भागवत में नहीं है। योगमाया रचित इस रास-मंडल में सब कुछ प्रकाशमय है। लगता है कि एक साथ करोड़ों सूर्य उदित हो गए हैं। सौन्दर्य का सागर लहरा रहा है, जिसमें सभी एक रस हो रहे हैं।

कोटान कोट जाणे सूरज उदयो, ब्रह्मांड न माए झलकार।
प्रधल पूर जाणे सायर उल्टयो, एक रस थई सरवे नार॥

३, प्र० ७, श्रीरास

उथला—

जब गोपियां भाव-विह्वल हो वृन्दावन पहुंचीं, तो श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्तव्य का, मर्यादा का बोध कराया, लोक-लाज का भय दिखाया और कहा कि कुलवन्ती और पतिव्रता स्त्रियां रात को घर से नहीं निकलतीं। जाति-बिरादरी के लोग सुनेंगे तो तुम्हारी निन्दा करेंगे—लोकोपवाद होगा। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था।' यह सुनकर गोपियां हतप्रभ हो गईं। जिनके लिए उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया था, वही उन्हें भला-बुरा कर रहे थे। वे रोने-कलपने लगीं।

परन्तु गोपांगनाएं प्रियतम को छोड़कर कहां जातीं? उन्होंने अपना तन-मन सर्वस्व श्रीकृष्ण के लिए न्योछावर कर दिया था। माया के सारे बन्धन तोड़कर भाव-विह्वल हो वे दौड़ी आई थीं। श्रीकृष्ण की युक्तियों का उन पर पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। श्रीकृष्ण ने वेद-मर्यादा का भय दिखाते हुए कहा कि कुलवन्ती स्त्री रोगी, अपंग, दरिद्र पति का भी त्याग नहीं करती। तब गोपियों ने अत्यन्त गहरी बात कही। उन्होंने कहा कि हम तो वेदाज्ञा का पालन करने हेतु ही प्रस्तुत हुई हैं। हमने अपने वास्तविक पति को पहचान लिया है। हमारे वास्तविक स्वामी तो आप ही हैं, तभी तो हम अपने सांसारिक संबंधों को छोड़कर आपको बाँसुरी की टेर पर तत्क्षण यहां चलीं आईं। हमने पीहर और नैहर वालों को देखा तक नहीं। चूंकि हम अपने वास्तविक प्रियतम को जानती हैं, इसलिए हम कदापि उसे नहीं छोड़ सकतीं हैं। आपने ही तो कहा कि पति अवगुण युक्त होने पर भी वरेण्य हैं, फिर आप तो सर्वगुण सम्पन्न हैं, अतएव हम आपको कैसे छोड़ सकती हैं? हम तो आपके साथ रमण की कामना से आई हैं। अब हम पीछे फिरकर कहाँ जाएं? फिर भला हमारा अपराध क्या है जो आप हमारा ऐसा तिरस्कार कर रहे हैं? हमने तो आपके सिवा संसार का कोई और सम्बन्ध जाना ही नहीं! हमारा सर्वस्व तो सिर्फ आपके चरणों में है। यदि अब आप एक क्षण भी हमारी ओर नहीं देखेंगे, तो हमारी देह छूट जाएगी। हाय! हमारी आत्मा कितनी ढीठ है, हमारा मन कितना कठोर है कि आपके इतने कठोर वचनों को भी उसने सहन कर लिया। गोपियां प्रेमविह्वल हो श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं। जब श्रीकृष्ण ने उनका ऐसा अनन्य प्रेम देखा, तो उन्होंने उन्हें गले लगा लिया, उनका दुःख दूर किया। उन्होंने कहा कि मैं केवल तुम लोगों की परीक्षा ले रहा था। मैं देख रहा था कि तुम्हारे अन्दर माया का लेश अभी तक बाकी है या नहीं।

वाले जी कहे छे वातडी, तमे सांभल जो सहू कोए ।
मैं जो यूं तमारुं पारखूं, रखे लेस मायानो होए ।।

५१, प्र० ६, श्रीरास

उन्होंने गोपियों के आँसू पोंछ डाले और आश्वासन दिया कि वे उनके सभी मनोरथ पूर्ण करेंगे, उनके साथ रास करके आनन्द-वर्धन करेंगे ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने उन्हें चिन्मय वृन्दावन का दर्शन कराया, जो नित्य है और जिसमें नित्य नवीन रंग हैं —उत्सव एवं उल्लास है । श्रीकृष्ण ने उनके संग भांति-भांति से क्रीड़ा कर उनका रस-वर्धन किया । रासलीला के क्रम में अचानक श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए ।

महामति प्राणनाथ ने श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान का कारण यह बताया है कि जब अक्षरातीत ब्रह्म ने देखा कि अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मात्माएं खेल में मग्न हो गए हैं, वे अपने संसार में आने और दुःख देखने के उद्देश्य को भूल रहे हैं तो उन्होंने अक्षर ब्रह्म से अपना जोश खींच लिया । अक्षर ब्रह्म चौंके—

"कौन वन, कौन सखी कौन हम, यों चौंक के फिरी आतम ।"

दूसरी बात यह कि रास लीला के क्रम में गोपियों को अपने प्रेम का मान एवं सौभाग्य का अहंकार हो गया, इसलिए भी श्रीकृष्ण लीला करते-करते अन्तर्ध्यान हो गए क्योंकि:—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं ।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहीं ।।"

जब तक व्यक्ति के मन में अहंकार रहता है, तब तक परमात्मा का दर्शन सम्भव नहीं है । बिना "मैं पन" मिटे परमात्मा का दर्शन एवं उसके संग मिलन संभव नहीं होता । जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए तब गोपियों का मोह भंग हुआ । उन्हें श्रीकृष्ण के विरह के दुःख की अनुभूति होने लगी । उन्हें लगा मानो उनकी आत्मा ही छिन गई । उनका हृदय कांपने लगा और शरीर को वश में रखना कठिन हो गया । श्रीकृष्ण के बिना उन्हें जीवन नीरस, निस्सार और निष्प्राण प्रतीत होने लगा । विरह की विभिन्न दशाएं, जैसे—अभिलाषा, चिंता, स्मरण गुण-कथन, आत्म-धिक्कार, मूर्च्छा आदि उनमें प्रकट होने लगीं । वे भांति-भांति

1. विरह की दस अवस्थाएं हैं—अभिलाषा, चिंता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ।
उज्जवल नीलमणि में रूप गोस्वामी ने इनका क्रम इस प्रकार रखा है—
चिंता, जागरण, उद्वेग, तनाव, मलिनांगता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह एवं मृत्यु ।

से अपने आपको समझाने लगीं कि जिनका नाम ही श्रीकृष्ण (कर्षणकारी) है, वे हमें कदापि नहीं छोड़ेंगे ।

एम रे सखियो तमे कां करो, बेहनी दृढ करो कां न मन ।
आपणने मूकें नहीं, जेहेनूं नाम श्री क्रस्न ।।

२२, प्र० ३२, श्रीरास

कोई गिरती, कोई लोटती और कोई आंसू बहाती रही । फिर उन्होंने वही सब खेल खेलना शुरू कर दिया जो उन्होंने श्रीकृष्ण के साथ खेला था । कोई कृष्ण बनी, कोई नन्द बनी, कोई पूतना बनी, किसी ने दैत्य का रूप धारण किया । कोई यशोदा बनी और इस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोकुल में जो-जो लीला की थी, उन लोगों ने उनका अभिनय करना प्रारम्भ किया । फिर एक सखी ने श्रीकृष्ण की भांति बांसुरी बजायी । सभी सखियों का मन आनन्दोल्लास से भर गया । उन्होंने समझा कि श्रीकृष्ण लौट आए हैं । पुनः अक्षरातीत ब्रह्म का आवेश नए भजनानंदी स्वरूप में प्रकट हुआ और—'सखी सखी प्रते स्याम' हो कर उन्होंने रास लीला के रस को बढ़ाया । उन्हें विरह के दुःख का पता नहीं था । परन्तु बिना दुःख की अनुभूति के मिलन के आनंद का भी पता नहीं चलता । बिना विप्रलभ शृंगार के संयोग शृंगार पूर्ण नहीं होता, तिक्त वस्तु के रसास्वादन के बाद ही मीठी वस्तु के मिठास का पता चलता है । श्रीकृष्ण ने उनका परिचय विरह-दुख से कराया । उन्होंने ऐसा खेल किया जिससे उनका देहमान नष्ट हो गया ।

सखियो करती मान, तेणें ब्रहना कीधां पान ।
विसरी सरीर सान, एवो कीधी खेल ।।

४, प्र० ३६, श्रीरास

उनके मन में जितने मनोरथ थे, सबों को वालाजी ने पूर्ण किया । लेश मात्र भी अभिलाषा शेष नहीं रही । सभी सखियां प्रियतम के रंग में रंग गईं—

मारा पूरण मनोरथ जेह, थया वर सूं मली ।
कांई रही नहीं लवलेस, वालाजी सूं रंग रली ।।

२, प्र० ४४, श्रीरास

मिलन का जो आनन्द है, वह वर्णनातीत है । वह या तो श्री कृष्ण जानते हैं या फिर उसे गोपियों का हृदय ही जानता है । उस अखंड सुख का पार नहीं । सांसारिक सम्बन्धों में ऐषणाएं कभी तृप्त नहीं हो पातीं—प्रतिबन्ध लगने से भड़कती हैं । श्री कृष्ण परमात्मा के संयोग से ही वे शान्त हो पाती हैं ।

महामति ने रास प्रसंग में बहुत-सी एसी क्रीड़ाओं का उल्लेख किया है जैसे जलक्रीड़ा, व्योम-विहार, वन भोज आदि जिनका उल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं है। संभव है कि प्रतिभासिकी लीला में वास्तवी लीला से कुछ भिन्नता रही हो, या परीक्षित द्वारा व्यवधान डालने के कारण शुकदेव मुनि उसका उल्लेख नहीं कर पाए हों।

रासलीला तीन प्रकार की मानी गई है—(1) वास्तवी (2) प्रतिभासिकी और (3) व्यावहारिकी।[1]

अक्षर-ब्रह्म के हृदय में होने वाली लीला को 'वास्तवी' लीला कहते हैं। वास्तवी लीला इस जगत् से परे है। अक्षर ब्रह्म के हृदय में जो लीला हो रही थी, उसका प्रतिभास केवल ब्रह्म के महाकारण या गोलोक में भी पड़ रहा था, इस कारण नित्य गोलोक में होने वाली लीला को 'प्रतिभासिकी या प्रतिविम्ब लीला' कहते हैं। नित्य गोलोक को ब्रह्मांड से ऊपर माना गया है। जहां किशोरावस्था में नित्यानन्द विग्रह श्रीकृष्ण का वास है —

'नित्यं वृन्दावनं ब्रह्मांडोपरि संस्थितम्।
तत्र कैशोरवयसं नित्यमानंद विग्रहम्।।

(वराह संहिता)

अक्षर ब्रह्म के चित्त में स्थित इसी नित्य वृंदावन[2] में अनुष्ठित वास्तवी लीला का प्रतिविम्ब गोलोक में पड़ा तो मुग्ध वेद ऋचाओं ने अक्षर ब्रह्म से रासलीला खेलने की इच्छा व्यक्त की। उनके लिए पुनः श्रीकृष्ण ने व्रजमंडल (तीसरे ब्रह्मांड) में रास का जो अनुभव वेद ऋचाओं के रूप में गोपियों को इस शरीर में दिया, वह उच्च जीवों के लिए ही अनुभव (या अनुभूति) गम्य है। श्री शुक मुनि एवं भक्त नरसी मेहता ने उसी अनुभव से रासलीला का वर्णन किया।

मूर्तमंत वेद की ऋचाओं की प्रार्थना पर पुनर्वार कालमाया के ब्रह्मांड में इन वेद ऋचाओं ने गोपिकाओं का रूप धारण कर अक्षर ब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण

---

1. अक्षर ब्रह्म हृदये वास्तवीं विद्धि शंकर।
नित्यं वृन्दावने या च सा स्मृता प्रतिभासिकी।।
व्रज भूम्यां च या लीला सो प्रोक्ता व्यावहारिकी ।।

(सदाशिव संहिता, मध्व आलमदार संहिता)

2. सात्वतां स्थान मूर्धन्यं विष्णों परस्यन्त दुर्लभम्।
नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्मांडोपरि संस्थितम् ।।
पूर्णब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यानंदमव्ययम।
वैकुंण्ठादि तदशांश स्वयं वृन्दावनं भुवि ।। 9 ।। पद्मपुराण

के सान्निध्य में उनके स्वरूप में एकाकार होकर 'रास' का आनन्द ग्रहण किया। उसे व्यावहारिकी लीला की संज्ञा दी गई।[1] —

रासलीला के उपरांत व्रजभूमि में गोपिकाओं के रूप में अवतरित गोपियां श्रीकृष्ण के निकट रहीं। उनका सम्बन्ध भावात्मक था। वे अहर्निश रासमंडल की लीला का स्मरण करती थीं। अक्षर ब्रह्म श्रीकृष्ण वहां सात दिनों तक रहे। उनके चले जाने पर वे विरह व्याकुल हुईं। विरहावस्था में शरीर-पात होने के कारण वे तत्काल गोलोक पहुंची, जिसकी उन्हें सदैव स्मृति रही।

तारतम ज्ञान इस तथ्य को रेखांकित करता है कि ब्रह्मांड तो आदि-अनादि काल से यूं ही, बनते-मिटते चले आ रहे हैं। ब्रह्म एवं ब्रह्मात्माओं की व्रजलीला के रात-दिन अक्षर ब्रह्म के स्मृति-पटल पर अंकित होने से 'अखंड हुए।' रास-रात्रि को भी उन्होंने अपने मन में संजो लिया। गोलोक धाम में उन लीलाओं के प्रतिबिम्ब को वेद-ऋचाओं ने देखा तो व्रज में अवतरित होकर सशरीर—व्यावहारिक रूप में—अनुभव प्राप्त करके संसार के श्रेष्ठ जीवों के लिए अनुभव गम्य वना दिया। जागनी लीला के प्रभात में जाग्रत आत्माओं को—व्रज, रास एवं परमधाम—इन तीनों लीलाओं का दर्शन-सुख प्राप्त होता है।[2]

अध्यात्म के क्षेत्र में प्रत्येक वस्तु, लीला एवं स्वरूप के तीन भेद हैं। शरीर तल पर होने वाली लीलाएं स्थूल एवं व्यावहारिक हैं। भावना के तल पर प्रति-भासिक तथा प्रतिबिंब एवं आत्म-अध्यात्म के स्तर पर वह वास्तव में घटित हो रही हैं।

---

1. काल माया को एजो इंड, उपज्यो और जाने सोई ब्रह्मांड।
   ए तीसरा इंड नया भया जो अब, अख्यर की सुरत का सब ॥
   याही सुरत की सखियां भई, प्रतिबिंब वेद रिचा जो कही।
   जाको कह्यो उधो ग्यान जोगारंभ, सो क्यों माने प्रेमलीला प्रतिबिंब ॥

   46-47, प्र० 37, प्रकाश हिन्दु०

2. व्रजलीला रातदिन अखंड, रासलीला अखंड रात रे।
   पीउ जी बिना बिवेक कौन केहेसी। हुआ प्रतिबिम्ब तीसरा प्रभात रे ॥

   41, प्र० 6, प्रकाश हिन्दु०

जागनी लीला—

आत्म-विस्मरण, नींद, फरामोशी में पड़ी आत्माओं को जगाकर परमधाम में उठाना जागनी लीला कही जाती है। जागतिक अज्ञानावरण दूर होते ही, आत्मा दिव्य, तारतम्य ज्ञान के अनन्त प्रकाश में परमात्मा का सम्यक् बोध प्राप्त करती है, तब उसमें प्रेम का आवेश जगता है। 'अहं' विसर्जित हो जाता है। 'मैं और तू' का भेद मिट जाना है और आत्माएं परमात्मा से मिलन का आनन्द लेती है। व्रजलीला तन्द्रिल अवस्था है, रासलीला स्वप्निल, परन्तु जागनी पूर्ण आत्म-जागरण की स्थिति है। जहां स्वप्न का आनन्द है, वहां मूल स्वरूप की सुधि नहीं। और जहां मूल वतन की सुधि है, वहां कोई स्वप्न नहीं।

चूंकि व्रजलीला और रासलीला दोनों स्वप्नवत है, इसलिए इनमें परमधाम की सुधि और चेतना नहीं है इसी कारण इस तीसरे ब्रह्मांड की रचना हुई। तीसरी लीला—जागनी लीला का प्रयोजन सभी स्वप्न-माया और आसक्ति को मिटाकर आत्मा को पूर्णतः जाग्रत और प्रबुद्ध करना है। इस आत्म-जागरण में प्रेम विभोर हो आत्मा प्रियतम के रंग में रंगकर उनके संग अनन्त विहार के रस में रसमग्न हो जाती है। इस महामिलन का आयोजन और पूर्ण जागरण एवं सच्चिदानंद स्थिति को 'जागनी रास' की संज्ञा दी गई है। जागनी की विशेषता यह है कि इसमें तीनों लीलाओं के संग ही परमधाम के नित्य, चिरंतन, चिरनूतन, महामिलन का भी रसभोग है और वह भी इसी जगत् एवं इसी नश्वर काया से—"इतही बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।।"

जब लीजे सुख सुपन; नहीं वतन व्रष्ट।
जब सुख वतन लीजिए, नहीं सुपन की सृष्ट।।
यों सुख सुपने लिए, कछुए नहीं खबर।
इन दोउ लीला मिने, सुध नाहीं घर।।
या विध लीला दोउ करी, सिधारे वतन।
ए ब्रह्मांड जो तीसरा, ले आए आपन।।

१२१-१२३ प्र० ३१, प्रकाश हि०

अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सुहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की, चारों को यामे भोग।।

१, प्र० २३ कलस हि०

परमात्मा पूर्णावतार, अंशावतार, आवेशावतार आदि लेकर जो भांति-भांति की लीलाएं करते हैं, उसका कारण और प्रयोजन क्या है! वैसे तो लीला भगवान की विलासेच्छा मात्र है जिसका कोई कारण या प्रयोजन नहीं होता, क्योंकि भगवान जो सभी नियमों का नियन्ता है, वह किसी कारण या प्रयोजन के अधीन नहीं है। सब कुछ उसकी मौज है। फिर भी कुछ अनुषांगिक तत्त्व हैं जो लीला के प्रयोजन और कारण बनते हैं, जिसका उल्लेख पुराणों में हुआ है। गीता और श्रीमद्भागवत में वर्णित प्रयोजन यहां पर बताने से महामति का दृष्टिकोण सुस्पष्ट होगा। महामति की वाणी में विभिन्न समयों में श्रीकृष्ण में विभिन्न शक्तियों का अवतरण माना गया है। उनका तारतम ज्ञान क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुष के स्वरूप को तर और तम के भाव से स्पष्ट करता हुआ—उनमें तारतम्य दिखाता है। जैसे—श्रीकृष्ण का प्रथम प्रादुर्भाव वासुदेव और देवकी के समक्ष कारागृह में होता है। उनमें उस समय बैकुंठवासी चतुर्भुजी विष्णु का स्वरूप था। जिन्होंने वासुदेव-देवकी को अपना चतुर्भुज रूप दिखाया और फिर अपने स्वरूप का रहस्य बता कर बिदा हो गए।

—सुरत विष्णु की चत्रभुज जोए, दियो दरसन बसुदेव की सोए।
पीछे फिरे केहेके हकीकत, अब दोए भुजा की कहूं विगत॥

२१, प्र० ३७, प्र० हि०

नन्द के घर उनमें अक्षरातीत ब्रह्म का आवेश रहा और मथुरा में शिशुपाल वध के समय विष्णु का आवेश।

महामति ने श्रीकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों में श्रीकृष्ण लीला का विशेष प्रयोजन माना है। चतुर्भुजी विष्णु के रूप में उनका अवतार आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए हुआ। इसी शक्ति को लेकर श्री कृष्ण ने कंस एवं शिशुपाल का वध किया। अक्षर ब्रह्म की सुरिता और अक्षरातीत के आवेश सम्पन्न नंद-नंदन कृष्ण के रूप में उनका प्रयोजन ब्रह्मांगनाओं को सुख-दुःखमय जगत् दिखाकर वास्तविक आनंद का स्वरूप बोध कराना था। परमधाम में समरसता है, क्योंकि वहां पर मात्र संयोग है, वियोग नहीं। लेकिन बिना वियोग के संयोग सुख की वास्तविक पहचान नहीं होती। जैसे बिना तिक्त का अनुभव किए मिठास का स्वरूप उजागर नहीं होता है। इसलिए परमधाम की समरूपता को भंग कर अपना प्रेम जताने के लिए परमात्मा ने लीला—विस्तार किया। साथ-ही-साथ इसका प्रयोजन अक्षर ब्रह्म को अपना रास रमण भी दिखाना था।

अब खेल उपजे के कहूं कारन, ए दोउ इच्छा भई उत्पन्न।
बिना कारन कारज नहीं होए, सो कहूं या के कारन दोए।।
६, प्र० ३०, प्र० हि०

इस प्रकार व्रज और रासलीला के पीछे दो कारण थे—

१. ब्रह्मांगनाओं की सुख-दुख मयी सृष्टि का अनुभव कराना एवं
२. अक्षर ब्रह्म को अक्षरातीत के नित्य विलास का दर्शन कराना।

इन सबों का मूल प्रयोजन था ब्रह्म सृष्टियों का परमधाम प्रत्यावर्तन !

महामति ने इस तथ्य विशेष पर ही अधिक जोर दिया है क्योंकि जो भगवान अपनी भृकुटि मात्र से सृष्टि और प्रलय कर सकते हैं, उन्हें दानवों के संहार के लिए स्वयं क्यों आना पड़ेगा ? अक्षरातीत परमात्मा ब्रह्मप्रियाओं को अक्षरब्रह्म की लीला दिखाने उनके साथ अवतरित हुए। उनकी रासलीला के माध्यम से अक्षर ब्रह्म और उसके जगत् ने ब्रह्म विलास देखा। यह ब्रह्म विलास संसार के बद्ध जीवों के लिए मुक्ति का साधन भी बना। माया में भूली आत्माओं में परम धाम की स्मृति जगाकर अपने धाम वापस ले जाना ही लीला का प्रयोजन है।

इन घर बुलावें ए धनी, ब्रह्मसृष्टि जो है अपनी।
खेल किया सो तुम कारन, ए विचार देखो प्रकाश वचन।
३१, प्र० ३३, प्र० हि०

श्री रास अनुक्रम—

श्री रास "हवे पेहेलां मोह जलनी कहूँ बात, ते तां दुःख रूपी दिन रात" —अब पेहेले मोहजल माया की बात कहती हूं जो दुःखमयी है और जिसमें आत्माएं दिन रात दुःख भोग रही हैं।—महामति ने आत्मा की वर्तमान अवस्था से प्रारम्भ किया है। आत्मा जिस दिन से परमात्मा से विलग हुई है, उसी दिन से यह परमात्मा के विरह में दुःख भोग रही है। वस्तुत: दुःख परमात्मा से विलगाव का ही दूसरा नाम है। आत्माएं-ब्रह्मांगनाएं अक्षरातीत परमात्मा के संग नित्य मिलन का आनन्द लेती थीं, परन्तु अपने ही हठ, अपने ही अज्ञान या माया के प्रभुत्व से वे परमात्मा से विलग हो गईं और जगत् में आकर दुःख, द्वन्द्व और माया का शिकार हुईं। इस कारण महामति ने माया के प्रसंग से ही 'श्री रास' का प्रारम्भ किया।

दूसरी बात यह है कि आत्मा और परमात्मा के बीच माया का ही पर्दा है। माया के आवरण के कारण ही परमात्मा का स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता है। माया ही आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधा है, जो माया और परमात्मा के अखंड मिलन—रास—का आनन्द लेना चाहते हैं, उनका माया से मुक्त होना आवश्यक है। मायिक तल से मायातीत परमात्मा का दर्शन वैसे ही संभव नहीं है, जैसे हरे चश्मे से सफेद रंग का दर्शन या मूर्च्छित अवस्था में बाह्य जगत् का दर्शन।

देखीं तां छल छेतरे, हाए हाए ऐसी नार सुजान।
कोई न परखे छल को, जिन छल में है आप।
न्यारा खसम जो छलथें, सो क्यों पाइए साख्यात॥
३२,३३ प्र० २, कलस हि०

—माया के छल का विस्तार देखो। यह नारी बड़ी चतुर है। व्यक्ति जिस छल में स्वयं पड़ा हुआ है, उसे कोई नहीं देखता है; तो परमात्मा जो सभी छल के, माया के, अतीत हैं, उनका साक्षात्कार वह भला कैसे कर सकता है? पिंड और ब्रह्मांड के आधार और व्यवहार से ध्यान हटाए विना अखंड सुख असंभव है।

माया का स्वरूप—

परमात्मा स्वरूपतः सत्, चित् आनन्द है। यह वास्तव में अलग-अलग तत्त्व नहीं, बल्कि त्रिपार्श्व की भांति एक ही स्वरूप शक्ति के तीन पहलू हैं। सत् को संधिनी शक्ति 'चित्' को संवित् शक्ति और आनन्द को आह्लादिनी शक्ति भी कहा जाता है।[1]

सच्चिदानंद परमात्मा के त्रिविध स्वरूप की शक्ति को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—अंतरंगा शक्ति, बहिरंगा शक्ति, तटस्थाशक्ति। आह्लादिनी, संधिनी और संवित् शक्तियां परमात्मा की स्वरूपगत शक्तियां हैं, इसलिए इन्हें स्वरूप शक्ति या अंतरंगा शक्ति कहते हैं। इसी को प्रकट करके

1. विष्णु पुराण में परमात्मा की स्तुति में कहा गया है कि—"हे परमात्मा, तुममें आह्लादिनी, संधिनी और संवित सभी शक्तियां स्थित है। ये शक्तियां जीव में नहीं हैं। सुख-दु:ख और उदासीनता जो सात्त्विक, तामसिक और राजसिक वृत्तियां हैं, वे तुममें नहीं हैं। ये सभी जीव में हैं। तुम त्रिगुणातीत हो।'

ह्लादिनी संधिनी सम्वितत्वय्ये का सर्व्व संस्थितत्रे।
ह्लाद ताप करी मिश्रा त्वयि नो गुण वर्ज्जिते॥ (1/12/67)

अक्षरातीत परमात्मा श्यामाजी और ब्रह्मांगनाओं के संग नित्य लीला-विलास करते हैं। यह परमधाम की अंतरंग लीला है।

बहिरंगा शक्ति परमात्मा की बाह्य शक्ति है। माया शक्ति को परमात्मा की बहिरंगा शक्ति कहा जाता है क्योंकि इसका परमधाम में प्रवेश नहीं है। माया शक्ति का कार्य-क्षेत्र प्रतीतिमान जगत् या प्राकृत ब्रह्मांड है। अक्षर ब्रह्म माया शक्ति से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं।

तटस्था शक्ति (चेतन स्वरूप) अंतरंगा चित्त शक्ति और बहिरंगा शक्ति दोनों पृथक् एवं भिन्न हैं। यह दोनों शक्तियां चिद्घन शक्ति पर अपने प्रकटीकरण और लीला के लिए आश्रित हैं। जब आत्मा अपने चेतन स्वरूप को भूलकर परमात्मा से विमुख होकर जगत् की ओर आकृष्ट होती है, तो बहिरंगा माया शक्ति उसे अंगीकृत कर लेती है और वह माया के जाल में उलझ जाती है। दूसरी ओर, यदि जीव अज्ञान से मुक्त हो परमात्मा की ओर उन्मुख होता है, तो अन्तरंगा चित्त शक्ति उसे उठा लेती है और परम ज्ञान, अमरत्व और अनन्त आनन्द प्रदान करती है।

माया को उसके गुणों के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है—प्रकृत माया या गुण माया, काल माया और योग माया।

प्रकृत माया अक्षर ब्रह्म की इच्छा-शक्ति है। श्री भगवान अपनी इच्छा या कल्पना शक्ति से सृष्टि कर सकते हैं। यह इच्छा-शक्ति ही जगत् का महाकारण है, इसलिए इसे 'मूला प्रकृति' भी कहते हैं। जब न जगत् था न ईश्वर, उस समय अक्षरातीत परमात्मा और उनकी इच्छा शक्ति स्वरूपा मूला प्रकृति थी।[1] उस समय अक्षरातीत के इशारे पर पल में सारी सृष्टि उत्पन्न हो जाती थी और करोड़ों ब्रह्मांड उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते थे।[1]

सारा संसार स्वप्नवत् है, सब काल माया का विस्तार हैं। जगत् के प्रपंच की सृष्टि काल माया शक्ति से होती है। इन्द्रिय, मन, और बुद्धि से जो दृष्टिगत होता है, वह काल माया का ही विस्तार है।

---

1. ना ईश्वर ना मूल प्रकृति, ता दिन की कहूं आपबीती।
निजलीला ब्रह्म बाल चरित्र, जाकी इच्छा मूल प्रकृत ॥
नैन की पाओ पल में इसारत, कै कोट ब्रह्माण्ड उपजत खपत ॥ 18-10/प्र०37, प्र०हि०

महामति जी ने कहा है—

बुध तुरिया द्रष्ट श्रवना, जेती गम वचन।
उतपन सब होसी फना, जो लों पोहोंचे मन ॥[1]
१६/प्र० २८, किरंतन

दृष्टि, श्रवण. बुद्धि और चित्त या जहां तक मन की गति है या जो वाणी के अन्तर्गत आते हैं, सब नश्वर हैं, सब क्षणभंगुर हैं। सभी उत्पन्न और विनष्ट होने वाले हैं। कोई भी शाश्वत और चिरंतन नहीं है, अतएव सभी माया के अन्तर्गत आते हैं।

श्रीकृष्ण की व्रजलीला भी कालमाया के ब्रह्मांड में ही हुई थी। यह क्षर लीला है, काल माया के क्षेत्र में आत्म चेतना नहीं रहती। इसी कारण गोपियां भी बिल्कुल आत्म-विस्मृत हो गई थीं। माया सम्मोहनकारी शक्ति की भांति हैं, जिसमें स्वरूप-बोध लुप्त हो जाता हैं, यह व्यक्ति को बिल्कुल वेसुध कर देती है।

माया के दो कार्य हैं—आवरण और विक्षेप। आवरण शक्ति से यह सत्य के स्वरूप को ढंक लेती है और विक्षेपा शक्ति से उसके स्थान पर दूसरी वस्तु का प्रपंच दिखाने लगती है। इस कारण महामति ने माया को छलनी (छेतरी) भी कहा है—

एहेवो छल करी छेतरी, मन मूल मांहे थी फेरी।
एणे तो आप सरीखो करी चित चितवणी बहुविध करी ॥
३२, प्र० १, श्रीरास

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि उनकी माया अत्यन्त दुर्दांत है। उसका पार पाना अत्यन्त कठिन है। केवल मेरी कृपा से ही इसका कोई पार पा सकता है—

दैवी ह्येषा गुणमयी माया, मममाया दुरत्यया।
मामेव प्रपद्यटे मायामेतां तरन्ति वे ॥

महामति भी मानते हैं कि माया चूंकि परमात्मा से उत्पन्न है, परमात्मा की शक्ति है इसलिए वह अत्यन्त जोरावर है। यह महाठगनी है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि यहाँ तक कि शिव, ब्रह्मा आदि भी उससे आक्रांत हो जाते हैं और

---

1. इंद्रिय, मन और बुद्धि के क्षेत्र में जो कुछ भी है वह माया ही है। तुलसीदास जी ने माना है—

गो गोचर जहं लगी जाई। सो सब माया जानहूं भाई ॥

उसका पार नहीं पा सकते । शुकदेव और सनकादिक ऋषियों की भी यह पकड़ में नहीं आई । लक्ष्मी-नारायण को भी इसने हरा दिया । विष्णु के बैकुंठ को भी इसने अपनी लपेट में ले लिया । सागर से पर्वत पर्यंत कुछ भीं इसकी लपेट से नहीं बच पाया ।[1]

कालमाया नश्वर ब्रह्मांडों की रचना करती है—इसके बन्धन से सभी बंधे हैं । मात्र सद्गुरु कृपा और प्रभु की अनुकम्पा से ही कोई माया से मुक्त हो सकता है ।

—'एहना बंध पड्या सहू कायाएं, अमे छूटा धणीनी दयाए ।'

३७, प्र० १, श्रीरास

योगमाया अक्षर ब्रह्म की शक्ति है । योग का अर्थ है—ऐश्वर्य । अतएव योगमाया अक्षर ब्रह्म का ऐश्वर्य है । योगमाया को यद्यपि 'माया' कहा गया है, लेकिन वास्तव में यह परमात्मा की वह शक्ति है—जो संसार में उनका ऐश्वर्य प्रकट करती है । योगमाया चेतन ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करती है ।[2]

योगमाया परमात्मा की ऐसी शक्ति है, जिसको वश में करके वे अनुभवगम्य अस्तित्व धारण करते हैं । गीता में कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्या भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।। (४/६)

योगमाया से संकेत परमात्मा की स्वतन्त्र इच्छा, उसकी स्वेच्छा, उसकी अगम्य शक्ति की ओर है । योगमाया में विशिष्ट सृष्टि की क्षमता है ।[3] रासमंडल की रचना अक्षरातीत परमात्मा ने योगमाया शक्ति से ही की थी ।[4] यह रासमंडल कालमाया के ब्रह्मांड और जागनी लीला के ब्रह्मांड से अलग एक तीसरा ही ब्रह्मांड था, जो योगमाया रचित था ।

इन दोऊ थें न्यारा मंडल, जाको कहियत है रास ।
वहां खेल स्याम सखियन का, ए लीला अविनास ।।

---

1. ए माया छे अति वलवन्ती उपनी छे मूल धणी थकी ।
मुनिजनने मनाव्या हार, सिव ब्रह्मादिक न लहे पार ।।
सुक सनकादिक ने नव टली, लक्ष्मी नारायण ने फरीवली ।
विस्नु वैकुंठ लीधां मांहें, सागर सिखर न मूक्यां क्यांहें ।। 4-5/प्र०1/श्रीरास

2. जोगमाया तो माया कही, पर नेक न पाया इत ।
खवाबी दम सत होवही सो अक्षर की बरकत ।। 12/प्र० 34/कलस हिन्दु०

3. वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमाया मुपाश्रित: । श्रीमद्भागवत् 10/27/1

4. जोगमाया सामी आवी जुगत सूं, सिनगार कीधों एणे ठाम ।। 29, प्र०/5/श्री रास

या ठौर योगमाया रच्यो, सब सामग्री समेत ।
तहां हद सब्द न पोहोंचहीं, तुमे तो भी कहूं संकेत ।।

२-३, प्र० २० कलस हि०

योगमाया द्वारा परमात्मा ने चिन्मय वृन्दावन का निर्माण किया । व्रज-वनिताओं को अभिनव चिन्मय रूप प्रदान किया और योगमाया ने उनका श्रृंगार किया । इस योगमाया की सृष्टि में कहीं भी जड़ता नहीं है, सब कुछ चेतन है । अतएव रासमंडल के वृन्दावन में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी चेतन थे, सभी तेजस्वी थे । गोपियों ने चिन्मय शरीर से रासलीला में परमात्मा के साथ विहार किया—

जोगमायाएं जागृत होए, जल जिमी वाए अगिन ।
थिर चर सब पसु पंखी, तत्व सबे चेतन ।।
सुतेज ससी वन पसु पक्षी, तत्व सबे सुतेज ।
सुतेज थिर चर जो कछु, सुतेज रेजा रजे ।।

१७, २६, प्र० २० कलस हि०

रासलीला की विभिन्न दार्शनिक व्याख्याएं हुई हैं । किसी ने इसे भगवान का दिव्य-विहार, किसी ने आध्यात्मिक लीला-विधान और किसी ने इसे काम-विजय एवं काम का उन्नयन माना है । इन व्याख्याओं में मुख्यत: दो प्रकार की व्याख्याएं हैं—तंत्रमार्गी और प्रेम मार्गी । तंत्रमार्गी श्रीकृष्ण को पुरुष और राधा को प्रकृति मानते हैं । कुछ वैष्णव ग्रंथों में भी ऐसा उल्लेख है । ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में कहा गया है —

गोविंद एवं पुरुषो ब्रह्माद्याः स्त्रिय एव च ।
पुरुषः प्रकृतिश्चाद्यो राधा वृन्दावनेश्वरौ ।। ४७-४८ ।।

इसमें राधा को मूल प्रकृति एवं प्रधान कृष्ण-वल्लभा कहा गया है तथा ललिता आदि सखियों को प्रकृति का अंश बताया गया है ।

प्रत्यंग रभसा वेशाः प्रधानाः कृष्ण वल्लभाः ।
ललिताद्या प्रकृत्यंशा मूल प्रकृतिः राधिका ।।

सांख्य दर्शन को ध्यान में रखकर राधा-कृष्ण की रासलीला की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि श्री कृष्ण पुरुष हैं जो कूटस्थ द्रष्टा स्वरूप हैं और

राधा एवं अन्य गोपियां प्रकृति हैं। पुरुष की दृष्टि पड़ते ही उसकी साम्यावस्था भंग हो जाती है। 'दर्शनार्थम्' उसका अभीष्ट है, अतएव श्रीकृष्ण को केन्द्र बनाकर वह चक्रिक गति से नृत्य करके एवं अपने आपको अनावृत्त करने लगती है, जिसे रास की संज्ञा दी गई है। पुरुष का लक्ष्य 'कैवल्यार्थ' है, जो तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक प्रकृति का भोग करके उस भोग की निस्सारता और प्रकृति से अपने विलगाव का उसे बोध न हो जाए। तंत्रमत ने इसी धारणा को विकसित किया। 'वृहद् गौतमीय तंत्र' में कृष्ण को पुरुष एवं राधा को प्रकृति और कृष्ण को काम बीज और राधा को रति बीज कहा गया है—'काम बीजात्मको कृष्णः रति बीजात्मिका राधा।' उनके परस्पर चुम्बन एवं तद्जनित माधुर्य के प्रसारण को विन्दु-नाद कला की संज्ञा दी गई है—

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानंद विग्रहः।
ईकारः प्रकृति राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी॥
लश्चानंदात्मकः प्रेम सुखं तयोश्चकीर्त्तितम्।
चुंबना श्लेषमाधुर्यं विन्दुनाथ मुदीरितम्॥

तंत्र मत के अनुसार प्रत्येक पुरुष कृष्ण है और प्रत्येक स्त्री राधा। इसमें वामाचार के माध्यम से काम का उन्नयन कर काम को 'रास', जीव को 'शिव' और 'पशु' को 'प्रभु' बनाने पर जोर दिया गया है। परंतु वामाचार अन्ततः भ्रष्टाचार और पापाचार में परिणत हो गया। काम के परे जाने के लक्ष्य को भूलकर तांत्रिक साधक माया के छलावे में पड़कर पथभ्रष्ट हो गए। तंत्र का मार्ग दुष्कर है, क्योंकि वह कांटों पर चलने जैसा है। वह काजल की कोठरी है, जिसमें से दामन बचाकर निकलना दुष्कर है।

काजल की कोठरी में कैसो ही सयानौ जात,
एक दाग काजल की लागि हैं, के लागिहैं॥

अतएव वैष्णव साधना में वामाचार एवं कर्मकांड के स्थान पर प्रेम पर जोर दिया गया। प्रेम के चरमोत्कर्ष या बिंदु पर काम का अतिक्रमण स्वयमेव हो जाता है और देह के तल से ऊपर उठकर व्यक्ति अध्यात्म के धरातल पर पहुँच जाता है। डा० हजारी प्रसाद दिवेदी के अनुसार "वैष्णवों ने राधा और कृष्ण के रूप में शक्ति उपासना को ग्रहण कर एक शुद्ध मर्यादा के भीतर कर दिया। तंत्र-साधना में स्त्री अनुष्ठान का एक साधन भर थी, वैष्णव मत में वह परम पुरुष को पूर्ण करने वाली समझी जाने लगी। तंत्र की परकीया एक यांत्रिक साधना थी, किंतु वैष्णव परकीया प्रेम का साधन थी। राधा के बिना

कृष्ण अपूर्ण थे। यह एक ऐसी बात हैं जो तंत्रवाद से वैष्णव भाव को पृथक् कर देती है।[1] तंत्र मत में जहां काम पर ध्यान केन्द्रित किया गया था, वहां वैष्णव धर्म में प्रेम पर ध्यान केन्द्रित किया गया। काम हमारा निम्नतम तल है, जबकि प्रेम उच्चतम शिखर। अतएव तंत्र मत निम्न तल से प्रारंभ कर ऊपर उठने का प्रयत्न करता है, जबकि मधुरोपासना में शिखर को ही ध्यान में रखकर विहंगमा गति से मिलन का प्रयास किया जाता है।

महामति प्राणनाथ ने रासलीला की प्रेममार्गी, रहस्यवादी और आध्यात्मिक व्याख्या की है। उनके अनुसार श्यामा जी अक्षरातीत परमात्मा श्रीकृष्ण का आनंद अंग हैं और गोपियां उनकी कलाएं हैं। श्रीकृष्ण और राधा का सवंध चाँद और चाँदनी का है। गोपियां किरणों की भांति हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा की ज्योत्स्ना चन्द्रमा से भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार श्यामा जी और ब्रह्मांगनाएं परमात्मा से अभिन्न हैं। अक्षरातीत परमात्मा पुरुष प्रकृति के भी अतीत है। नित्य वृदावन में रस रूप श्रीकृष्ण का नित्य विहार आनंद अंग श्यामा जी और सखियों के संग सदैव होता रहता है। यह अक्षरातीत की वास्तवी रास लीला है। उसका प्रतिभास अक्षर ब्रह्म के मन में पाया जाता है, जो प्रतिभासिकी लीला है और उसी का व्यावहारिक रूप ब्रजमंडल में उतरा। भक्तों का रसवर्धन करके, उनमें परम धाम की सुधि जगाने के लिए उसका आयोजन व्यावहारिक तल पर भी किया गया। परतु उस समय भी ध्यान देने की बात यह है कि वह रास मृण्मय की काम-क्रीड़ा नहीं, चिन्मय का लीला-विलास है। महामति यह समझाने का प्रयास करते हैं कि रासलीला को साधारण देह के तल पर होने वाली लीला न समझ ली जाए। इसलिए वे बार-बार इस बात की स्मृति दिलाते हैं कि रास लीला काल-माया के ब्रह्मांड की लीला नहीं, बल्कि यह योगमाया रचित एक अलग ही ब्रह्मांड की लीला है। जिसमें सब कुछ चिन्मय है।[2]

यह लीला देह के तल पर नहीं, बल्कि चेतना के तल पर होने वाली है। यह आत्मा और परमात्मा का मिलन है। आत्मा अपनी भूल (अज्ञान) के कारण परमात्मा से विलग हो गई। परमात्मा सदैव उनके प्रत्यावर्तन की चेष्टा करते हैं। श्रीकृष्ण की बांसुरी सदैव उनका आह्वान करती रहती हैं। जो आत्माएं उसका स्वर सुनने में सक्षम हैं, वे तत्काल माया के बंधन तोड़ कर उस तक

---

1. हिन्दी साहित्य, पृ० 96
2. जोगमायाए उपाईया, कोई सुख सरूपी ब्रह्माण्ड ॥ 4, प्र० 20/कलस हिन्दु०

पहुंच जाती हैं और उसके संग रास का आनंद लेती हैं। आत्मा रूपी गोपी का अक्षरातीत परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलन ही आत्मा-परमात्मा का मिलन है। उस मिलन का रास-रंग ही नित्य लीला में रमण करना है, जो सभी जीवों का परम काम्य है।[1] —

रास अखंड सदा वृन्दावन, होत न भंग अभंग सुखकारी।
जो सुख विधि हरिहर नहिं जाने, सो मुकुन्द विलसे ब्रजनारी॥

केवल गोपी भाव में प्रतिष्ठित होने से ही उस नित्य रास-रस का आस्वादन हो सकता है। इस प्रकार महामति ने गोपी, सखी भाव से परमात्मा की आराधना पर बल दिया हैं—'सखी भाव भजिए भरतार।'

गोपी प्रेम अनन्य प्रेम है। गोपी भाव या सखी भाव का साधक सारे सांसारिक कार्यों को करते रहते हुए भी श्रीकृष्ण में दत्त-चित्त होता है, जैसे किसी प्रेमिका का ध्यान सदा अपने प्रेमी में ही लगा रहता है।[2]

आत्मा-परमात्मा का संबंध मौलिक Archetypal (आर्किटाइपल) है। महामति ने इसे, 'मूल सगाई' की संज्ञा दी। राधा-कृष्ण का प्रेम उस मौलिक भावना की ही आद्य प्रतिमा Archetypal feeling's Bimordial Image है जिसने मिथक (myth) का रूप धारण कर लिया है। यही कारण है कि हर भक्त प्रेम की गहनतम अनुभूति को राधा-कृष्ण के प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मिथक सार्वभौम भाषा (Universal Knowledge) है जो सामूहिक अचेतन को अभिव्यक्त करता है, उसे मुखरित करता है। इसी कारण सृष्टि, प्रलय, प्रगय आदि से संबंधित मिथक एवं मूल-भावना समान रूप से विभिन्न संस्कृतियों में पायी जाती है, जो भौगोलिक या ऐतिहासिक दृष्टि से एक-दूसरे से असम्बद्ध रहे हैं। मिथक चूंकि सामूहिक अचेतन से जुड़े रहते हैं, इसलिए उनका प्रभाव शाश्वत, सामूहिक और गहन होता है। जागतिक तथ्य

---

1. सखी, पता नहीं, गोपियों ने कौन-सी तपस्या की थी, जो नेत्रों से नित्य निरन्तर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है। लावण्य का भार। वह किसी साज सज्जा से नहीं, स्वयं सिद्ध हैं। इस रूप को देखने से कभी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जा रहा है। नित्य नूतन है। समग्र यश-सौन्दर्य और ऐश्वर्य इन्हीं के आधीन है परन्तु उनका दर्शन औरों के लिए दुर्लभ है यह गोपियों के भाग्य में ही बदा है। (श्रीमद् भागवत 10/44/14)
2. कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहं कृपानिधाना॥
चैतन्य महाप्रभु ने भी इस कारण निष्कर्ष निकाला कि —
अतएव गोपीभाव करि अंगीकार। रात्रि दिने चिन्ते कृष्णेर विहार॥ (चैतन्य चरितामृत)

और घटनाक्रम मनुष्य के आवेग, भावना और अनुभूति पर उतना प्रभाव नहीं डालते जितना कि मिथक और प्रतीक। आदिम भावनाएं जातीय अचेतन में अवस्थित रहती हैं और वही प्रतीकों और मिथकों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती हैं। यही कारण है कि मिथक व्यक्ति की आत्मा को अंतरतम से झकझोर देते हैं और जीवन पर उनका गहरा प्रभाव होता है। मिथक या प्रतीक की भाषा से व्यक्ति आध्यात्मिक सत्ता की अनुभूति में भागीदार होता है। भक्ति एवं दिव्य भाव की अनुभूति कराने में मिथक का बड़ा हाथ होता है।

आत्मा-परमात्मा के मिलनजन्य रास के अनुभव का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। यह अनुभूति अवर्णनीय है। हम ऊंची-से-ऊंची अवधारणा से भी यद्यपि उसका वर्णन करना चाहते हैं, फिर भी उसका वर्णन नहीं हो पाता, क्योंकि परमात्मा मायिक जगत से पूर्णतः भिन्न (wholly other) है। अतएव उसे मायिक जगत् की अवधारणाओं में बांधना सभव नहीं है।[1] वह वाणी का विषय ही नहीं है।

अखंड सरूपनी अस्थिर आकारे, शोभा करूं घणवे करीने स्नेह।
जोई जोई वचन आणूं के ऊंचा, पण न आवे वाणी मांहे तेह॥

१/प्र०६/श्रीरास

चूंकि परमात्मा वर्णनातीत हैं, इसलिए उपयुक्त तार्किक अभिव्यक्ति यही होती है कि व्यक्ति मौन रह जाए। परन्तु ऐसा करना भी संभव नहीं है, क्योंकि तब इस अनुभूति के होने और नहीं होने में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा; परमात्मा का संदेश प्यासी आत्माओं को नहीं दिया जा सकेगा। साथ ही, यह अनुभूति इतनी तीव्र और प्रभविष्णु है कि व्यक्ति इसे कहे बिना भी नहीं रह सकता। जब व्यक्ति के हृदय में प्रेम का कमल खिलता है, तो उसकी सुगंध औरों को भी देने के लिए वह व्याकुल हो उठता है इसलिए वह जागतिक उपमाओं से ही परमात्मा तथा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को स्वर देने की चेष्टा करने लगता है। लेकिन वैसे वर्णन में सदैव भ्रम और व्यामोह का भय रहता है, इसलिए वक्ता अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध और संकुचित भी होता है—

वरनन करना अर्स का, पर दृष्ट मसाला इत का।

चुप किए भी न बने, कह कह रुह पछतात॥

जो कुछ कहूं सो उरे रहे, ताथे दुख लागत है मोहे।

---

1. हेम जवेर के बन कहूं, वो ए सब झूठी वस्त।
शोभा जो अविनास की, कही न जाए मुख हस्त॥ 19, प्र० 20 कलस हिन्दु०

महामति प्राणनाथ को सर्वसाधारण के साथ संवाद के लिए परिचित शब्दों में ही अपरिचित का संदेश देना पड़ा, जो उन्होंने ससंकोच दिया।

चुप से तो कछु कह्या भला, रुह कछु पावे लज्जत ।।

परन्तु इस प्रकार के वर्णन का परिणाम प्रायः उल्टा होता है। वक्ता का अभिप्रेत अर्थ छूट जाता है और श्रोता प्रायः उसका स्थूल और अभिधागत अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। इस कारण धर्म के क्षेत्र में प्रायः भ्रान्त धारणाओं एवं रूढ़ियों का जन्म होता है। रास लीला के प्रसंग के साथ भी यही कठिनाई हुई है। रास, जो आत्मा और परमात्मा के मिलन का मिथक है, उसे सामान्य भाषा में वर्णित करने के कारण साधारण व्यक्ति प्रायः उसे मानवी-क्रीड़ा समझ कर कामुकता और अश्लीलता का आक्षेप लगाते हैं। गोपी और श्रीकृष्ण के मिलन को समझाने के लिए श्री रास में रागात्मक पदों (Erotic terms) का व्यवहार किया गया है और आलिंगन, चुंबन आदि शब्दों के कारण इससे साधारण काम का भ्रम उत्पन्न होता है। साधारण जन की बात कौन कहे ? राजा परीक्षित के समान मुमूर्षु श्रोता के मन में भी रास लीला का वर्णन सुनकर यही शंका उपजी कि धर्म की स्थापना के निमित्त अवतरित भगवान ने पर-स्त्रियों का स्पर्श कैसे किया ? जबतक मनुष्य में काम भावना रहती है तब तक ऐसा ही भ्रम बना रहता है। अज्ञानी जनों ने और ऐसे ही भ्रांत और भ्रमित लोगों ने शब्दों की आड़ लेकर रासलीला के प्रसंग से अनुचित व्यवहार को बढ़ावा भी दिया है।

महामति ने 'श्री रास' ग्रंथ के द्वारा इस भ्रम का निराकरण किया है। मोहजल के प्रथम प्रकरण में ही माया और मोह की नींद से जाग कर पिंड और ब्रह्मांड के व्यवहारों से ऊपर उठकर रास का सुख लेने का आग्रह किया है। वास्तव में रास लीला के प्रसंग का प्रयोजन 'ऐषणाओं' और 'काम भावना' को ऊर्ध्वीकरण 'चैनेलाइज' करके उनका उपयोग परमात्मा को पाने के लिए करना है। जगत् के संबंधों से रासलीला की तुलना उसे समझने में मानव की अक्षमता सिद्ध करती है।

पहली बात यह स्मरणीय है कि यह लीला लौकिक या जागतिक नहीं है। यह मृण्मय की लीला नहीं, बल्कि चिन्मय की लीला है। रास मंडल में जो कुछ है, सब कुछ चिन्मय है। यहां तक कि पेड़, पौधे, नदी, पर्वत, पशु, पक्षी सभी चिन्मय हैं, क्योंकि यह वृन्दावन साधारण वृन्दावन नहीं, नित्य वृन्दावन है जिसके

सारे उपादान चिन्मय हैं। इस अविनाशी वृन्दावन का रंग चिरन्तन है। यह वन अविनाशी है।

> जोगमायाएं जाग्रत थाए, जल मोम वाए अग्नि जी।
> पसु पंखी थावर जंगम, तत्व पांचे चेतन जी॥
>
> १३, प्र० ६ क० गु०

> एह सरूप ने एह व्रन्दावन, एह जमुना त्रट सारजी।
> धरथी तीत ब्रह्मांड थी अलगो, ते तारतमे कीधों निरधार जी॥
>
> ३६, प्र० १० श्रीरास

रासलीला के चिन्मय स्वरूप के निदर्शन के लिए महामति ने बार-बार इस बात पर जोर देकर कहा है कि रासलीला लौकिक नहीं, अलौकिक है।

मूलतः वह चेतना के धरातल पर होनेवाली लीला ही है। चूंकि यह लीला चिन्मय है, इसलिए इसमें मृण्मय का कोई गुण आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। राग और कामविकारादि मृण्मय के गुणधर्म हैं, उनका चिन्मय लोक में कोई प्रवेश ही नहीं है। इसलिए रासलीला को कामलीला समझना भयकर भूल है। यह वस्तुतः आत्मा के परमात्मा से मिलन का रूपक है। मृण्मय को चिन्मय बनने का सोपान है। आत्मा का रस-रूप परमात्मा के संग मिलन का जो आनन्द है, उसे 'रास' की संज्ञा दी जाती है। यह आनन्द विशुद्ध एवं दिव्य आनन्द है, जो विषय या देह सापेक्ष नहीं है। अतएव ब्रह्मानन्द का पर्याय मानना भूल है। वह निजानन्द या स्वरूप चैतन्य में प्रतिष्ठित होने पर परमात्मा के सान्निध्य एवं मिलन का आनन्द है। अतएव, रासलीला आध्यात्मिक भाव-भूमि पर होने वाली दिव्य लीला है, जो जागतिक नहीं, पारलौकिक है। इसके पारलौकिक स्वरूप का निदर्शन कराने के लिए महामति ने बार-बार कहा है कि यह बेहद भूमिका की लीला है, हद की नहीं। हद के जीव बेहद भूमिका की बात न तो जान सकते हैं और न समझ ही सकते हैं अतएव, बेहद भूमि की लीला के सम्बन्ध में उनमें भ्रम एवं व्यामोह का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।

रास-रमण का आनन्द वाणी से वर्णित नहीं हो सकता है। इसे तो वही जानता है, जिसने इसका भोग किया हो। यह सुख तो हृदय में संजोकर रख लेने जैसा है। महामति ने कहा है कि मैं वाणी से कैसे उस आनन्द का वर्णन करूं, क्योंकि बालाजी ने जो विविध आनन्द दिया, वह वर्णनातीत है। यही कारण था कि शुकदेव मुनि ने जब परीक्षित को इस लीला का अनुभव कराने का प्रयास किया तो वे असफल रहे। माथा ठोक कर रह गए।

तब हाथ निलाटें दिया सही, सुकें दुख पाये के सही ।
मैं जोगी तें राजा भयो, रास का सुख न जाय कह्यो ।।

याके पात्र होसी इन जोग, या लीला को सो लेसी भोग ।
केसरी दूध न रहे रज मात्र, उत्तम कनक बिना जो पात्र ।।
१३, १५/प्र० ३३ प्रकाश हिन्दु०

द्वार खोलने दौड़िया सुकजी सपराना ।
ले चल्या संग परीक्षत, सो तो बोझें दबाना ।।

रासलीला सुख अखंड, इत तो न केहेलाना ।
पाछल तान हुई घनी, अध बीच लेवाना ।।
८४, ८६/प्र० ३१ प्रकाश हिन्दु०

नरसी मेहता एवं शुकदेव जैसे श्री कृष्ण के प्रिय साधक उस अनुभव को शब्द नहीं दे पाए । जो कुछ कहा भी गया—उसका साधारण जन पर विपरीत ही प्रभाव हुआ ।

चूंकि 'श्रीरास' के रागात्मक पदों में दाम्पत्य प्रतीकों की सहायता ली गई है, दिव्यता का कोई अनुभव नहीं होने के कारण हम अपनी भावना और क्षमता के अनुरूप रास प्रसंग का भी अभिघार्थ ले लेते है । अतएव जब कभी प्रेम शब्द का प्रयोग होता है या प्रणय लीला द्वारा आत्मा-परमात्मा के मिलन रस को समझाने की चेष्टा की जाती है, तो हम अपनी भावना के अनुरूप ही उसका जागतिक एवं स्थूल अर्थ ले लेते हैं, और इसकी तुलना कामुक भावनाओं से करते हैं । उसकी दिव्यता को भूल जाते हैं—और इस प्रकार अभिप्रेत अर्थ को विकृत कर व्यामोह के शिकार हो जाते हैं ।

दूसरी स्मरणीय बात यह है कि इस लीला के भागीदार श्रीकृष्ण एव गोपियां हैं । श्रीकृष्ण साधारण हाड़-मांस के पुतले नहीं, बल्कि स्वयं अक्षरातीत परमात्मा हैं, जिनके सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत ने कहा है कि 'कृष्णस्तु भगवान स्वयं' । अतः श्रीकृष्ण में राग या काम की कल्पना हो ही नहीं सकती । परमात्मा की कौन कहे ! साधारण मनुष्य भी जब जीवन्मुक्ति को उपलब्ध होते हैं तो देहात्मभाव के परे जाकर आत्म-चेतना में प्रतिष्ठित हो जाते है, वे सभी

वासनाओं से मुक्त हो, वीतरागी हो जाते हैं ।[1]

कृष्ण की भांति उनकी लीला-सहचरी गोपियां भी साधारण नारियाँ नहीं, वे अक्षरातीत परमात्मा की अंगनाएं हैं । राधा जी तो श्रीकृष्ण की आनन्दअंग श्यामाजी हैं और अन्य गोपियाँ उनकी कलाए हैं । अतएव उनके लिए भी स्थूल शरीर और अंग-संग की कल्पना नहीं की जा सकती । जिन दिव्य स्वरूपा गोपियों को ब्रह्मा, शंकर, उद्धव, अर्जुन आदि ने जाना है—उनके प्रेम को पहचाना है । वे तो उनके पदरज के लिए तरसते हैं । उन्हें पाने में अपना अहोभाग्य मानते हैं

इन ब्रज रेंन को ब्रह्मा बोहोत तलफया, पर पाई नहीं रे निरवान ।।

१७, प्र० १४, किरंतन

गोपी प्रेम—प्रेम का प्रतिमान है, प्रेम का विशुद्ध एवं आदर्श रूप । नारद ने प्रेम कैसा हो? इसकी व्याख्या करते हुए कहा हैं—'यथा व्रज गोपीनाम्' अर्थात् जैसा व्रज की गोपियों का है, [2] क्योंकि वही प्रेम का परमोत्कर्ष है ।

प्रेम तीन प्रकार का है—कामुक प्रेम, रागात्मक प्रेम और दिव्य प्रेम । कामुक प्रेम मात्र देह की कामना और देह के तल पर मिलन है । यह मूल प्रकृति जन्य है । काम में प्रेम का आभास मात्र है, वास्तविक प्रेम नहीं, क्योंकि इसमें जड़ता है । यह स्थूल प्रेम है । रागात्मक प्रेम मानसिक धरातल का प्रेम है, जिसमें मात्र देह का आकर्षण नहीं, बल्कि मन का मिलन भी अभीष्ट है । यह प्रेम भी रागात्मक है, क्योंकि इसमें स्वार्थ निहित है। यह 'अहं' की प्रतिरक्षा का उपाय और रुचि-पूर्त्ति का साधन है । यही कारण है कि अहं के संतुष्ट नहीं होने से, राग—तुरन्त विराग में बदल जाता है और प्रेम घृणा एवं क्रोध का रूप ले लेता है । ऐसा प्रेम कामुक प्रेम से सूक्ष्म होते हुए भी विशुद्ध नहीं, क्योंकि इसमें सदैव मानसिक संतुष्टि की चाह रह ही जाती है । यह

---

1. ऐसे स्थित-प्रज्ञ के लक्षण के सम्बन्ध में गीता में कहा है—
   दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह: ।
   वीतराग भय क्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।। 56 ।।
   आपूर्य माणं अचल प्रतिष्ठं, समुद्रमाप: प्रविशन्ति यद्वत ।
   तद्वत्कामा: यं प्रविशन्ति सर्वे, स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।। 70, अध्याय 2

अष्टावक्र ने भी कहा है कि मुक्त पुरुष प्रणय-काञ्छिणी रमणी और आसन्न मृत्यु को देखकर भी विचलित नहीं होते— (अष्टावक्र संहिता)

2. नारद भक्ति सूत्र—29

स्वार्थ मूलक है। जैसे-जैसे हम लौकिक-भाव से ऊपर उठकर अलौकिक और दिव्य भूमि में प्रवेश करते हैं—काम और प्रेम का अन्तर स्पष्ट होता जाता है। तब पता चलता है कि साधारणत: जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह वास्तव में प्रेम ही नहीं, न ही प्रेम की प्रतिच्छाया या प्रतीति है। मृग जल है। प्रेम का विशुद्ध रूप तो आत्मिक या दिव्य प्रेम ही है। गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम दिव्य प्रेम है, जिसमें कामना की गंध भी नहीं। चैतन्य महाप्रभु ने कहा था—

काम गंधहीन स्वाभाविक गोपी-प्रेम।
निर्मल उज्ज्वल शुद्ध जेन दग्ध हेम॥
(चैतन्य चारितामृत, आदि लीला ४/८८)

गोपी प्रेम निस्वार्थ प्रेम है। इसमें 'स्व' का पूर्ण समर्पण एवं विसर्जन है। इसमें अपने लिए कुछ भी नहीं चाहा जाता, बल्कि अपने प्रियतम को रस देने में रस का अनुभव होता है।

गोपी प्रेम आत्मा का स्वभाव है जो काम-गंध-शून्य है। यह तपाए हुए खरे सोने की भाँति निर्मल-उज्ज्वल और विशुद्ध है। रामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि 'कामगंध शून्य हुए बिना गोपी प्रेम को नहीं समझा जा सकता है'। वल्लभाचार्य ने भी श्रीमद्भागवत की 'सुबोधिनी टीका' में गोपी प्रेम को 'दिव्य काम' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार 'कृष्ण के रास में काम की समस्त चेष्टाएं तो हैं, परन्तु उनमें काम नहीं हैं'।[1] गोपियों के लौकिक काम का शमन और अलौकिक काम की पूर्ति और निराकरण श्रीकृष्ण द्वारा हुई थी। यदि लौकिक काम से काम की पूर्ति होती तो उससे संसार निष्पन्न होता, परन्तु यहां तो गोपी और कृष्ण दोनों में लौकिक काम का सर्वथा अभाव है और साथ ही संसार से निवृत्ति है। इस रासलीला में किसी की मर्यादा भी भंग नहीं हुई। इससे तो गोपियों को स्वरूपानन्द की मुक्ति ही मिली है। इसलिए इस लीला को सुनने से लोक निष्काम ही बनता है, अर्थात् अपने काम की आहुति भगवान में कर देता है। भगवान का चरित्र सर्वथा निष्काम है, इसमें काम का उदय ही नहीं होता।' श्रीमद्भागवत में स्पष्ट कहा गया हैं कि भगवान की लीला में काम का स्थान नहीं है।

जो जिस रूप में परमात्मा का दर्शन करना चाहता है, परमात्मा उसे उसी रूप में दर्शन देता है। गोपियों ने चूंकि श्रीकृष्ण को पति रूप में चाहा था और

1. सत्यकामोऽनुरक्ता बसागण: । सिषेव आत्मन्यवरुद्ध सौरत: सर्वा: शरत्काव्य कथारसाश्रया: ॥
भागवत की सुबोधिनी टीका,—(10/33/26) रास प्रकरण कारिका ।

वे उनसे दाम्पत्य सुख चाहती थीं, इस कारण श्रीकृष्ण ने उन्हें वही सुख प्रदान किया। जब गोपियां श्रीकृष्ण के गले लगती थीं, तो उन्हें वही आनन्द मिलता था, जो प्रेमिका को प्रेमी के आलिंगन में मिलता है। जिन गोपियों ने श्रीकृष्ण से जैसा आनन्द चाहा, प्रभु ने उन्हें वैसा ही आनन्द दिया। नर हो या नारी, श्री कृष्ण प्रिय हुए बिना रास का आनन्द प्राप्त नहीं होता—इसलिए देह के स्तर पर कोई भी व्यवहार या आनंद—रास का आनंद नहीं है। अन्य ऐषणाओं से साधना द्वारा मुक्ति पायी जा सकती है। काम भावना से मुक्ति केवल रास का आनंद प्राप्त करने पर ही संभव है। जब स्वयं श्रीकृष्ण प्रियतम के रूप में अपने प्रेमी के अंग-अंग में समा जाते हैं। जितनी गोपियां थीं, उतने ही रूप में श्याम प्रकट हो गए और जैसा जिन्होंने चाहा, उनका मनोरथ उन्होंने पूरा किया—

त्यारे रूप कीधां रंगे रमवा, संतोषी सरवे नार ॥

१२, प्र० ३६, श्रीरास

रस रूप परमात्मा के अलौकिक एवं नित्य विहार का जो रस है, वही ब्रह्मांड के सभी रसों का सार एवं आधार है और उसी रस की तलाश हम काम, अर्थ एवं मोक्ष में करते रहते हैं। परंतु इनमें केवल उस परम रस का प्रतिभास मात्र है। इसलिए इनसे कभी भी परम तुष्टि नहीं मिलती। जबतक परमात्मा के संग विहार का आनंद न ले लिया जाए, आत्मा की प्यास नहीं बुझती। उस परमानंद की उपलब्धि के बाद ही, कोई पूर्णकाम बनता है। गोपियों ने चूंकि उस रस का आनंद लिया इस लिए वे पूर्णकाम हो सकीं। जिसे पा लेने के बाद, फिर कुछ पा लेने की लालसा नहीं रहती, वह परमात्मा के संग रमण है।

शुकदेव मुनि ने परीक्षित को भी समझाया है—

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
तोऽन्तवरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देध्याक् ॥

१०/३३/३६ श्रीमद्भागवत

अर्थात् गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरणों में जो आतमा रूप में विराजमान हैं—जो सबों के साक्षी और परमपति हैं, वही तो दिव्य चिन्मय रूप में प्रकट होकर लीला कर रहे हैं।

सांसारिक सम्बन्ध तो क्षणिक, आकस्मिक और नाशवान है। गोपियां इस रहस्य को जानती थीं, इस कारण जब श्रीकृष्ण ने उनसे उथले वचन कहे

और अपने सांसारिक सम्बन्धों को छोड़ आने पर उनकी भर्त्सना की, तो उन्होंने यही गूढ़ बात कही—'हमारे वास्तविक पति तो आप ही हैं। हमने अपने पति को पहचान लिया है। इसी कारण आपकी वंशी में अपना आह्वान जान हम एक क्षण भी नहीं रुकीं। हमने लोक और परिवार वालों की ओर देखा तक नहीं। हम अपने सभी प्रतीतिमान सम्बन्धों को ठुकराकर आपके पास आ गई हैं। हम तो एकमात्र आपकी ही हैं—आपको अपना वास्तविक पति मानती हैं, इसलिए हम आपका साथ कैसे छोड़ें? आपने वेद की दुहाई देकर ठीक ही कहा है कि पति यदि अत्यन्त अवगुणी भी हो, तो भी उसे नहीं छोड़ना चाहिए, फिर तो आप सर्वगुणी हैं, आपका परित्याग हम कैसे करें? आप ही इसका न्याय करें—

> अमें पीहर पख नव ओलखूं, नव जाणूं सासर वेड।
> एक जाणूं सारो वालैयो, नव मूकूं तेहेनी केड॥
> पत तो केमे नव मूकवो, तसे अति घणूं कह्यूं रे अपार।
> तमे साख पुरावी वेदनी, त्यारे केम मूकूं आधार॥
>
> ३३/३४, प्र० ८/श्री रास

इससे स्पष्ट है कि जागतिक दृष्टि से भले ही गोपियां परकीया प्रतीत होती हों, परन्तु तत्त्व-दृष्टि से वे श्रीकृष्ण की स्वकीया अंगनाएं हैं, अतएव उनके संग विहार परकीया-विहार या परस्त्रीगमन कैसे माना जा सकता है?

सामाजिक दृष्टि से परकीया प्रेम में प्रेम की तीव्रता अधिक अनुभव की जाती है। इसी कारण परकीया प्रेम का रूपक व्यवहार किया गया है। परकीया प्रेम की चार विशेषतायें हैं—(१) प्रियतम का सतत् ध्यान एवं निरन्तर चिन्तन (२) विघ्न-बाधाओं के बीच भी मिलन की अदम्य उत्कंठा (३) प्रियतम में दोष दर्शन का सर्वथा अभाव (४) निरपेक्षता और निरांकाछा। प्रेमिका स्त्री विभिन्न कार्यों में यद्यपि संलग्न रहती है—फिर भी उसका मन प्रियतम के ध्यान एवं प्रेम में ही सदा डूबा रहता है।

मिलन के मार्ग में अड़चन आने के कारण प्रेम की तीव्रता बढ़ती है एवं वह किसी-न-किसी भांति उससे मिलने के लिए उत्कंठित और प्रयत्नशील रहती है। प्रेम साधना में परकीया भाव को कतिपय साधकों ने इस लिए महत्त्व दिया है कि प्रेमास्पद परमात्मा के प्रति भी वही भाव बना रहे। महामति ने आत्माओं का संसार से प्रेम जार-भाव कहा है और प्रेम की तीव्रता लाने के लिए विरह को अवलम्ब माना है। परम धाम से ब्रह्म-सृष्टि को अलग करने का एक मुख्य

कारण यह था कि विरह के बाद मिलन का सुख उन्हें दिया जा सके—उन्होंने बार-बार कहा है:—

पतिव्रता पणे सेविए, नव थाए वेस्या जेम।
एक मेली ने अनेक कीजे, तेणे थाए धणीवट केम ।।

४४, प्र० १२८, किरंतन

विरह, प्रियतम के लिए तड़पने पर विवश करता है। विरहिनी की तड़प प्रियतम को निकट ले आती है। इसलिए विरह भी प्यारा और भला लगने लगा। विरहिनी विरह को अपना घर बनाकर उसमें आनंदपूर्वक रहने लगती है—

"विरहिन विरह बीच में, कियो सो अपनो घर।
चौदे तबक की साहिबी, सो वारों तेरे विरह पर ।।

५, प्र० ८, सनंध

विरह पतिव्रता स्त्री के मन में प्रेमिका की-सी उद्विग्नता और मिलन की आकांक्षा भर देता है। संसार का मोह फिर उसे विचलित नहीं कर पाता।

साधना पक्ष :—

साधना की दृष्टि से 'श्रीरास' प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादक है। प्रेम-लक्षणा भक्ति का आधार भाव है। भाव के बिना सारा आचरण खोखला, औपचारिक एंव शुष्क कर्म-कांड मात्र हो जाता है। भावाधीन भक्त परमात्मा से भी अनेक प्रकार के संबंध बना लेते हैं। परमात्मा की उपासना भी स्वामी, सखा, पिता, पुत्र, पति आदि रूपों में की जाती है। जो वृत्तियां हमें इन संबंधों एवं विषयों की ओर उन्मुख करती हैं, उनके उन्नयन और संपरिवर्तन की चेष्टा की जाती है। तुलसी की कामना है:—

"कामिहिं नारी पियारी जिमी, लोभी जिमी प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोह राम ।।

सारे सम्वन्धों में प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नि का संबंध सबसे अंतरंग और मधुर संबंध है। मधुर भाव की साधना पर बल देते हुए महामति ने अनन्य प्रेम-लक्षणा भक्ति को सर्वोपरि एंव परम काम्य माना है :—

तब इतही जो वतन पिउ पार, सखी भाव भजिए भरतार।

अन्य साधन इसी प्रेम लक्षणा भक्ति को पाने के साधन हैं। प्रेम साध्य भी है और साधन भी। प्रेम ही परमात्मा है। प्रेम लोक-वेद आदि मर्यादाओं का उल्लंघन करता है। प्रेम की पराकाष्ठा का निदर्शन

गोपी-प्रेम में ही हुआ है। महामति उसे ही आदर्श मानते हैं और प्रियतम को पाने के लिए उसी पथ पर चलने का आग्रह करते हैं :—

"मैं छोड़ै कुटम सगे सब छोड़े, छोड़ी मत स्वांत सरम।
लोक वेद मर्जादा छोड़ी, भाग्या छोड़ सब धरम॥

इंजील और श्री रास—

महामति ने 'श्रीरास' को 'इंजील' की संज्ञा भी दी है, जोकि ईसाई धर्म का आधारभूत पवित्र ग्रन्थ है।

इसका कारण यह है कि रासलीला परमात्मा की लीलाओं में सर्वोच्च लीला है। आत्मा-परमात्मा का मिलन है। वही ईसाई धर्म का भी चरम लक्ष्य है। 'रास पंचाध्यायी' वैष्णव धर्म या प्रेम-मार्ग का प्राणाधार है। इंजील भी ईसाई धर्म-साधना का मार्ग निर्दशित करता है और आत्मा के भावनात्मक मिलन को परम साध्य मानता है। ईसाई धर्म के 'रैपर्ट' (भावनात्मक मिलन) से 'रास' की ही ध्वनि आती है। महामति के अनुसार नूह तोफान के बाद नूह का बेटा स्याम अपने लोगों को किश्ती में चढ़ा कर जिस बाग़ में ले गया था, वह बाग़ वृन्दावन ही था, जहां रुहों को आनंद मिला। इसके अतिरिक्त आदम का वर्जित फल खाकर वहिश्त से मृत्युलोक में आने के मिथक को महामति रुहों का दुःख और ज्ञान का अनुभव प्राप्त करने के लिए संसार में आना मानते हैं।

महामति ने अपने दर्शन में इंजील को तत्त्वतः समाहित कर लिया है। महामति का दर्शन समन्वय की विराट चेष्टा है। वस्तुतः सारा भेद, सारी भिन्नता केवल अज्ञान में हैं। ज्ञान (हकीकत) में पूर्ण एकता है :—

'श्रीरास' ग्रंथ परमात्मा और आत्मा की प्रणय लीला से युक्त है, जिसके अनुभव के लिए सभी साधनाएं होती हैं। कष्टकर साधनाओं एवं तपस्याओं से जो दुर्लभ है—वह आनंद गोपियों ने सहज अनन्य प्रेम-लक्षणा भक्ति द्वारा समर्पित होकर प्राप्त किया। मुनि जन जिस मोह सागर में डूबते-उतराते रहे, उसे उन्होंने 'गोपदवच्छ' पार कर लिया—

यामें प्रेम लक्षण एक पारब्रह्म सों, एक गोपियों ए रस पाया।
तब भव सागर भया गोपद बछ, विहंगम पैंडा बताया॥
९/प्र०, ३३, किरंतन

—o—

श्री रास
(इंजील)

मूल पाठ

चाल हवे पेहेलां मोहजलनी कहूँ वात, ते तां दुखरूपी दिन रात।
दावानल बले के भांत, तेणी केटली कहूं विख्यात ।। १

विस्वने लागी जाणे ब्राध, मांहें अगिन बले अगाध।
ते तां पीडे दुष्ट ने साध, नहीं अधखिणनी समाध ।। २

क्रपा करोछो अमज तणी, सिखामण देओ छो अतिघणी ।
अहि निस लेओछो अमारी सार, तो मोहजल उतरसूं पार ।। ३

ए माया छे अति बलवंती, उपनी छे मूल धणी थकी ।
मुनि जनने मनाव्या हार, सिव ब्रह्मादिक न लहे पार ।। ४

सुक सनकादिक ने नव टली, लखमी नारायण ने फरीवली ।
विस्नु वैकुंठ लीधां मांहें, सागर सिखर न मूक्यां क्यांहें ।। ५

ए ऊपर हवे सूं कहूँ, बीजा नाम ते केहेना लेऊं ।
एणे वचने सरवालो थयो, व्रह्मांडनो धन सरवे आवयो ।। ६

तत्व सहूए एणीएं जीती लीधां, चौदे लोक पोतानां कीधां ।
वली लीधो तत्व मोह, जे थकी उपन्या सहू कोए ।। ७

साखी—कहे इंद्रावती वल्लभा, ए माया छे अति छल ।
हवे जुध मांडयूं छे अमसूं, एहनो कह्यो न जाए बल ।। ८

हिन्दी छाया

१. अब सबसे पहले मोहजल (भवसागर)—की बात कह लूं। इसमें दिन-रात दुःख ही दुःख हैं। चतुर्दिक (तृष्णा रूपी) दावाग्नि प्रवाहित हो रही है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व घिरा है। इसका वर्णन कहां तक किया जाय !

२. मायाग्रस्त संसार असाध्य रोगों से पीड़ित है और अपने अंतर में अथाह अग्नि लिए जल रहा है। माया दुष्ट, और सज्जनों दोनों को यातना पहुंचा रही हैं। उन्हें आधे क्षण के लिए भी (समाधि,) शान्ति नहीं मिलती।

३. हे सतगुरु, आपने मुझपर कृपा की है। बार-बार मुझे सीख दी है, मेरी दिन-रात सुधि ली है; तभी तो मैं इस मोहजल (जाल) से पार उतर पाऊं (गी)।

४. यह माया अत्यंत बलवती है; क्योंकि यह मूल धनी—परमात्मा—से ही उत्पन्न हुई है। मुनि जनों ने इससे हार मान ली है। शिव-ब्रह्मादि भी इसके पार न जा सके।

५. शुकदेव और सनकादिक ऋषिगणों का भी इस पर नियंत्रण न हो सका। इसने लक्ष्मी तथा नारायण को भी आबद्ध कर रखा है। विष्णु और वैकुण्ठ को भी अपने अधीनस्थ कर लिया। सागर तल से पर्वत-शिखर पर्यन्त इसने किसी को भी उन्मुक्त नहीं रख छोड़ा।

६. इसके उपरांत क्या कहूं ? दूसरों के नाम क्या लिये जाएं ? उपर्युक्त वाणी में ही सबका सार निहित है। समस्त ब्रह्मांड के स्वामी और उनकी शक्तियाँ इसमें समा जाती हैं।

७. पांच तत्वों सहित इसने पच्चीस प्रकृति को भी जीत लिया है। चौदह लोकों तक इसका आधिपत्य है। पुनः उस मोह तत्त्व को भी वशीभूत कर लिया है, जिससे संपूर्ण संसार की उत्पत्ति हुई है। इसने सभी तत्त्वों को इस प्रकार मोह लिया है कि जगत् की कोई भी वस्तु इससे परे नहीं जा पाती।

८. इन्द्रावती कहती हैं कि हे वल्लभ ! यह माया बहुत बड़ी छलना है। इसकी शक्ति का अनुमान लगाकर कुछ कहा नहीं जा सकता, तथापि इसने अपरिमित शक्ति से हमसे युद्ध छेड़ दिया है।

एहेंना आउध अस्त्रत रूप रस, छल बल वल अकल ।
अगिन कोटिल ने कोमल, चंचल चतुर चपल ।। ९

चाल—हवे एहेनो केटलो कहूँ विस्तार, जोरावर अति अपार ।
मोसूं जुध मांड्यू आसाधार, जुध करे छे बारंबार ।। १०

एहेने लाग्यो कोई एवो खार, मारो केड न मूके नार ।
में बांध्या सामा हथियार, तो जाण्यूं जोपे एहेनो मार ।। ११

एणे समे जे अममां बीती, केटली कहूँ तेह फजीती ।
में तो रुडी रीतें ग्रहीती, पण मुने लीधी जीती ।। १२

बांहें ग्रही लेईं निसरी, में त्रण जुध कीधां फरी फरी ।
पछे गत मत मारी हरी, लेई वस पोताने करी ।। १३

तमे अनेक सिखामण कही, भरम आडेमें कांई नव ग्रही ।
मोसूं एवी तोहज थई, जो वाणी तमारी में नव लही ।। १४

तमे पेरे पेरे समझावी, मुने तोहे बुध न आवी ।
जुगते करीने जगावी, लेई तारतमे लगावी ।। १५

तमे अंतरगतें दीधां द्रस्टांत, त्यारे भाजी मारा मननी भ्रांत ।
हवे तमे आव्या एकांत, संसार वसा थई सांत ।। १६

ज्यारे धनी धनीवट करे, त्यारे बल वेरी ना हरे ।
वली गया काम सराडे चढे, मन चितव्या कारज सरे ।। १७

साखी—मायाना मुख माहें थी, जुगतें काढों जोर ।
दई तजारक अतिघणी, माया कीधी पाधरी दोर ।। १८

९. इसके हथियार हैं—अमृत रूप, (मधुर) रस, छल, बल, कल आसक्ति, बुद्धि, चातुरी आदि। यह अनगिनत प्रकार की कुटिलता, कोमलता, चंचलता, चतुराई और चपलता से भरी हुई है।

१०. इसके बारे में विस्तार से कितना कहा जाय ! यह अपार शक्ति संपन्न है। तलवार की धार (सदृश) बनकर इसने मुझसे असाधारण युद्ध छेड़ रखा है। बार-बार लड़ने आती है।

११. मुझसे इसकी ऐसी दुश्मनी हो गई है कि यह (मायाविनी नारी) मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। जब मैंने इसके संहार के लिए कमर कस कर, हथियार बाँध लिए तभी इसकी मारक-शक्ति का आभास मुझे मिला।

१२. उस समय मुझ पर क्या बीती—मेरी कितनी अवमानना (फजीहत) हुई, क्या बताऊं ! मैंने इसे अच्छी तरह पकड़ लिया था, तथापि यह मुझसे जीत गई।

१३. यह मेरी बांह पकड़कर घसीट ले गई। मैंने, इससे लगातार तीन बार युद्ध किया। तदुपरांत मेरी मति-गति जाती रही। इसने मेरा सर्वस्व हर लिया और मैं इसकी वशवर्तिनी हो गई।

१४. हे प्रियतम, आपने मुझे अनेक प्रकार से योग्य उपदेश देकर समझाया परन्तु भ्रम में पड़कर मैंने उसे ग्रहण नहीं किया। इसीलिए मैं इस प्रकार बार-बार अपमानित होती रही। यह आपके वचनों को, आदेश को न मानने का ही परिणाम है।

१५. आपने मुझे बार-बार समझाया, लेकिन मेरा विवेक नहीं जग पाया। आपने युक्तिपूर्वक जगाया और तारतम्य ज्ञान दिया।

१६. आपने अन्तर में विराज कर अन्तरंग दृष्टांत दिया। इन साक्ष्यों से मेरे मन की भ्रांतियां मिट गईं। जबसे आप इस एकांत अन्तर-प्रकोष्ठ में पधारे हैं, तब से सांसारिक वृत्तियां समाप्त हो गई हैं।

१७. जब स्वामी अपने अधीक्षण में ले लेते हैं तब बैरन माया का बल नहीं चल सकता। तब आपके अनुग्रह से बिगड़ा काम भी बन जाता है और मनोवांछित कार्य सम्पन्न होता है।

१८. माया के मुख से आपने मुझे युक्ति और बलपूर्वक खींचकर निकाल लिया। (मैं माया मुख में पड़ी बाहर आने की जुगत भिड़ा रही थी)—उसने मुझे कितनी यातना दी। आपने माया को सीधा और सरल कर दिया।

धणीना जेम धनीवट, लीधी भली पेरे सार ।
आ दुखरूपणीना मुख मांहें थी, बीजो कोण काढे विना आधार ।। १९

चाल—तमे कृपा कीधी अतिघणी, जाणी मूल सगाई घरतणी ।
माया पाडी पडताले हणी, बल दीधूं मूने मारे धणी ।। २०

वली गत मत आवी सुधसार, छल छूटो ने थयो करार ।
दयानो नव लाधे पार, त्यारे अलगो थयो संसार ।। २१

हवे आव्यूं धन अविनासी, दुख दावानल गयूं नासी ।
रुदे प्रहूं लीला विलासी, हवे ते हूँ करूं प्रकासी ।। २२

हवे ए धन में जोपें जाण्यूं, जिभ्याएं न जाए बखाण्यूं ।
मारा हैडा मां आण्यूं, अम बिना कोणे न माण्यूं ।। २३

साखी—बल नथी आहीं अमतणूं, नहीं अमारे बस ।
ए निध आवी तम थकी, ते में चित कीधूं चोकस ।। २४

में चित मांहें चितव्यूं जाण्यूं करसूं सेवा सार ।
मल्यो धणी मूने धामनो, सुफल करूँ अवतार ।। २५

जे मनोरथ मनमां, रह्यो मारा धणी श्रीराज ।
खरुं करतां खोटा मांहेंथी, पण नव सिध्यूं एके काज ।। २६

में मारूं बल जाण्यूं, हूँ तो छूँ अति मूढ ।
थाए सरवे धणी थकी, ते में कीधूं दृढ ।। २७

१९. (स्वामी) आपने अधीक्षण में लेकर मेरी भली-भांति सुधि ली मैं दुःख स्वरूपा माया के मुख में पड़ी थी, आपके सिवा मेरा कौन आधार था—जो मुझे इस कष्टकूप से बाहर निकाला।

२०. आपने अपने परमधाम से परिचित कराकर, हमारा मूल सम्बन्ध जताकर हम पर कृपा की। साथ ही, माया को ठोकर मार कर दूर गिरा दिया। मेरे धनी ने हमें शक्ति प्रदान की।

२१. तदुपरांत मेरी गति, मति और सुधि (प्रत्यभिज्ञा) लौट आई और शांति मिली। माया का छलावा (छल-छद्म) छूट गया और मैं आप की अपार दया पाकर सुशांत हो गई। (अब) मैं संसार से निवृत्त हो गई हूं।

२२. प्रियतम परमात्मा के पधारते ही मुझे अविनाशी धन मिल गया, मेरे दुःख की दावाग्नि शमित हो गई। अब अपनी अन्तरात्मा में उस लीला-वल्लभ को ग्रहण करके उनके अखण्ड लीला विलास के प्रकाश (रहस्य) को प्रकट करना है।

२३. परमात्मा रूपी धन मुझे मिला है, परन्तु इसकी महत्ता का बखान, इस जिह्वा से नहीं हो सकता। जहाँ तक इसका अनुभव (ज्ञान) मुझे है मैंने इसे अपने हृदय में बसा लिया है, ब्रह्मात्माओं एवं तारतम ज्ञान के बिना इस रहस्य को किसी ने न जाना।

२४. हममें अपनी कोई शक्ति नहीं थी, न कोई अपना जोर। यह निधि (आत्म-शक्ति) हमें तुमसे ही प्राप्त हुई है। हमने अपनी सारी चित्त वृत्ति तुम्हें ही सौंप दी है, (हमारी चेतना तुम्हारे विराट में विसर्जित हो गई है)। तभी तो इसे जानने की योग्यता प्राप्त हुई।

२५. मैंने अपने हृदय में विचार किया कि वस्तुतः सेवा ही सार है तदनुसार मैंने आपकी और सुन्दरसाथ की सेवा का व्रत लिया। जब धाम के धनी मिले हैं तो मैं अपना जन्म (अवतरण) क्यों न सफल कर लूं।

२६. हमारा तमाम मनोरथ व्यर्थ गया। हे हमारे प्रियतम, हम आपकी योग्य-सेवा के उपयुक्त न बन पाईं। खोटा को खरा करने का सारा प्रयास नष्ट हो गया। एक भी कार्य (संकल्प) सिद्ध नहीं हुआ।

२७. मैं अपनी शक्ति और सामर्थ्य से परिचित हूँ और वह यह कि मैं मूढ़ मति हूँ। जो कुछ भी है और जिनसे है, वह परमात्मा प्रेरित है—मेरा यह विश्वास अब प्रबल हो चुका है।

चाल—मूने दुख साले ए मन मांहें, नव जाए कह्यूं ते क्यांहें ।
गमे तमने तेहज थाए, बीजे सामूं कोणे न जोवाए ।। २८

ए दुख लाग्यूं मूने सही, ए उत्कंठा मारा मनमां रही ।
एणी दाझे ते मूने दही, निध हाथथी निसरी गई ।। २९

जाण्यूं लाभ मायानो लेसूं, निद्राने वासो दैसूं ।
धणीने चरणे रेहेसूं, माया केहेसे ते सरवे सेहेसूं ।। ३०

एणे समे वली फेरवी लीधी, मायाएं सिखामण दीधी ।
धणी थकी बेमुख कीधी, पाणीना जेम पीधी ।। ३१

एहेवो छल करी छेतरी, मन मूल मांहें थी फेरी ।
एणे तो आप सरीखी करी, चित चितवणी बहुविध धरी ।। ३२

मन माहें सवलूं देखे, जाणे माया सुख अलेखे ।
धणीना सुख ना पेखे, विष अम्रत लागे विसेखे ।। ३३

जुओ भूलवी छेतरे केम, आगे छेतरी मूने जेम ।
सुकजी तो पुकारे एम, जे छल पुरी ए भरम ।। ३४

आंहीं सोहेली थई तम थकी, एहेने ओलखतूं कोए नथी ।
सुकदेवें तो कांईक कथी, बीजा रह्या मथी मथी ।। ३५

एहेने निरमूल करी नाखी तमें, हजी जोपें जाणी नथी अमें ।।
एहेना रमाडया सहू रमे, मांहें बंधाणा सहू को भमे ।। ३६

२८. यही दुःख मेरे हृदय को अनुतप्त किये देता है कि मैं किसी से अपनी अन्तर्व्यथा निवेदित नहीं कर पाती। अब तुम्हें जो अच्छा लगे, वही कहना (करना) है; क्योंकि मुझे अपने सम्मुख कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। सिवा तुम्हारे कोई नहीं नज़र आता।

२६. मुझे निरन्तर इस बात का दुःख सालता रहता है कि वह निधि मेरे हाथ तक आकर भी मुझसे दूर चली गई। मेरे मन की उत्कण्ठा या अभिलाषा मेरे मन में ही रही। मैं उसी पश्चाताप की आग में अबतक धधक रही हूँ।

३०. जान-बूझ कर मैं इस मिथ्या सम्भावना में पड़ी रही कि मुझे माया संसार से लाभ प्राप्त होगा। अज्ञानरूपिणी निद्रा को पराजित कर पाऊंगी। अब मैं प्रियतम के श्रीचरणों में पड़ी रहूंगी। भले ही, माया के चलते मुझे जो कुछ भी सहन करना पड़े, करूंगी।

३१. (ठीक) इसी समय—माया ने अपनी कुटिल सीख देकर मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। मुझे धनी से पराङमुख कर दिया और मुझे पानी की तरह गटक गई।

३२. इस प्रकार छलनी छिनाल ने पुनः मेरे साथ छल किया और मेरा चित्त प्रियतम की ओर से विमुख कर दिया। उसने मुझे अपने जैसा ही बना लिया और चित्त को उद्विग्न (चंचल) और विचलित कर दिया।

३३. और इस मन ने माया जनित सुख को ही अपना अभिप्रेत या परम काम्य मान लिया। धनी के आग्रहानुग्रह पूर्ण अनुराग पर ध्यान न देकर अमृत मय सुख की तुलना में विषय-विष को ही उपयुक्त मान लिया।

३४. देखो तो भला, माया किस प्रकार भुलावे में डाल देती है! इसके पूर्व भी इसने मेरे साथ ऐसा ही छल किया था। शुकदेव ने भी बार-बार यह उद्घोष किया कि मायापुरी में प्रपंच ही प्रपंच है।

३५. हे धनी! आपके प्रेमानुग्रह को प्राप्त कर ही इससे जूझना सहज हो सका; अन्यथा यह किसी को कुछ भी नहीं समझती। इसके संबंध में शुकदेव जी ने जितना कुछ कहा, वह प्रासंगिक है; दूसरे लोग तो इसमें मीन-मेख निकालते रहे इसे मथते रहे।

३६. आपने इसे निर्मूल कर दिया। हम अब तक इसकी चाल को (इतना होने पर भी) समझ नहीं पातीं। क्योंकि आद्यंत सभी इसके प्रभाव में रमे हुए हैं। अपने पाश में बांधकर यह सबको घुमाती-नचाती है।

ए वचन तो आहीं केहेवाए, जो अमे नव बंधाऊँ मायाएं।
एहना बंध पडया सहू कायाएं, अमे छूटा धणीनी दयाएं।। ३७

एम चौद लोकमां कोई नव कहे, जे पार मायानों आ लहे।
मोटी मत धणीमां रहे, बीजा भार पुस्तक केरा बहे।। ३८

साखी—सास्त्र पुराण वेदांत जो, भागवत पूरे साख।
नहीं कथा ए दंतनी, सत वाणी ए वाक।। ३९

आ वेराट माहें दीसे नहीं, पार वचन सुध जेह।
लवो मुख बोलाए नहीं, तो केम पार पामे तेह।। ४०

चाल—हवे मायानों जे पामसे पार, तारतम करसे तेह विचार।
ब्रह्मांड मांहें तारतम सार, एणे टाल्यो सहूनो अंधकार।। ४१

लोक चौद मायानों फंद, सहूं छलतणा ए बंध।
समझ्या विना सहुए अंध, तारतम केहेसे सहू सनंध।। ४२

नहीं राखूं संदेह एक, पैंया काढ़ूं सहूना छेक।
आ वाणी थासे अति विसेख, कहूँ पारना पार विवेक।। ४३

न केहेवाए माया मांहें वाणी, पण साथ माटे केहेवाणी।
साथ आवसे रुदें आंणी, ते में नेहेचे कह्यूं जाणी।। ४४

३७. हम ऐसे वचन तब कह सकते हैं—यदि हम माया से बंधे न होते। लेकिन माया से मुक्ति संभव भी कहां है, यह तो वही बता सकता है, जो माया से बंधा न हो। इसके पाश में तो संसार के समस्त जीव पड़े हुए हैं। केवल धनी की परम अनुकंपा से मैं इससे मुक्त हो सकी हूं।

३८. समस्त चौदह भुवनों में ऐसा कोई नहीं है जो इस तरह यह दावा कर सके कि वह माया के प्रभाव-विस्तार से बच पाया है। महामति तो परमात्मा की ही है, मूल ज्ञान भी परमात्मा (प्रेरित) ही है। बाकी लोग तो केवल थोथे शास्त्र-ग्रंथों का भार ही ढोते रहते हैं।

३९. शास्त्र, पुराण, वेद, वेदांग तथा भागवत् आदि इस की पूर्ण साक्षी देते हैं कि ये केवल कथा या निजंधरी बात या दृष्टांत ही नहीं हैं, ये सत्य हैं।

४०. इस माया संसार में कोई नहीं, जिसे पार के वचनों की सुधि हो। वैराट में इस को प्रत्यक्ष किया नहीं जा सकता। जब इस मुख से एक शब्द भी कहा जा सकता तो भला उसके (इस माया के) पार कैसे उतरा जा सकता है? (उस अनिर्वचनीय की शाब्दिक, तार्किक या पारिभाषिक मीमांसा कैसे संभव है ?)

४१. (अर्थात्) जो माया के पार जा सकेगा; वही तारतम (ज्ञान) पर विचार कर सकेगा। समग्र ब्रह्माण्ड में तारतम ही वह सार है, जिसने समस्त अंधकार को मिटा दिया है; अज्ञानाधंकार को विदीर्ण कर दिया है।

४२. चौदहों भुलोक के जीव माया ग्रस्त हैं। सभी इस माया के कुटिल बंधन में फंसे पड़े हैं। इस तारतम के आशय को जाने बिना सभी अंधे हैं, अज्ञानी हैं।—तारतम ज्ञान ही इन सबके जटिल अन्तर्सम्बन्ध को विवेकपूर्वक ढंग से सुस्पष्ट करता है।

४३. इस तारतम ज्ञान से सारे संदेहों का निराकरण कर दूँ। यह सबके योग्य है। मैं इससे सबके लिए मार्ग (प्रकाश) प्रशस्त करूंगी। यह विशिष्ट वाणी इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि इससे बढ़कर अन्य (या अन्यत्र) कोई मार्ग नहीं। मैं विवेक पूर्वक पार के पार (क्षर-अक्षर से परे) अक्षरातीत की पहचान करा दूं।

४४. शब्द माया जगत् की नश्वर वस्तु है, जिससे परमात्मा को प्राप्त करने की विधि नहीं बताई जा सकती। तथापि सुन्दर साथ के लिए इसे कहा जा रहा है। सुंदर साथ इसे हृदय में धारण करके आएंगे अतः इसी धारणा से उनके विचारार्थ निश्चय पूर्वक मैंने इसका कथन किया है।

भारे वचन छे निरधार, साथ करसे एह विचार ।
जो न कहूँ सतनो सार, तो केम साथ पोहोंचे पार ।। ४५

साखी—साथ मलीने सांभलो, जागी करो विचार ।
जेणे अजवालूं आ करयूं, परखो पुरुष ए पार ।। ४६

आपण हजी नथी ओलख्या, जुओ विचार मन ।
विविध पेरे समझावियां, अने कही निध तारतम ।। ४७

नित प्रते सहू साथने, वालो दिए छे ए सार ।
दया करीने वरणवे, आपण आगल आधार ।। ४८

व्रजतणी लीला कही, वली विसेखे रास ।
श्री धामतणा सुख वरणवे, दिए निध प्राणनाथ ।। ४९

हवे एह धणी केम मूकिए, वली वली करो विचार ।
मूल बुध चेतन करी, धणी ओलखो आ वार ।। ५०

आ जोगवाई छे जाग्या तणी, अने विचार मांहें समझण ।
जे समझो ते जागजो, पण अवसर अरधो खिण ।। ५१

आगे धणी पधार्या अममां, अमें करी न सक्या ओलखांण ।
ए निखरपणे निध निगमी, थई ते अति घणी हांण ।। ५२

आव्या धणी न ओलख्या, अमें भूल्या एणी भांत ।
विना विचारे न समझ्या, निगमी निध साख्यात ।। ५३

४५. ये सार युक्त वचन ही आधार स्वरूप है—सभी सुन्दर साथ इन पर विचार एवं विवेक पूर्वक चलें। इन वचनों को माध्यम बनाकर यदि मैं सत्य का सार (स्वर और स्वरूप) न कहूं तो समस्त सुन्दर साथ किस प्रकार उस पार जायेंगे।

४६. मेरी साथी आत्माओं ! मेरी बात सुनो, जागकर विचार करो। जिन्होंने अपना ज्ञान प्रकाशित किया है, उस अक्षरातीत परम पुरुष को परखो।

४७. जो परमात्मा हमसे विलग नहीं, उसे हमने अब तक पहचाना नहीं—यह कैसी विडम्बना है। इसे अपने मन में विचार कर देखो। उन्होंने किस प्रकार, कई बार—विविध प्रकार से तारतम ज्ञान निधि को समझाकर स्पष्ट किया।

४८. सुन्दर साथ के कल्याण हेतु स्वामी नित्य प्रति ज्ञान का सार देते हैं। हमारे सम्मुख उन्होंने (श्री देवचन्द्र जी) कृपापूर्वक यह समस्त वर्णन किया है। (मैं उसका विवरण मात्र दे रही हूं।)

४९. व्रजभूमि में संपादित लीला और विशिष्ट रासलीला का भी विवेचन उन्होंने किया। श्री परमधाम के आनंद का वर्णन करते हुए प्राणनाथ ने अलौकिक निधि प्रदान की।

५०. इस बात पर बार-बार विचार करो कि ऐसे धनी परमात्मा को किस प्रकार और क्योंकर छोड़ दिया जाय। तदनुसार अपनी मूल (जाग्रत) बुद्धि और विवेक को उद्‌बुद्ध करो और प्रियतम परमात्मा का साक्षात्कार करो।

५१. यह मानव शरीर ही जागने और समझ जाने का साधन है। इस सत्य विचार को स्वीकार करो। इस तथ्य को जो समझ-बूझ कर जीवन में उतार पायेगा, वही जग जायेगा, जान पायेगा। यह अवसर आधे क्षण का है।

५२. इसके पूर्व हमारे बीच हमारे स्वामी (देवचन्द्र जी) विराजमान हुए। हम अज्ञानवश उनको पहचान न पाये। अपनी लापरवाही और अपनी अन्यमनस्कता के कारण हमने वह निधि गंवा दी। यह हमारे लिए बहुत बड़ी क्षति रही।

५३. हमने धनी को पहचाना नहीं। स्वामी आये और लौट गए। हम इसी भांति (भ्रान्ति में) पड़ी रहीं। हमारी निधि हमारे सम्मुखीन थी, तथापि हम अज्ञान-वश उसे ग्रहण न कर पायीं।

चाल—जोए विचारिए एक वचन, तो अलगां थैऐ पासेथी केम ।
दीजे प्रदक्षिणा रात ने दिन, कीजे फेरो सुफल धंन धंन ।। ५४

दीवें टाल्यो ज्यारे सुंन सोहाग, त्यारे पंतग पाम्यो वेराग ।
कां झंपावी ओलवे आग, कां कायानों करे त्याग ।। ५५

जुओ जीवतणी ए रीत, नव छोड़े अंधेरनी प्रीत ।
धणी अमारो अक्षरातीत, अमें तोहे न समझा पतीत ।। ५६

हवे घर मांहें ऊँचूं केम जोसूं, हंसी कही बात न करी वर सूं ।
ए धणी बिना केने अनुसरसूं, हवे अमें रोई रोईने मरसूं ।। ५७

ए अमारी बीतकनी विध, मूने मरडी कीधी बेसुध ।
अमने छेतर्या एणी बुध, तो गई अखंड अमारी निध ।। ५८

जो पाणी बल अलगां जाए, तो खिणमात्र वरसां सो थाए ।
धणी विना केम रेहेवाए, जो कांईक निध ओलखाए ।। ५९

मीन जल विना जेणी अदाए, अंतर व्रह न खमाए ।
तो व्रह आपण केम सेहेवाए, जो एक लवो समझाए ।। ६०

अमें व्रह धणीनो खम्या, जे दिन ब्रथां निगम्या ।
अमें भरम मांहें भम्या, जो अगनी व्रह ना दम्या ।। ६१

साखी—एणे मोहे माहूं करया, करी न सक्या विचार ।
सुनाई आवी सहूने, तो आडो आव्यो संसार ।। ६२

५४. यदि हम उनके एक वचन पर भी विचार करें तो उनसे विलग कैसे हो सकती हैं। हमें अपनी प्रत्येक गति को — चितवन को—प्रदक्षिणा (परिक्रमा) बनाकर उसी केन्द्र शक्ति के चारों ओर घूमना है। इससे हमारा जीवन सफल और धन्य होगा ।

५५. अंधकार-प्रिय पतंगे ने जब यह देखा कि प्रकाश उसके सौभाग्य को मिटाना चाहता है तो उसे विराग हुआ और उसने दीपक की लौ पर झपट कर बुझा देना चाहा कि या तो दीपक रहे या मेरा जीवन ।

५६. जीवों की प्रीत की रीत को देखो ! वह अंधेरे को नहीं छोड़ता । तो ब्रह्मात्माएं प्रकाश से प्रेम क्यों और कैसे भूल गईं । फिर हमारा स्वामी तो अक्षरातीत परमात्मा है। तथापि, हम पतितों ने अब तक इस संबंध पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया ।

५७. अब घर (परमधाम) पहुँचकर—मैं मुख ऊंचा कर उन्हें कैसे देख पाऊंगी ! उनसे अब हंसकर भी कैसे बातें कर सकूंगी ! उनका संधान पाये बिना, उनकी अनुपस्थिति में किनका स्मरण और अनुसरण करूं । अब तो रो-रो कर मर ही जाऊंगी ।

५८. वस्तुत: यही हमारी गाथा है। इस माया ने हमें अन्यत्र ही मोड़-मरोड़ दिया है, बेसुध कर रखा है। हमारी बुद्धि का अपहरण कर लिया है। और इस प्रकार हमें भटका दिया है कि हमारी अखंड आनंद-निधि खो गई है ।

५९. प्रियतम हाथ छुड़ा कर विलग हो जायें तो एक-एक क्षण वर्षों के समान बीतता है । उसी प्रकार, प्रियतम परमात्मा की हल्की-सी झलक मिल जाने पर उनके संयोग बिना रहना असंभव है ।

६० मछली जल के बिना जैसे नहीं रह सकती, वह जल से अपने अलगाव को नहीं सह पाती । उसी प्रकार यदि हमने प्रियतम के शब्दों का आशय या आश्रय मात्र भी ग्रहण किया होता तो आज प्रियतम का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ।

६१. हमने धनी का विरह सहन किया । वे दिन व्यर्थ हुए—जिनमें हम प्रभु के दर्शन से वंचित रहीं । हम भ्रांति में पड़ी घूमती रहीं। विरहाग्नि में शमित न हुई ।

६२. माया प्रेरित मोह ने हमें इस प्रकार विक्षिप्त कर डाला कि हम में कोई विचार-विवेक न रह गया । हमने धनी (के आगमन) के बारे में सबको बता दिया, (पर इसे कोई समझ न पाया) बल्कि वही सांसारिक लोग अवरोध या व्यवधान बन गये ।

जो विध लहूं वचननी, तो संसार भ्रमने सूं।
एणूं कांई चाले नहीं, जो श्रोलखूं श्रापोपूं ।। ६३

श्रागल तम कह्यूं छे, जै श्रांधलो चाले सही।
ज्यारे भटके भीत निलाटमां, तिहां लगे देखे नहीं ।। ६४

ते तां श्रमने श्रनभव्यूं, श्रमें तोहे न जाणी सनंध ।
घन लाग्यो कपालमां, श्रमे तोहे श्रंधना श्रंध ।। ६५

श्रांखां तोहे न उघडी, वाले कही श्रनेक विध ।
श्रंध श्रमें एवा थया, निगमी बेठा निध ।। ६६

श्रन्धने श्रांख रुदे तणी, पण श्रमने मांहें न बाहेर ।
तो निध खोई हाथथी, जो कीधूं नहीं विचार ।। ६७

चाल—श्रन्धने श्रांख रुदे तणी होए, पण श्रमने नव दीसे कोए ।
श्रमें तो रह्या निध खोए, टांणे भूल्या सूं थाए रोए ।। ६८

गए श्रवसर सूं थाए पछे, धन गए हाथ सहू घसे ।
मांहें हांण बाहेर सहू हसे, ते तो मांहेनी मांहे रडसे ।। ६९

साथ ए पेर श्रमसूं थई, निध हाथ श्रावी करी गई ।
दिन घणां श्रम मांहें रही, श्रमें दुष्टें जाणी नहीं ।। ७०

दुरमती करे तेम कीधूं, श्रमृत ढोलीने विष पीधूं ।
धणी सेहेजे श्राव्या सुख न लीधूं, कारज कोई नव सिध्यों ।। ७१

हवे ए दुख केणे कहिए, श्रंग मांहें श्रातम सहिए ।
कीधूं पोतानुं लहिए, हवे दोष कोणे दैऐ ।। ७२

६३. यदि धनी के वचनों को विधिवत् मान लिया जाय तो फिर इस असार संसार में हमारे लिए क्या है ? यदि स्वयं को पहचाना जा सके तो इस मायावी संसार का कोई वश नहीं चलता ।

६४. जैसा कि विज्ञ जनों द्वारा पहले ही बताया गया है कि अन्धा तब तक नहीं संभलता है—जब तक उसका सर दीवार से नहीं टकराता ।

६५. इतना जानने के उपरांत भी हमें इसका अनुभव न हुआ । मायाग्रस्त होकर हमने अपना संबंध नही पहचाना । अब अपने सर पर लगे आघात से यह ज्ञान हुआ कि हम अबतक अंधे के अंधे ही रहे ।

६६. प्रियतम ने हमें कई बार पुकारा तो भी हमारी आँखे खुलीं नहीं—अंधे बने बैठे रहे और अपनी समस्त निधि लुटा बैठे ।

६७. अंधे के भी अंतर्मन की आंखें खुली रहती हैं । पर हमारी आंखें इस प्रकार बंद रही कि हमें बाहर भीतर कुछ भी न दीखा । अपने हाथों में आई निधि गंवा दी और कोई विचार न किया ।

६८. अंधा अपनी (विवेकपूर्ण) आँखों से काम लेता हैं, परन्तु हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता । भूल—भ्रांतिवश अपनी सारी पूंजी (थाती) गवाँ अब असहाय बैठी रो रही हैं । इससे भला क्या होगा ?

६९. अवसर चूक जाने पर पछताये होता भी क्या है ? हाथ का अवसर निकल जाने पर सब हाथ मलते रह जाते हैं । इधर अपना नुकसान होता है और उधर बाहर वाले हंसी उड़ाते हैं । हृदय (अंतर्मन) विलाप (हाहाकार) करता रहता है ।

७०. हमारे साथ भी ठीक ऐसा ही हुआ, सखियों । हाथ आई वह निधि बहुत दिनों पास रही, फिर वापस चली गई । मैं इन कठिन दिनों (स्थितियों) के चलते और दुष्ट स्वभाव वश अपने स्वामी को पहचान न पायी ।

७१. मैं अपनी दुर्मति को क्या करूँ, क्या कहूँ ! अमृत फेंक, मैंने विष उठाकर पी लिया । धनी सहज ही मुझे उपलब्ध थे, मेरे समक्ष उपस्थित हुए—पर मैं अभागन उनके आगमन का संयोग संकेत प्राप्त न कर पायी । हाय ! मेरा कोई भी कार्य सिद्ध न हुआ । कोई अभिलाषा पूर्ण न हुई ।

७२. अब यह सन्ताप किससे कहा जाय ! इसे तो अपनी ही आत्मा और शरीर (तन-मन) में सहन करना पड़ेगा । अब इस अनुताप भरी अन्तर्व्यथा को कौन सुनेगा ? किसी को दोष दिये बिना—अपना किया स्वयं भोगना पड़ेगा ।

तोहे धरिणएं हाथथी मूक्या नही, तो वली आपरण मां आव्या सही ।
ए निध मुखथी न जाए कही, आंहीं अम ऊपर दया थई ॥ ७३

धन गयूं ते आव्यूं वली, गयो अंधकार सहू टली ।
सुखना सागर माहें गली, एने बीजो न सके कोए कली ॥ ७४

हवे में सुख अखंड लीधां, मनना मनोरथ सीधां ।
वाले आप सरीखडा कीधां, फल वांछाथी अधिक दीधां ॥ ७५

साखी—कृपा कीधी अति घरणी, वली आव्या ततकाल ।
तेहज वारणी ने तेहज चरचा, प्रेम तरणी रसाल ॥ ७६

वली वचन सोहांमरणा, वली वरणवनी विध विध ।
आव्या ते आनंद अतिघरणे, ल्याव्या ते नेहेचल निध ॥ ७७

ए निध निरमल अतिघरणी, दिए साथने सार ।
कोमल चित करी लीजिए, जेम रुदें रहे निरधार ॥ ७८

पचबीस पख छे आपरणा, तेमां कीजे रंग विलास ।
प्रगट कह्या छे पाधरा, तमे ग्रहजो सहू साथ ॥ ७९

आपरणू धनतां एह छे, जे दिए छे आधार ।
रखे अधखिरण तमे मूकतां, वालो कहे छे बारंबार ॥ ८०

पख पचबीस छे अति भला, परण ए छे आपरणो धरम ।
साख्यात तरणी सेवा कीजिए, ए रुदे राखजो मरम ॥ ८१

७३. तो भी धनी ने हमें छोड़ नहीं दिया है। वे पुनः हममें आ विराजे हैं। उन्होंने तो हम पर अनन्य कृपा की है। उनकी सन्निधि का—कृपा का ,इस मुंह से बखान नहीं हो सकता।

७४. हमारी प्रार्थना सुन कर—हमारे धनी पुनः हमारे सामने प्रकट हुए हैं। सारा अन्धकार मिट गया है और खोया धन (प्रकाश) मिल गया है। (अज्ञान दूर होते ही) सुख के सागर में मेरा हृदय निमज्जित हो गया है। इस आनन्द की चरमावस्था को कोई दूसरा भला कैसे समझ सकता है !

७५. अब मैं अपने प्रिय के साथ प्राप्त अखण्ड सुख के अधीन अपने तमाम मनोरथ पूरे कर रही हूँ। मुझे मेरे प्रियतम ने अपने स्वरूप में ढाल लिया। मेरी मनोभिलाषा से भी अधिक मुझे दिया गया।

७६. धनी ने अत्यन्त कृपा पूर्वक मेरी पुकार सुनी और तत्काल पुनः प्रकट हो गए। वे पुनः वैसी ही बातें करने लगे हैं। प्रेम पूर्वक अपनाकर रसीली चर्चा करते हैं।

७७. प्रियतम की बातें सुहानी हैं। वे विविध प्रकार से अपने (परम) धाम का वर्णन करते हैं। उनके आते ही परम आनन्द प्राप्त हो गया है क्योंकि उन्होंने हमें अपनी सारी अखण्ड निधि निश्चयपूर्वक सौंप दी है।

७८. यह ज्ञान निधि अत्यन्त उज्ज्वल और निर्मल है। जिसका सार वे समस्त 'सुन्दर साथ' के लिए दे रहे हैं। इसे अपने अन्तर में पूरी निष्ठा और विनम्रता से स्वीकार करना चाहिए। जिससे प्राणाधार स्थायी रूप से अंतर में विराज सकें।

७९. परमधाम के 'पच्चीस पक्ष' (जिनमें हम ब्रह्मात्माएँ सदैव विचरण और और अखण्ड आनन्द प्राप्त करती थीं।)—अपने लिए हैं—इनमें हे सुन्दर साथ, आपको विचरण एवं रमण करना है। प्रियतम ने इनका स्पष्ट वर्णन किया है। उस आनन्द को प्राप्त करने का संकल्प लेना हैं।

८०. अपनी सम्पत्ति या अपना आधार तो प्रियतम-प्रदत्त यह परमधाम ही है। वही प्रिय तुमसे बार-बार यह कहते हैं कि आध क्षण के लिए भी इसे नहीं बिसरो।

८१. पच्चीस पक्ष अत्यन्त सुन्दर, है। साथ ही हमारा यह धर्म हैं कि हम अपने प्रियतम को साक्षात् जान कर उनकी सेवा करें। यही मर्म की बात है। इस रहस्य को अपने अन्तर में जान लेना चाहिए।

चित ऊपर वली चालिए, धणी तणे वचन ।
ए वाणी तमे चित धरो, हूं कहूं छूं द्रढ करी मन ॥ ८२

देई प्रदक्षिणा अति घणी, करूं डंडवत परणाम ।
सहू साथना मनोरथ पूरजो, मारा धणी श्री धाम ॥ ८३

मनना मनोरथ पूरण कीधां, मारा अनेक वार ।
वारणे जाए इंद्रावती, मारा आतमना आधार ॥ ८४

॥ प्रकरण ॥ १ ॥ चौपाई ॥ ८४ ॥

माया गई पोताने घेर, हवे आतम तूं जाग्यानी केर ।
तो मायानो थयो नास, जो धणिएं कीधूं प्रकास ॥ १

केम जाणिएं माया गई, अंतर जोत ते प्रगट थई ।
हवे आतम करे कांई बल, तो वाणी गाऊं नेहेचल ॥ २

लघु दीरघ पिंगल चतुराई, एह तो किवनी छे बड़ाई ।
एनू अरथ हूं जाणू सही, पण आ निधमां ते सोभे नहीं ॥ ३

मारे तो नथी कांई किवनुं काम, वचन केहेवा मारे धणी श्री धाम ।
जे आंहीं आवीने कह्या, गजा सारूं मारे चितमां रह्या ॥ ४

८२. अपने चित्त को धनी के वचन और आदेशानुसार लगाओ। उन्हें अपने हृदय में धारण करो। मैं इस आशय का संकेत बार-बार कर रही हूँ और दृढ़तापूर्वक कह रही हूँ।

८३. प्रियतम की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करके मैं उन्हें दण्डवत प्रणाम करती हूँ। हे हमारे धनी जी! आप समस्त सखियों के मनोरथ और संकल्प को पूर्ण कीजिए।

८४. उन्होंने अनेक बार हमारे मनोरथों को पूरा किया है। वे धनी जो हम सब के प्राण और आत्मा के आधार हैं, उनपर मैं (इन्द्रावती) बार बार बलिहारी जाती हूँ।

प्रकरण २

१. माया अपने घर लौट गई (हांलाकि उसने अपना विस्तार चतुर्दिक कर रखा था)। हे आत्मा, अब तो अपने जागरण का उद्यम कर। जब धनी ने अपने ज्ञान का प्रकाश किया तो मायान्धकार का नाश हो गया।

२. यह कैसे प्रतीत होगा कि माया चली गई! इसका आभास तो अर्न्तज्योति के फैलने से ही होगा। बिना इसके माया का नाश न होगा। यदि आत्मा में उनकी ज्योति का तनिक भी अंश (बल, आवेश) उतर जाये तो मैं अविचलित भाव से उनकी अखण्ड महिमा का गान करूँ।

३. काव्यशास्त्र, व्याकरण या पिंगल (छन्दशास्त्र) के लघु-गुरु का ज्ञान प्राप्त करना या इनमें निष्णात (प्रवीण) होना तो कवि के लिए महत्त्वपूर्ण है। इनका अर्थोपयोग तो मैं भी करना जानती हूँ। लेकिन वाणी में इसका कोई बहुत औचित्य नहीं; इस निधि में इन सारे उपकरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

४. (फिर) मेरा काम किसी कवि की तरह कविताई करना तो है नहीं। इससे मेरा क्या लेना देना! मुझे तो अपने स्वामी के वचनों को दोहराना भर है उन्होंने यहां आकर जो वचनानुदेश कहा है, उसे ही मैंने अपनी मति के अनुसार ग्रहण किया।

साथ आगल कहीस हूं तेह, पेहेलां फेराना सनेह ।
धणिएं जे कह्या अमने, सांभलो साथ कहूं तमने ।। ५

तमे जोपे ग्रहजो द्रढ मन करी, हूं तमने कहूं फरी फरी ।
साथ सकल ले जो चित धरी, हूँ वालोजी देखाडूं प्रगट करी ।। ६

श्री देवचंद जी ने लागूं पाए, जेम दुस्तर जोपे ओलखाए ।
दई प्रदक्षिणा करूं परणाम, जेम पोहोंचे मारा मननी हाम ।। ७

जेटली सनंध कही छे तमे, ते द्रढ करी सरवे जोईए अमें ।
लीला तमे कही अपार, तेह तणो नव लाधे पार ।। ८

चौद भवन माया अंधार, पार नहीं मोटो विस्तार ।
तमने पूछूं समरथ सार, हूं केणी पेरे करूं विचार ।। ९

तमे तारतम ना दातार, अजवालूं कीधूं अपार ।
साथ तणां मनोरथ जेह, सरवे पूरण कीधां तेह ।। १०

तारतम तणे अजवास, पूरण मनोरथ कीधां साथ ।
तमतणें चरण पसाए, जे उतकंठा मनमां थाए ।। ११

जेटली मनमां उपजे बात, ते सहू आतम पूरे साख ।
मन जीवने पूछे जेह, त्यारे जीव सहू भाजे संदेह ।। १२

ए निध बीजे कोणे न अपाए, धणी विना केहेने सामूं न जोवाए ।
एणें अजवालें थए सूं थाए, आ पोहोरामां धणी ओलखाए ।। १३

५. प्रियतम के संग हमारा पूर्व सम्बन्ध (व्रज और रास में) था। संसार में आगमन के पूर्व प्रियतम के स्नेह सान्निध्य की बात मैं कहूँगी। प्रियतम का वचन समझकर उन्होंने जैसा हमें बताया था—हे सुन्दर साथ, मैं उसे ही दोहराऊँगी। ध्यान से सुनना।

६. यदि तुम इस वाणी को दृढ़तापूर्वक सुनो और अपने हृदय में धारण करो तो मैं बार-बार इस संकल्प को दोहराना चाहूँगी। (यदि) तुम उन्हें अपने अपने चित्त में ग्रहण करो तो मैं उन्हें प्रत्यक्ष दिखा दूंगी।

७. मैं श्री देवचन्द्र जी के चरण कमलों में प्रणाम करती हूँ। उन्होंने ही मेरा इस दुर्लभ निधि से प्रत्यक्ष परिचय कराया था। उनकी प्रदक्षिणा करते उन्हें प्रणाम ज्ञापित है। मेरे मन का संकल्प पूर्ण हो, यही प्रार्थना है।

८. मैं उनके लीला-रहस्य के बारे में उनसे जितना जान पाई हूँ, उनके बारे में उतना ही कहूँगी। आप भी उस पर दृढ़तापूर्वक विचार कीजिए। मैं उनकी अपार लीला की गाथा कहती हूँ, जिसका पार पाना कठिन है।

९. चौदहों लोकों में माया (का अन्धकार) फैला हुआ है। इसमें निहित अज्ञान का विस्तार भी इतना सुविस्तृत है कि सहज ही उसे विदीर्ण करना कठिन है। मैं आपसे इस विषय में निवेदन कर रही हूँ ताकि इससे पार उतारने की विधि जान सकूं—क्योंकि हे स्वामी, आप पूर्ण रूप से समर्थ हैं।

१०. आप तारतम ज्ञान देने वाले हैं, जिससे अपार और अनन्त प्रकाश फैल गया है। (इसलिए) सुन्दर साथ की जो भी अभिलाषा बलवती हुई, उसे आपने पूर्णता प्रदान की।

११. तारतम के अजस्र प्रकाश से आपने—सबके मनोरथों को पूर्ण किया। सुन्दर साथ ! उनके श्रीचरणों के प्रताप से यदि तुम्हारे हृदय में उत्कण्ठा जगे तो तुम सब अपने अज्ञान (और मान) के अन्धकार से मुक्त होगी।

१२. आत्मा में जो भी जिज्ञासाएं उत्पन्न होती हैं, उन सबों का समाधान, मैं वाणी की साक्षी देकर करूंगी। तुम्हारे मन में जब भी सन्देह उठ खड़ा होता हो तो आत्मा उनका निराकरण कर देगी।

१३. यह निधि किसी और को नहीं दी जा सकती। धनी के बिना इसे न तो कोई प्रदान कर सकता है और न कोई प्रत्यक्ष दिखा ही सकता है। इस तारतम ज्ञान के प्रकाश से ही सब कुछ प्रत्यक्ष होता है। इस कठिन विरह वेला में भी—घड़ी भर में परमात्मा-प्रियतम का दर्शन हो जाता है।

आप तणी पण खबर पडे, घर परआतम रुदें चढे ।
ए अजवालूं ज्यारे थयूं, त्यारे वली पाछूं सूं रहयूं ॥ १४

ए सूं माया करे बल, फेरवे कल करे विकल ।
अजवालामां न रहे चोर, जागतां नव चाले जोर ॥ १५

जदीपें जीते विद्याए, पण एने अजाण्यूं न जाए ।
ज्यारे वालोजी साहे थाए, झख मारे त्यारे मायाए ॥ १६

ते माटे तमे सुणजो साथ, एक कहूँ अनूपम वात ।
चरचा सुणजो दिन ने रात, आपणने त्रूठा प्राणनाथ ॥ १७

वचन कहया ते मनमां धरो, रखे अधखिण पाछा ओसरो ।
आ पोहोरो छे कठण अपार, रखे विलंब करो आ वार ॥ १८

आ जोगवाई छे जो घणी, साहे आपण ने थया धणी ।
बेठा आपण मांहें कहे, पण साथ मांहें कोई विरलो लहे ॥ १९

साथ मांहें आजवालूं थयूं, पण भरम तणूं अंधारूं रहयूं ।
ते टालानों करूं उपाए, तो मनोरथ पूरण थाए ॥ २०

जे मनोरथ मनमां थाए, ततखिण कीजे तेणें ताए ।
आ जोगवाई छे पाणी वल, आपण करी बेठा नेहेचल ॥ २१

नेहेचल जोगवाई नहीं एने ठाम, अधखिण मां थाए कै काम ।
इंद्रावती कहें आ वार, निद्रा नव कीजे निरधार ॥ २२

॥ प्रकरण ॥ २ ॥ चौपाई १०९ ॥

१४. यदि इस तारतम ज्ञान से अपनी पहचान हो जाये तो परमधाम—परमात्मा स्वरूप परम प्रियतम—तुम्हारे अन्तर (आत्मारूपी घर) में आ विराजेंगे। जिन्हें यह (आत्म) प्रकाश प्राप्त हो जाता है तो उन्हें कुछ पाने को फिर शेष क्या रहा !

१५. (यहां) यह माया पुनः अपना ज़ोर आजमाती है। ज़ोर लगा कर मति को विभ्रांत करती है, चित्त को विकल्प में डाल उसे विकल कर देती है। परन्तु प्रकाश के रहते जिस प्रकार चोर की एक नहीं चलती, उसी प्रकार जब चित्त उद्‌बुद्ध हो जाता है तो माया का ज़ोर नहीं चलता।

१६. मूर्ख जीव चाहे कितना ही शास्त्र विद्याओं में पारंगत हो जाये; लेकिन अज्ञेय को नहीं जान पाता। हाँ, जिनकी सहायता स्वयं प्रभु कर देते हैं, अपना अवलम्ब दे देते हैं—उनके पास मायाविनी शक्ति की एक नहीं चलती, वह झख मार कर रह जाती है।

१७. इसलिए, सुन्दर साथ, मैं तुम्हें (प्रिय प्रेरित) अनुपम सीख देती हूँ कि रात हो या दिन—उनकी कृपा-चर्चा में डूब जाओ। हमारे स्वामी की हम पर असीम कृपा है, स्वामी सर्वथा हमारे अनुकूल है।

१८. उनके वचनों को अपने हृदय में धारण करो। एक पल के लिए भी पीछे मत हटो। एक-एक क्षण महत्त्वपूर्ण है, परीक्षा की घड़ी है—इसे अविलम्ब पार करो—देर न करो।

१९. यह मानव तन—यह दुर्लभ शरीर साधन, यह जीवन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। और जब प्रियतम ही अन्तरंग सहायक हो और अन्तर में बैठकर वह तुम्हें पुकार रहा हो तो क्या कहना ! लेकिन कोई विरला ही होता है—जो इस सीख (वाणी) को ग्रहण कर पाता है।

२०. हे सुन्दर साथ, यह प्रकाश तुम्हारे ही बीच हुआ था। परन्तु भ्रम वश तुम अन्धकार में पड़ी रहीं। तुम उन्हें (सतगुरु) को पहचान न पायी। मैं उस भ्रमरूपी अन्धकार को मिटाने का उपाय करती हूँ। ताकि तुम सब पूर्ण मनोरथ हो सको।

२१. जो भी मनोरथ मन में उत्पन्न हो उसे तत्क्षण पूरा कर लो। यह जीव शरीर (साधन) तो पानी के बुलबुले की तरह चंचल, अस्थायी और भंगुर है। इस नश्वर और मरणधर्मा शरीर को हमने भ्रमवश अविनाशी मान लिया है।

२२. यहां जीव शरीर ही नहीं, सब कुछ नश्वर है ; कुछ भी शाश्वत नहीं। आधे क्षण में संभव—असंभव और असंभव—संभव हो जाता है। इन्द्रावती कहती हैं, यह समय भी नींद में गंवा मत देना।

राग मारू

भूंडा जीव जागजेरे

काांई धणी तणें चरण पसाए, तूं भरम उडाडजे रे ॥ १

आपण निद्रा केम करूं रे, निद्रानो नथी लाग ।
भरमनी निद्रा जे करे, कांई तेहेनो ते मोटो अभाग ॥ २

आ जोगवाई छे आपणी, नहीं आवे वीजी वार ।
हाथ तालो दीधे जाए छे, भूंडा कां न करे हजी सार ॥ 3

धणी रे आपणमां आवया, भूंडा कां नव जागे जीव ।
पेरे पेरे तूंने प्रीछव्यो, तूं हजी करे कां ढील ॥ ४

धणिएँ धणवट जे करी, तूं तां जोने विचारी तेह ।
आ पापणीने पर हरी, तूं कां न करे सनेह ॥ ५

आपणने तेडवा आवया, आ दुस्तर माया माहें ।
ओलखीने कां औसरे, भूंडा एम थयो तूं काए ॥ ६

धणिएं आपणसूं जे करी रे, तूं ता जोने विचारी मन ।
कोडी ते हाथथी परी करी, तूंने दीधूं छे हाथ रतन ॥ ७

जीवडा तूं धारण केही करे, भूंडा घुट्यो दिन अनेक ।
जोवंतां जोगवाई गई, भूंडा हजिएँ तूं काए न चेत ॥ ८

आपण ऊपर अति घणी, दया करे छे आधार ।
आपणें काजे देह धरया, भूंडा हजी तूं का न विचार ॥ ९

प्रकरण—३

१. मूर्ख जीव, तू जाग जा रे—धनी के श्री चरणों के अनुग्रह से तू अपनी भ्रांति (नींद) को दूर कर।

२. हम नींद में क्यों पड़े रहें। फिर यह नींद में डूबे रहने का समय भी नहीं हैं। इस संसार में जो भ्रमवश नींद में ही पड़ा रहेगा—वह बहुत ही मंदभाग्य है।

३. तुम्हें यह मानव जीवन उपकरण दोबारा प्राप्त नहीं होगा। अवसर हाथ ताली दिए भागा चला जा रहा है। अरे मूर्ख जीव, तुम अब भी सुधि क्यों नहीं लेता।

४. धनी हमारे सम्मुख विराजे, पर अज्ञानी और दुष्ट जीव तू क्यों नहीं जागा? उन्होंने तुम्हें बार-बार चेताया, उद्बोधित किया। फिर भी मोह और अज्ञानवश अबतक अनावश्यक विलंब होता रहा। आखिर यह ढिलाई किसलिए?

५. धनी ने स्वभाववश तुम पर जो अनुकंपा की, तुमने उस पर ध्यान न दिया। इस पापिनी मायाको छोड़कर तू उनसे प्रेम क्यों नहीं करता।

६. इस दुस्तरी माया के बीच भी वे केवल प्रेमवश हमें बुलाने आए। उन्हें पहचान कर भी उनसे क्यों विमुख होता है! रे मूर्ख, तू ऐसा क्यों हो गया।

७. धनी ने कृपापूर्वक तुम्हें जो प्रेम का प्रति दान दिया, तू उसे भी तो अपने विवेक से परख। उन्होंने तुम्हारे हाथ से कौड़ी छीन कर फेंक दी और उपहार स्वरूप अनमोल रतन दिया।

८. ए जीव अंततः तू भी इस नींद में क्यों में पड़ा है? इतना भी तो कभी सोचा यह विचारा होता। इस घुटन में ही अपनी सारी उम्र गंवा दी। देखते-देखते इस शरीर की सारी क्षमता नष्ट हो गई। मूर्ख, तू अब भी क्यों नहीं चेतता।

९. हमारे प्राणाधार हमारे ऊपर इतनी कृपा करते हैं कि उन्होंने हमारे लिए नर तन धारण किया है। तू अब भी उनकी महानता को अपने चित्त में क्यों नहीं विचारता!

भरम भूंडो तमे परहरो, जेम थाए अजवालूं अपार ।
वचन बालाजी तणे, तूं मूलगा सुख संभार ।। १०

आ वालो ते आवया, ए सुखतणा दातार ।
आपण मांहें तेहज बेठा, जोई आजवालूं सम्भार ।। ११

दुरमति तूं कां थयो, हूं तो पाडूं ते बुम्ब अपार ।
आंहीं आव्या न ओलख्या, पछे केही पेरे मोंहों उपाड ।। १२

आँख उघाडी जो जुए, जीव लीजे लाभ अनेक ।
आंहीं पण सुख घणा माणिए, अने आगल थाए वसेक ।। १३

आ अजवालूं जो जोईए, जीव तारतम मोटो सार ।
वालाजी ने ओलखे, तो तूं नव मूके निराधार ।। १४

वालो वदेसी आवी मल्या, कांई आपणणे आ वार ।
दुख मांहें सुख माणिए, जो तूं भरमनी निद्रा निवार ।। १५

आ जोगवाई छे खिन पाणी वल, केटलूं तूंने केहेवाए ।
पण अचरज मूने एह थाए छे, जे जाण्यूं धन केम जाए ।। १६

आगल आपण सूं करयूं, ज्यारे अजवालें थई रात ।
आ तां वालेंजीएं वली क्रपा करी, त्यारे तरत थयो प्रभात ।। १७

एवडी वात देखी करी, ते तां जोयूं तारी द्रष्ट ।
हजी तूं भरममां भूलयो, तूंने केटलूं कहूं पापिष्ट ।। १८

१०. अरे मूर्ख, तू भ्रम छोड़ दे—जिससे अनंत प्रकाश हो जाये। स्वामी जी के वचनों के द्वारा तू अपने मूल—परमधाम के सुखों को स्मरण करे।

११. सुख-राशि प्रदान करने वाला प्रियतम सम्मुख विराज रहा है। वह तो हमारे बीच ही विराजमान है। ज्ञान के प्रकाश में ही उसे पहचान ले।

१२. रे मंदबुद्धि, दुर्मति बद्ध जीव तुम्हें क्या हो गया है? मैंने कितनी बार पुकारा होगा; वे यहां स्वयं आये—पर तुमने पहचाना नहीं। तुम कैसे उनके सम्मुखीन हो सकोगे—इस संसार में आकर प्रियतम को न पहचान सके तो वहाँ मुंह कैसे उठाओगे।

१३. रे जड़ जीव, जो तू अपनी आंखें खोलकर देखे तो इस लोक में उन सुखों को तो प्राप्त कर पायेगा ही—परमधाम में भी इनका विशिष्ट सुखानुभव प्राप्त होगा।

१४. यह प्रकाश जो जीव के लिए तारतम (ज्ञान) का सार है, उसे प्राप्त करो। अगर तू अपने प्रियतम से परिचय प्राप्त कर ले तो यह निश्चित जान कि तू उन्हें कभी छोड़ नहीं पायेगा।

१५, प्रवासी प्रियतम प्रेम की मर्यादा हेतु इस बार भी हमसे आकर मिले। इस नींद से जाग कर इसे छोड़ दे तो यह दुखदाई संसार सुखदाई हो जाय।

१६. तुम्हें किस प्रकार और कितनी बार बताया जाय कि यह साधन-शरीर क्षण भंगुर है, यह जीवन नश्वर पानी का बुलबुला है। आश्चर्य इस बात का है कि हम इन सारी बातों को जानते हुए भी हाथ आई निधि गंवा रहे हैं। (वर्ना धनी इतने नजदीक आ किस प्रकार वापस लौट जाते)।

१७. इसके पूर्व भी हमने क्या किया ? (जबकि) उजाला होने के तत्काल बाद अंधकार छा गया। सदगुरु जी ने कृपा की और पुनः तुम्हारे जीवन में प्रभात का अनंत प्रकाश भर दिया।

१८. तूने अपनी आंखों से इतना कुछ देखा। तू अब भी भ्रम में पड़ा उन्हें भुलाये बैठा है। अरे पापी, अब मैं कितना समझाऊं ?

अजवालें वालों ओलख्या, त्यारे पाछल रह्यूं सूं ।
जाणी बूझीने मूढ थयो, भूंडा एम थयो कां तूं ।। १९

पेरे पेरे में तूंने कह्यूं रे, सुण रे धणीना वचन ।
अधखिन वालो न वीसरे, जो तूं जुए विचारी मन ।। २०

अनेक वचन तूंने कहया, मान एकनो करे विचार ।
अरध लवे तारो अरथ सरे, भूंडा एवडो तूं कां केहेवराव ।। २१

हवे रे तूंने हूं जे कह्यूं, ते तूं सांभल द्रढ करी मन ।
पचवीस पक्ष छे आपणां, तेमां झीलजे रात ने दिन ।। २२

ए मांहेंथी रखे निसरे, पलमात्र अलगो एक ।
मनना मनोरथ पूरण थासे, उपजसे सुख अनेक ।। २३

साख्यात तणी सेवा कर रे, ओलखीने अंग ।
श्री धाम तणा धणी जाणजे, तूं तां रखे करे तेमां भंग ।। २४

मुखथी सेवा तूंने सी कहूं, जो तूं अन्तर आडो टाल ।
अनेक विध सेवा तणी, तूंने उपजसे ततकाल ।। २५

पेहेले फेरें आपण आवियां, ते तो वालें कह्यूं छे विवेक ।
ते तां लाभ लेईने जागियां, हवे आपण करूं रे विसेक ।। २६

पेहेले फेरें थयूं आपणने, गौपद वछ संसार ।
एणे पगलें चालिए, जे तूं पेहेलो फेरो संभार ।। २७

१९. उस प्रकाश में प्रियतम को देखकर, पहचानकर तू पीछे क्यो रह गया ? जान बूझकर मूर्खवत आचरण करता रहा । अरे दुष्ट, तुझे यह क्या हो गया है ?

२०. मैंने तुझसे बार-बार कहा कि तू धनी के वचन को सुन—उसे अपने जीवन में उतार । विवेक से विचार कर देखे तो तेरे लिए अपने स्वामी को आध पल के लिए भी बिसारना कठिन हो जाय ।

२१. मैंने, तुझसे (उन्हीं के व्याज से) अनेक बार कहा, परंतु अहंकार और भ्रम-वश तूने एक वचन पर ध्यान न दिया । यदि उनमें से एक या आध अक्षर (वचन) पर भी गौर किया होता तो तेरा सारा कार्य सिद्ध हो जाता । तू बार-बार मुझसे क्यों इतना सब कहलवा रहा है ।

२२. मैं अब जो कुछ भी तुम से कह रही हूं, तू उसे मनोयोग पूर्वक सुन ! यह पच्चीस पक्ष ही अपनी निधि है—उनमें अनंत सुख-विहार कर ।

२३. इनमें से एक पल के लिए भी मन को निकलने मत दे । तू परमधाम के ध्यान को आध पल के लिए भी मत बिसार । तेरे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे परमापार सुख उपलब्ध होगा ।

२४. प्रियतम तो साक्षात् उपस्थित हैं । तू उनको अपना अंग मानकर उनकी सेवा कर । धामधनी को ही अपना एकमात्र अवलंब मानकर तू समर्पित हो जा, उनकी सेवा-सूश्रूषा में तनिक भी चूक न हो ।

२५. मैं क्या कहूं कि उनकी सेवा किस प्रकार करनी है । मन की भ्रांति नष्ट होते ही, तुम्हारे मन में अनेक प्रकार की सेवा के भाव तत्काल उत्पन्न होंगे । तुम सेवा की विधियाँ जान सकोगे ।

२६. पहली बार ब्रजमंडल आगमन के बारे में प्रियतम (सदगुरु स्वरूप श्री देवचन्द्र जी) ने हमें आतम–अभिज्ञान प्रदान किया था । उन वचनों का लाभ उठाकर अब पहचान हो जाने के बाद—हमें विशेष रूप से उनकी सेवा में सतर्क रहना है ।

२७. पिछली बार जब हम (ब्रजमंडल में) मिले थे तो हमने संसार सागर को 'गोपद परिमाण वत' (गाय के बछड़े के चरण चिह्ण के समान) सहज ही पार किया था । तुम्हें अपनी उसी चाल के अनुरूप आचरण करना है ।

एटला माटे आ अजवालूं, वालेजीएं कीधूं आ बार ।
नरसैयां वचन प्रगट कीधां, कांई ब्रज तणा विचार ।। २८

वहें इंद्रावती नरसैयां वचन, जो जोईऐ करीने चित ।
धणिऐं जे धन आपयूं, कांई करी आपणने हित ।। २९

।। प्रकरण ।। ३ ।। चौपाई ।। १३५ ।।

राग धन्यासरी

प्रेम सेवा वाले प्रगट कीधी, ब्रज तणी आ बार ।
वचन विचारीने जो जोईए, कांई नरसैयां तणा निरधार ।। १

श्री धामतणां साथ सांभलो, हूँ तो कहूँ छूं लागीने पाए ।
जे रे मनोरथ कीधां आपणे, ते पूरण एणी पेरे थाए ।। २

ब्रजमां कीधी आपण वातडी, ते तां सघली मांहें सनेह ।
काम करतां अति घणों, पण खिण नव छोड्यो नेह ।। ३

विविध पेरे सिणगार जो करता, मन उलासज थाए ।
मनना मनोरथ पूरण करतां, रंग भर रैणी विहाए ।। ४

उठतां बेसतां रमतां, वालो चितथी ते अलगो न थाए ।।
ज्यारे वन पधारतां, त्यारे खिण वरसां सो थाए ।। ५

मांहों मांहे विचारज करतां, वातज करतां एह ।
आतम सहूनी एकज दीसे, जुजवी ते दीसे देह ।। ६

निस दिवस वालाजीनी वातों, रामत करतां जाए ।
खिणमात्र जो अलगां थैऐ, तो विछोडो खिण न खमाए ।। ७

२८. प्रियतम ने यह अजस्र प्रकाश इसीलिए किया। नरसी मेहता ने जो ब्रज लीला का वर्णन किया इस पर अब गम्भीरतापूर्वक विचार करो।

२९. इन्द्रावती कहती हैं नरसी मेहता के लीला वचनों को विचारपूर्वक ग्रहण करना है। धनी के कृपापूर्वक दिए गए प्रेम रूपी धन को प्राप्त करना हैं।

प्रकरण—४

१. ब्रज वनिताओं के प्रेम और सेवा को प्रियतम ने पुनः प्रकट किया है। नरसी मेहता के वचन पर विचार करो और विवेकपूर्वक इन पर ध्यान दो, जिनका निर्धारण उन्होंने किया है।

२. परम श्रीधाम की सखी आत्माओं, सुनो और सम्भल जाओ! मैं तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूँ कि तुम्हारे सारे मनोरथ इसी तरह पूरे होंगे।

३. ब्रज धाम की लीला-वेला में हमारे और उनके बीच केवल प्रेम ही प्रेम था। विभिन्न कार्य सम्भार की व्यस्तता होते हुए भी हमने पल भर के लिए भी उनके स्नेह सन्निध्य को नहीं छोड़ा।

४. तब हम सब प्रभु को रिझाने के लिए विविध प्रकार के शृंगार रचाती थीं और उनका प्रेम पाने के लिए उल्लसित रहती थीं, और वे हमारे तमाम मनोरथ को पूरा करते। हमारे चित्त में उनके आनन्दपूर्ण राग-रंग की स्मृतियाँ विहार करती थीं।

५. उठते, बैठते, और रमण करते प्रियतम प्रभु चित्त से अलग नहीं होते थे। जब वे वन चले जाते तो अलगाव का एक-एक क्षण वर्षों की भांति व्यतीत होता।

६. हमारी परस्पर वार्ता में उनकी ही चर्चा होती, एकमात्र उन्हीं का ध्यान रहता। हम सखियों को अलग-अलग शरीर दिखाई देने पर भी हमारी आत्मा का एक ही स्वरूप प्रतीत होता था।

७. जो अभिलषित मन प्रियतम की मनोहारी बातों और ब्रज लीलाओं में ही रात-दिन रमण करता (होता) और आनन्दपूर्वक खेलों में ही जिसका समय व्यतीत हो जाया करता, उसके लिए एक क्षण भी प्रियतम का वियोग सहन करना दुर्वह हो उठता। यह बिछोह रंचमात्र भी सहन नहीं होता।

विविध विलास वालाजीसूं करतां, पूरण मनोरथ थाए ।
ज्यारे वाछरडा लेई वन पधारे, त्यारे रोवता दिन जाए ॥ ८

दाणलीलानी रामत करतां, माथें मही माखणनों भार ।
वचन रंगना उथला वालतां, रमतां वन मंझार ॥ ९

ब्रज नरसैऐं प्रगट कीधूं, अति घणों वचन विवेक ।
ए वचन जोईने चालिए, तो आपण थैऐ विसेक ॥ १०

ब्रजलीला अति मोटी छे, जो जो नरसैयां वचन प्रमाण ।
ए पगला सरवे आपणां, तमे जाणी सको तै जाण ॥ ११

कहें इंद्रावती सुणो रे साथजी, इहां विलंब कीधानी नहीं वार ।
ए ब्रजवालूं कीधूं मारे वालें, आपणाने आ वार ॥ १२

प्रकरण ४ ॥ चौपाई ॥ १४७ ॥

राग धन्यासरी

एणे पगलें आपण चालिए, पगला ए रे परमाण, सुंदर साथजी ।
पहेले फेरें आपण जेम नीसर्या, तमे जाण थाओ ते चित आंण ।
चित आंणीने रंग मांणो सुंदर साथजी ॥ १

रास नरसैएं रे नव वरणव्यो, मारे मन उत्कंठा एह ।
चरण पसाए रे वालातणे, तमे सांभलो कहूं हूं तेह ॥ २

धणिएं जे रे वचन कह्या, ते में सांभलया रे अनेक ।
पण में रे मारा गजा सारूं, कांई ग्रह्या छे लवलेस ॥ ३

८. वहां हम बाला जी के साथ कई प्रकार के खेल रचातीं और विविध प्रकार से आनन्द ग्रहण करतीं। हमारे मन की हर चाह पूरी हो जाती थी। लेकिन बछड़े चराने के लिए जब वे वन चले जाते तो हमारा सारा दिन उनके वियोग में रोते-रोते बीतता।

९. वे दान लीला का खेल रचाते, सर पर मक्खन का मटका धरा होता। हमसे उल्टे-सीधे तर्क कर हमें आनन्दित करते और वन में विभिन्न प्रकार के कौतुक करते।

१०. नरसी मेहता ने ब्रजलीला का जो अन्तरंग वर्णन किया, वह बहुत ही विवेकपूर्ण है। यदि हम उन लीला-वचनों (वर्णनों) को मान कर चलें तो हमारी जीवन चर्चा अप्रतिम हो जाये, विशिष्ट हो जाये।

११. यह ब्रज लीला अत्यन्त गुह्य और रहस्यपूर्ण है। सखियों, देखो—नरसी मेहता के वचन इसकी साक्षी (देते) हैं। प्रीत भरा यह सारा चलन तो हमारा ही था—यदि इसे तुम जान सको तो जान लो।

१२. इन्द्रावती कहती हैं कि हे सुन्दर साथ जी, अब और अधिक विलम्ब करने का समय नहीं रहा। अब स्वयं प्रियतम ने हमारे हृदय में आकर अपने प्रेम की ज्योति-शिखा प्रज्ज्वलित कर दी है।

प्रकरण—५

१. ऐ सुन्दर साथ जी, हमें इन्हीं चरण-चिह्णों (लीला पदों) पर आगे बढ़ना हैं, क्योंकि ये ही हमारे लिए प्रमाण या साक्षी स्वरूप हैं कि हम सब किस प्रकार पहली बार अपने-अपने घरों को छोड़ कर निकल भागीं थीं। इसे अपने चित्त में अच्छी तरह उतार लो, ताकि प्रिय के आनन्दपूर्ण खेलों में सम्मिलित हो सको।

२. लेकिन मेरे मन में भी यह उत्कण्ठा बराबर रही कि आखिर नरसी मेहता ने रास लीला का मात्र आनुषंगिक वर्णन क्यों किया। मुझे श्रीचरणों का अनुग्रह प्राप्त कर उसे वर्णित करने की इच्छा है। अगर तुम मनोयोगपूर्वक सुनो तो मैं यह (संकल्प) पूरा करूं—उनकी बात कहूँ।

३. धनी ने जो रास-सम्बन्धी वचन कहा है, उनको मैंने बहुत सुना। लेकिन उनका अल्पांश ही मैं अपने मानस में सहेज पाई।

सरद निसा रे पूनम तणी, आव्यो ते आसो रे मास ।।
सकल कलानी चंद्रमां, एणी रजनी एँ कीधों रे रास ।। ४

रास तणी लीला कहूं, जे भर्या आपणें पाए ।
निमख न कीधी रे निसरतां, ततखिण तेणे रे ताए ।। ५

संझाने समे रे वेण वाईयो, कां वृंदावन मोंझार ।
एणे समे सहू ऊभूं मूक्यूं, तेहेने आडो न आव्यो रे संसार ।। ६

नहीं तो कुलाहल एवडो हुतो, पण चितडा वेध्या रे प्रमाण ।
साथ सहुए रे वेण सांभल्यो, बीजो श्रवण तणों गुण जांण ।। ७

कोए सखी रे हुती गाए दोहती, दूध घोणियों रे हाथ मांहें ।
एणे समे वेण थईं वल्लभनी, पडी गयो धोणियों रे तेणे ताए ।। ८

कोई सखी रे काम करे घर मधे, आडो ऊभो ससरो पत जेह ।
वेण सुणी रे पाटू दैई निसरी, एणी द्रष्टमां सरूप सनेह ।। ९

कोई सखी रे बात करे पतसूं, ऊभी धबरावे रे बाल ।
एणें समे वेण थई वल्लभनी, पडी गयो बाल तेणे ताल ।। १०

कोए सखी रे हुती प्रीसणें, हाथ थाली प्रीसे छे धान ।
एणे समे वेण थई वल्लभनी, पडी गई थाली ते तान ।। ११

कोए सखी रे एणे समे निसरतां, एक पग भांडां मांहें ।
बीजो पग पतना रुदे पर, एणी द्रष्टें न आव्यूं रे कोई क्यांहें ।। १२

कोए सखी रे वेगें वाछूटतां, पड्यो हडफटे ससरो त्यांहें ।
आकार बहेरे घणवे उतावला, चित जई वेठूं बालाजी मांहें ।। १३

४. आश्विन मास की शरद् पूर्णिमा की शुभ्र रजनी में, जब पूर्ण चन्द्र अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ चमक रहा था, उन्होंने रास-नृत्य का आयोजन किया।

५. जब रास की वह अलौकिक लीला सम्पन्न हो रही थी—तब हमने कैसे उधर पांव बढ़ाये थे। वह रोमांचक क्षण भूले नहीं भूलता। एक भी निमिष न गंवाते हुए हम तत्क्षण बाहर निकल पड़ीं।

६. संध्या समय, दूर कहीं वृन्दावन में उन्होंने अपनी वशी टेरी। सभी व्रज वनिताएं जिस स्थिति में थीं, सारे बन्धनों को तोड़ तत्क्षण तेजी से निकल भागीं। संसार का सारा आकर्षण उन्हें बांध न पाया।

७. कृष्ण के ध्यान में पगी होने के कारण गोपियों ने उनकी वंशी को सुना और उनके चित्त में वह स्वर अंकित हो गया। अन्यत्र उसका कोई अन्यथा प्रभाव न पड़ा, वरना बड़ा कोलाहल मच गया होता। इस टेर को अन्य लोगों ने केवल श्रुति मधुर आवाज ही समझा। गोपियों के अलावा इस गुहार को भला दूसरा समझता भी कौन ?

८. कोई सखी गाय दुह रही थी। टेर सुनते ही दूध का पात्र उसके हाथ से छूट कर गिर-बिखर गया। वल्लभ की पुकार सुनते ही दौड़ पड़ी।

९. कोई सखी गृह कार्य में व्यस्त थी। सम्मुख ही स्वसुर और पति खड़े थे। वंशी की धुन कान में पड़ी नहीं कि उन्हें अनदेखा करती, ठुमका देती हुई उस ओर निकल पड़ी—जिधर प्राणवल्लभ का दर्शन सम्भावित था।

१०. कोई सखी अपने पति से वार्त्तामग्न थी। कोई अपने-अपने बच्चे को स्तन्यपान करा रही थीं। प्रियतम की बांसुरी का स्वर सुनते ही उन्होंने अपने बच्चों को वहीं छोड़ा और तेजी से भाग चलीं।

११. कोई गोपिका भोजन निकाल रही थी। थाली में चावल परोस रही थी कि वंशी की टेर सुनते ही व्यग्र होकर उठ भागी। हाथ से थाली छूट कर गिर पड़ी।

१२. इस भाग दौड़ में किसी सखी का एक पाँव किसी बर्तन में पड़ गया, वह वहाँ से छूटी तो दूसरा पाँव पति महोदय के सीने पर पड़ गया। लेकिन कुछ ऐसा आवेश था कि कहीं कुछ सूझता न था।

१३. उतावली में भागती-गिरती एक सखी सीधे अपने स्वसुर से जा टकराई। बड़ी विडम्बनापूर्ण स्थिति थी कि चित्त तो पहले से ही प्रियतम के सन्निकट पहुँच जाना चाहता था, पर सशरीर पहुँचने की उद्विग्नता भी बनी हुई थी। तन भी—मन की गति से उड़ना चाह रहा था।

मात पिता पत सासु ससरो, रोवतां न सुणियां रे बाल।
वाएने वेगें रे वछूटियो, वेण सांभलतां तत्काल ।। १४

वस्तर विना सखी जे नाहती, तेणें नव संभारियां रे अंग।
वेण सांभलतां रे वाला तणी, एणे वेगमां न कीधों रे भंग ।। १५

कोए सखी रे हुती नवरावती, हाथ लोटो नामे छे जल।
सुणी स्वर पड्यो लोटो अंग ऊपर, न बोलानूं चितडे व्याकुल ।। १६

गौपव बछ रे एणे समे, सुकजोएँ निरधार्यो ते सार।
त्राटकडे रे त्रटका कर्या, कांई बंधडा हता जे संसार ।। १७

संसार तणा रे काम सरवे करतां, पण चितमां न भेद्यो रे पास ।।
विलंब न कीधी रे बछूटतां, ए तामसियोंना प्रकास ।। १८

कोए सखी रे सिणगार करतां, सुणी तेणे वेण श्रवण।
पाएना भूषण काने पेहेर्या, कान तणां रे चरण ।। १९

एक नैणे रे अंजन कर्यो, बीजो रह्यू रे एम।
वेणनो स्वर सांभल्या पछी, राजसियों रहे रे केम ।। २०

राजसिएँ रे कांईक नैणे डीठो, पण विचार करे तो थाए वेल।
तामसियों रे मोहोवड थैयो, राजसिएँ न मूक्यो तेहेनो केड ।। २१

स्वांतसिएँ रे विचार कर्यो, तेने आडा देवराणां रे वार।
कुटम सगा रे सहू टोले मल्या, फरीने वल्या भरतार ।। २२

त्यारे मनमां वचन विचारयां, ए कां आडा थाए दुरिजन।
ए सूं जाणे वर नहीं एणूं वालैयो, तो जातां वारे छे वन ।। २३

१४. उन व्रजांगनाओं ने माता-पिता, सास-स्वसुर और यहां तक कि रोते हुए बच्चों तक की पुकार न सुनी। वंशी-ध्वनि सुनते ही तत्क्षण वायुवेग से दौड़ीं।

१५. कोई गोपवनिता बिना वस्त्र के स्नान मग्न थी कि उसके कानों में बाँसुरी की अमृत-ध्वनि सुनाई पड़ी। वह अपनी देह की सुध भूले, उदग्रीव होकर भाग चली। इससे उसकी गति में कोई अंतर न पड़ा।

१६. कोई गोपरमणी किसी को नहला रही थी। हाथ में लोटा लिए जल उंड़ेल रही थी कि वंशी की मोहक तान सुन पड़ी। हाथ का लोटा छूट कर नहलाये जाने वाले के ऊपर जा गिरा। पर इसे देखने-जानने की चिंता किसे थी भला! उसकी व्याकुल शिकायत सुनने के लिए कौन बैठा रहता!

१७. शुकदेव जी ने सार रूप में यह बता दिया कि उस समय इन्हीं गोपियों ने सारे संसार को गोपद परिमाणवत्—गाय के बछड़े की खुर के समान—पार कर लिया। उन्होंने सारे जागतिक माया-प्रपंच को तत्काल झटक कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

१८. वे सभी सांसारिक कृत्यों में संलग्न थीं—परन्तु चित्त उन चर्याओं से विरत कहीं अन्यत्र था—प्रभु की स्मृति में, स्तुति में। इसलिए उनसे निकल भागने में एक क्षण भी न लगा—वे अविलम्ब प्रियतम तक पहुँच गईं। तामसी (वृत्ति रखने वाली) गोपियों की भी यही स्थिति थी।

१९. वेणु का ललित स्वर सुनते ही उन राजसी सखियों का सिंगार भी ठहर गया। उन्होंने चमत्कृत होकर पाँव का आभूषण कान में और कान का आभूषण पैर में डाल लिया।

२०. अपनी एक आँख में ही काजल डाल पायी थी कि वंशी-स्वर से ठगी रह गई और दूसरी आंख में काजल न डाल सकी, वैसे ही उठ खड़ी भागी। राजसी वृत्ति की गोपियां भी कैसे ठहर सकती थी?

२१. उन्होंने अपनी आंखों को उठाकर (चतुर्दिक) देखा—लेकिन विचार करते-न-करते थोड़ा विलम्ब हो ही गया। तामसी वृत्ति की गोपांगनाएं तो दौड़ चुकी थीं—राजसियों ने उनका अनुकरण किया। वे भी उनके पीछे दौड़ीं।

२२. सात्त्विक वृति सम्पन्न—गोप-वधुएं विवेकपूर्वक विचार करती रहीं। उनके सम्मुख देवर इत्यादि सम्बन्धी आ गए। साथ ही, सारे कुटुम्ब जन और परिचित-परिजन एवं रिश्तेदार इकट्ठे हो गए। फिर पति महोदय भी उपस्थित थे। उन्होंने आगे बढ़कर रास्ता रोक लिया।

२३. तब उन गोप रमणियों के मन में यह विचार आया कि ये दुर्जन लोग अकारण हमारी राह रोके खड़े हो गए हैं। ये क्या नहीं जानते कि हमारे पति वेणुवल्लभ श्रीकृष्ण हैं—इसीलिए ये हमें वन जाने से रोक रहे हैं?

धिक धिक पडो रे संसारने, कां न उठे रे अगिन ।
व्रह तामस रे भेलो थयो, त्यारे अंगडा थया रे पतन ।। २४

वासनाओं बहियो रे वेगमां, बार न लगी रे लगार ।
वस्त खरी रे केम रहे बाला बिना, तेणे साथे समो कीधों सिणगार ।। २५

व्रजवधू कुमारकाओंनी, कहीं नहीं सुकजीएं विगत ।
ते केम संसे राखूं साथने, तेनी करी देऊं जुजवी जुगत ।। २६

जेटली नाहती कातिक कुमारिका, ए वासना नहीं उतपंन ।
एनी लज्या लोपावी हरीने वस्तर, तेसूं कीधों वाएदो वचन ।। २७

जै सखी हुती कुमारका, घर नहीं तेहेना अंग ।
सनेह बल दया लीधी धणीतणी, ते मलीने भली साथने रंग ।। २८

साथ दोडे रे घणवें आकलो, मननी न पोहोंती हाम ।
जोगमाया सामी आवी जुगतसूं, सिणगार कीधों एणे ठाम ।। २९

सुणोजी साथ कहें इंद्रावती, जोगमायानों जुओ विचार ।
ए केणी पेरे हूं वरणवूं साथ तणो सिणगार ।। ३०

वचन धणीतणां में सांभल्या, मारा गजा सारू रे प्रमाण ।
एक स्यामाजीने वरणवूं, बीजो साथ सकल एणी पेरे जाण ।। ३१

प्रकरण ५ ।। चौपाई ।। १२८ ।।

२४. 'धिक्कार है ऐसे संसार को, इसके समस्त बन्धनों को—इसमें आग क्यों नहीं लग जाती'—ऐसा कहती हुई विरहोन्माद में पड़ी उन गोपांगनाओं का शरीर पात हो गया।

२५. (तथापि) उनकी मुक्त आत्माएं अन्यान्य सखियों के पहुँचने के पूर्व ही अभीष्ट स्थान पर पहुँच चुकी थीं। तनिक भी देर न हुई। सच्ची और निष्कलुष आत्माएं अपने प्रिय-सान्निध्य के बिना रह भी कैसे सकती हैं। वहां प्रियतम के लीला परिकर की विभिन्न सखियों और आत्माओं के साथ उनका भी दिव्य शृंगार हुआ।

२६. ब्रज गोपिकाओं के प्रसंग-क्रम में शुकदेव जी ने 'कुमारिकाओं' के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। इन कुमारिकाओं के लिए सुन्दर साथ के मन में कोई आशंका या सन्देह उत्पन्न न हो, इसलिए उनकी अलग से व्याख्या कर रही हूँ।

२७. इन कुमारिकाओं ने, जो परमधाम की नहीं या जिनका स्वरूप (काया) वहां का नहीं—कार्तिक के महीने में उपवास, स्नान और व्रतोद्यापन कर यह वर प्राप्त किया था कि कृष्ण हमें पति के रूप में मिलें। तदनुसार उनके वस्त्र-हरण करके श्रीकृष्ण ने उनकी लोक लाज का बन्धन तोड़ा था और यह वचन दिया था कि श्रीरास (उत्सव) में उनकी इच्छा को पूरा किया जायेगा।

२८. कुमारिकाएं परमधाम की नहीं है। उन्हें प्रियतम ने अपनी प्रेम-मर्यादा के कारण ब्रह्म सृष्टि के संग लगा दिया। उनके शरीर में ही कुमारिकाओं को अखण्ड संयोग सुख प्राप्त हुआ।

२९. व्याकुल और व्यग्र आत्माओं को, जो उन्मत्त होकर दौड़ पड़ी थीं—अपने नश्वर तन-मन से प्रियतम प्रदत्त अलौकिक सुख पाने में अक्षम सिद्ध हो रही थीं (उन्हें यह स्वरूप तत्काल छोड़ देना पड़ा)। योगमाया ने बड़ी योग्यता से और युक्तिपूर्वक उन्हें नया चेतन रूप और ललित शृंगार प्रदान किया।

३०. हे सुन्दर साथ, योगमाया की क्षमता शब्दातीत है। उसने उनका शृंगार कितना भव्य और विविधतापूर्वक किया, यह वर्णनातीत है।

३१. मैं (श्री देवचन्द्र जी के वचनानुसार और) अब अपनी सामर्थ्य भर पहले स्वामिनी जी के स्वरूप का निदर्शन कराऊंगी। दूसरी सखियों की शोभा का स्वरूप कैसा था, वह इनके अनुसार ही समझना।

श्री ठकुराणीजीनों सिणगार

राग धन्यासरी

अखंड सरूपनी अस्थिर आकारे, सोभा कहूं घणवे करीने सनेह ।
जोई वचन आंणू कै ऊंचा, पण न आवे वाणी मांहें तेह ।
सोभा सिणगार, स्यामाजीनों निरखूंजी ।। १

ए सोभा न आवे वाणी मांहें, पण साथ माटे केहेवाणी ।
ए लीला साथना रुदेमां रमाडवा, तो में सबदमां आणी ।। २

चरण अंगूठा अति भला, पासे कोमल आंगलियों सार ।
रंग तो अति रलियामणो दीसे, नख हीरा तणां झलकार ।। ३

हीरा ते पण तेहज भोमना, आ जिभ्या तिहां न पोहोंचाए ।
आंणी जिभ्याएं जो न कहूं साथने, तो रुदे प्रकास केम थाए ।। ४

फणा तो रंग पतंग छे, कांकसा नसो निरमल निरधार ।
कूंकम रंगे पाणी सोभे, चरण तली वली सार ।। ५

लांक तो दीसे अति लेहेकतो, रेखा सोभित अति पाए ।
टांकण घूंटीने कांडा कोमल, पींडी ते वरणवी न जाए ।। ६

कुंदन केरा अनवट सोहे, विछुडा करे ठमकार ।
मानक मोती ने नीला पांना, जुगते अति जडाव ।। ७

कांबी कडला रण झण बाजे, घूंघरी तणां घमकार ।
हेम तणां वाला मांहें गंठया, झांझर तणां झमकार ।। ८

प्रकरण—६

ठकुरानी जी का शृंगार

१. श्यामा स्वामिनी जी की अखण्ड स्वरूप शोभा और शाश्वत सौंदर्य का मैं अपनी नश्वर जिह्वा से प्रेमपूर्वक वर्णन करती हूँ। यद्यपि मैं ढूंढ-ढूंढकर ऊंचा से ऊंचा उपमान (प्रतीक) ला रही हूँ, पर वह वाणी—शब्दों में नहीं समा रही। (तब) मैं केवल श्यामा जी की शोभा और शृंगार-महिमा ही निहारती रह जाती हूँ।

२. यह शोभा अनिर्वचनीय है तथापि सुन्दर साथ के कल्याणार्थ, उन्हें मात्र अवलम्ब प्रदान करने हेतु इसे कहा जा रहा है। इस शोभा का आनन्द (और माहात्म्य) उनके हृदय में विराज सके, इसीलिए मैं शब्दों का का आश्रय ग्रहण कर रही हूँ।

३. उनके श्रीचरणों का अंगूठा बहुत ही प्यारा है। पास ही कोमल उंगलियों की कतार है, जिसका रंग मन मोह लेने वाला है। नाखून हीरों की तरह चमक रहे हैं।

४. यह हीरा भी उसी परम धाम का समझना चाहिए। इस संसार के शब्द वहां पहुँच ही नहीं सकते। परन्तु इन सारे विवरणों को मैं यहां की भाषा में न कहूँ तो अन्तर्मन में आलोक कैसे पैठे।

५. उनके पंजों का रंग लाल है और हंस के समान सफेद निर्मल तथा शुभ्र शिराएं हैं। पांव के तलवे बड़े मनोहर हैं और उनका रंग कुंकुम के समान है।

६. पैरों की मञ्जुल शोभा द्रष्टव्य है। तलुवे में पड़ी रेखाएं अत्यन्त मञ्जुल हैं। टखने और एड़ी की सुन्दरता और कोमल भंगिमा की शोभा का वर्णन अतीव कठिन है।

७. उनके पैरों के अंगूठों में कुन्दन का बिछुआ है, उंगलियों में भी बिछुए चमक रहे हैं। ये क्रमशः मणिक, मोती, नीलम और पन्ने से बहुत ही कुशलतापूर्वक जड़े हैं।

८. पांवों में सुशोभित बेल-बूटेदार कड़े है। जिनमें छोटे-छोटे घुंघरु के स्वर रणित हैं। ये घुंघरु सोने के तार से गूंथे हुए हैं। इन झांझरों की मीठी ध्वनि सुनाई पड़ रही है।

कांबिएँ नंग आसमानी फूल वेल, जुगते कुंदन जडाव।
जडाव लाल नंग नीला पीला, कडले सोभा अति थाए॥ ९

घूंघरडीनों घाट जुगतनों, कोरे करडा कुंदन।
मांहें मोती फरतां दीसे, मध्य जड्या नीला नंग॥ १०

झांझरिया एक जुई जुगतना, कोरे लाल जडाव कांगरी।
एक हार बे हीरा तणी, बीजी मध्य दरपण रंग दोरी॥ ११

भूषण चरणे सोभंता, अने बोलंतां रसाल।
जुजवी जुगतना जवेरज दीसे, करे ते अति झलकार। १२

वस्तर केणी पेरे वरणवुं एतां साएर अति सरूप।
मारा जीवनी खेवना भाजवा, हूं तो कहूं गजा सारूं कूप॥ १३

नीली ते लाहिनो चरणियो, अने मांहें कसवनी भांत।
कोरे कोरे कांगरी, इंद्रावती जुए करी खांत॥ १४

कांगरी केरी जुगत जोईए, द्रढ करीने मन।
माणक मोती हीरा कुंदन, नीला ते पांच रतन॥ १५

भांत तो भली पेरे वरणवुं, मांहें वेल सुनेरी सार।
वस्तर समियल बनियल दीसे, नव सूझे कोए तार॥ १६

अनेक विधना फूलज दीसे, मांहें जवेर तणां झलकार।
नाडी तो अति सोभा धरे, जेमां रंग दीसे अग्यार॥ १७

नीलो पीलो सेत सेंदुरियों, मांहें कसवनी भांत।
स्याम गुलालियों अने केसरियों, मांहें जांबू ते रंगनी जात॥ १८

जुगत एक वली जुई छे, ऊभी लाखी लिबोईनी दोर।
मानकदे द्रढ करीने जुए, सोभित बंने कोर॥ १९

चीरण चरणिएँ जोइए, मांहें वेल मोती झलकंत।
राती नीलो चुंनी कुंदनमां, भली पेरे मांहें भलंत॥ २०

९. कुन्दन के कड़े—जिनमें आसमानी रंग से पच्चीकारी की गई है और जो लाल, पीले, नीले नगों से जड़ी हुई हैं, वह विशेष शोभायमान हैं ।

१०. घूंघरों की गढ़न बहुत ही युक्तिपूर्वक की गई है । कुन्दन से बने इन घूंघरों के नीचे मोतियों की लड़ियां हैं—जिनमें पिरोये नीले नग झूल रहे हैं ।

११. पाजेब—झांझर की शोभा ही विचित्र है । उसकी किनारी पर सोने के गोल गोल दाने हैं । यह सब हीरे के हार की तरह सरणि बद्ध हैं और इनके बीच दर्पण की भांति शुभ्रोज्ज्वल रंग की डोरी है, जो सबको बांधे हुई है ।

१२. ये आभूषण श्रीचरणों में बहुत ही प्यारे लग रहे हैं और मधुर स्वर में गुंजरित हैं । जवाहरात की शोभा दूसरी ही छटा बिखेर रही है । उनकी ज्योति सबसे न्यारी प्रतीत होती हैं ।

१३. वस्त्रों की शोभा वर्णनातीत है—मानो सौंदर्य का उर्मिल सागर लहरा रहा हो—यह वर्णन भी अपने मन की प्यास बुझाने के निमित्त हो रहा है । मेरी क्षमता भी तो कूपवत ही सीमित है ।

१४. 'लाही' नामक नीले रंग का लहंगा है, उस पर कसीदा किया हुआ है । उसके किनारे-किनारे किंगरी लगी हुई है । इन्द्रावती एक-एक अंग की शोभा को सतृष्ण देख रही है ।

१५. लहंगे की किनारी पर कुशलतापूर्वक लगे माणिक, मोती, हीरा, कुन्दन और नीलम आदि रतन की शोभा ज़रा देखो तो—कितनी विविधता पूर्ण है ।

१६. इन वस्त्रों का वर्णन किस प्रकार करूं—इनमें सुनहरे तारों से कढ़ाई की गई है—ये तार इतने महीन हैं कि दिखाई नहीं पड़ते ।

१७. लहगे में विविध प्रकार के कढ़े फूल सुसज्जित दिखाई दे रहे हैं । उनमें जवाहरात की झलक दीख रही है । डोरी भी बहुत ही सुन्दर है, उसमें ग्यारह रंग दिखाई देते हैं ।

१८. इसमें नीले, पीले, सफेद, सिंदूरी, कुसुंभी, काले, गुलाबी, केसरिया और जामुनी रंग की डोरियां बुनाई में लगी हैं ।

१९. इसके अतिरिक्त खड़ी बुनाई में लाखी और नेंबुई रंग के धागे लगे हैं—जिन्हें माणिक दे (अर्थात् सखी इन्द्रावती) दोनों छोरों से देखती है ।

२०. लहंगे की चुन्नट जिनमें बेल-बूटे और मोती झलक मारते हैं—और उनमें नीले रंग के जो नग जड़े हुए हैं—वे बहुत ही प्यारे लगते हैं ।

ए ऊपर जे सोया धरे, कांई तेहेनो न लाभे पार ।
अंग चरणियों प्रगट दीसे, साडी माहे सिणगार ।। २१

छूटक छापा कुंदन केरा, साडी सेंदुरिऐं रंग ।
हीरा माणक मोती लसणियां, मध्य पांच वाणीना नंग ।। २२

सोभा तो घणऐं सोहामणी, जो द्रढ करी जोईए मन ।
झीणा वस्तर ने अति उतम, कांनिऐं दोरी त्रण ।। २३

मांहें मोती कोरे कसबी, त्रीजी नीली चुंनी सार ।
अनेक विधनी वेल जो सोभे, छेडे करे झलकार ।। २४

सुंदर लांक सोहांमणों, वासो दीसे साडीमां अंग ।
वेंण तले कंचुकीनी कसो, जुगते सोहे बंध ।। २५

अंगनो रंग निरख्यो न जाए, क्यांहें न माए क्रांण क्रांत ।
पेट पांसा उर कंठ निरखतां, इंद्रावती पामे स्वांत ।। २६

अंगनो रंग अजवास धरे, तिहां स्याम चोली सोभावे ।
सुंदर सरव सिणगार सोहावे, तहां लेहेर भूषण क्रण आवे ।। २७

कसकसती चोली ने कठण पयोधर, पीला खडपा सोभंत ।
कस ठामे जे कांगरी, तहां नीला जवेर झलकंत ।। २८

भरत भली पेरे सोभित, कांई पचरंग चुंनी सार ।
अनेक विधना फूल वेल, खसबोए तणां वेहेकार ।। २९

कंचुकी जडाव छे जुगत जुजवी, ऊपर आभरण भली भांत ।
सुन्दर सरूप जोई जोईने, मारो जीव थाए निरांत ।। ३०

कंठ केणी पेरे वरणवु, मारा जीवने नथी कांई बल ।
पांच हार तिहां प्रगट दीसे, सोभित दोरे वल ।। ३१

२१. फिर महीन साड़ी भी बहुत शोभायमान है—जिनमें से अंग, विभिन्न नग और विविध आभूषण सभी दिखाई देते हैं। उनकी शोभा का वर्णन कैसे हो।

२२. इस पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर सोने की जरी मढ़ी है। साड़ी का रंग सिंदूरी हैं और इसके बीच-बीच में हीरा-माणिक्य, मोती और सलमे तथा नग आदि का जड़ाव है।

२३. इनकी शोभा तो बहुत ही सुहानी लग रही है—अगर सच्चे मन से देखा जाये। अंग वस्त्र बहुत ही झीना है—किनारे पर तीन धारियां शोभा पा रही हैं।

२४. तीसरी चुन्नी पर मोतियों टंका कसीदा कढ़ा हुआ है। किनारे पर विभिन्न प्रकार के बेल-बूटे सुशोभित हैं। दोनों छोर लहरा रहे हैं।

२५. पीठ के बीच की गहराई बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। साड़ी में से सारा सौंदर्य दिखाई देता है। पीठ पर लटकती वेणी—चोटी और उसके नीचे चोली के डोरे बड़े सुन्दर खिंचे हैं।

२६. गौर-वर्ण के अंग की शोभा देखते ही बनती है। उसमें से फूटती किरणों की-सी आभा कहीं नहीं समाती। पेट, पसलियां, वक्ष तथा कण्ठ का सौंदर्य देखकर—इन्द्रावती के हृदय को परम प्रशांति मिली।

२७. अंग-अंग में शुभ्रता बिखर रही है। शरीर पर काली चोली शोभायमान है। सारा शृंगार बहुत ही मनोरम है, आभूषणों की किरणें चतुर्दिक झिलमिला रही हैं।

२८. उन्नत पीन पयोधर पर पीले रंग की कसी हुई चोली है। उसमें पीले रंग का जोड़ लगा है। उसके दोनों सिरे पर टंके नीले जवाहर की ज्योति झलक रही है।

२९. पंचरंगी चुन्नी पर कसीदे का काम है और उसपर विभिन्न प्रकार की बेलें कढ़ी हैं, जिनमें से विभिन्न प्रकार की खुशबू के झोंके आ रहे हैं।

३०. चोली पर भी जड़ाऊ काम है, जिस पर विविध प्रकार के सुन्दर आभरण सुसज्जित हैं। इस शोभामण्डित और ललित स्वरूप को देखकर मेरा मन आप्यायित हो रहा है।

३१. उनकी (सु) ग्रीवा की शोभा का वर्णन करने के क्षमता मुझमें नहीं। गले में पहने हुए पांच हार स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पीछे की ओर बंधी उनकी डोर भी हार की भांति प्रतीत होती हैं।

एक हार हीरा तणो, बीजो पांच वरण रतन ।
त्रीजो हार मोती निरमलनो, कांई चौथो हेम कंचन ।। ३२

हेम तणो हार जुई रे जुगतनो, नव सर नव पाटलो ।
जडाव हीरा पांच रतन मोती, मांहें माणक ने नीलवी ।। ३३

उतरी त्रण सर सोभंती, कांई दोरो जडित अचंभ ।
हूं केणी पेरे वरणवुं, मारी जिभ्या आंणे अंग ।। ३४

कंचुकीना कांठला ऊपर कोरे, दोरे तेज अपार ।
सात रंगना नंग पाधरा, जोत करे झलकार ।। ३५

मांहें मोती माणक हीरा, पाना ने पुखराज ।
कुन्दन मांहे रतन नंग झलके, रमवा सुन्दरी करे साज ।। ३६

कांठले माणक ने वली मोती, कुन्दन मांहें पांना नंग ।
चीडतणी चारे सर सोभे, कोई धात वसेकमा रंग ।। ३७

ए ऊपर वली निरखी जोईए, तो कंठसरी भली गई अंग ।
कंठसरी केरी कली जुजवी, कांई जुजवा छे तेहेना नंग ।। ३८

कंठसरी जडाव जुगतनी, मांहें राती नीली जवेरोंनी हार ।
सकल सिणगार स्यामाजीने सोभे, कुन्दनमाँ मोती झलकार ।। ३९

नख थकी कर वरणवुं, एह जुगत अति सार ।
आंगलियों अंगूठा कोमल, नख हीरा तणा झलकार ।। ४०

झीणी रेखा हथेलिएं दीसे, पोहोंचा सोभित पतंग ।
आंगलिएं बोसा बीस दीसे, कोमल कलाई अति रंग ।। ४१

३२. इनमें से एक हीरे का और दूसरा पांच तरह के रत्नों से निर्मित है। तीसरा निर्मल मोतियों से और चौथा सोने का बना है।

३३. सोने के हार की शोभा ही न्यारी है, उसमें नौ लड़ियां हैं, उसमें भी नौ ही फलक (पटल) हैं, उनमें से हीरे, मोती और पांचों प्रकार के रत्न और मणि माणिक्यों की आभा या छटा फूट रही है।

३४. नीची झूलती तीन लड़ियां एक-दूसरे से जिन डोरों से बधी हैं—वे भी अद्भुत हैं। उनका वर्णन इस जिह्वा और इस दृष्टि से कैसे करू ?

३५. चोली के गले के ऊपरी किनारों पर लगे हुए डोरे आभायुक्त हैं। उनमें सात प्रकार के नग कुशलतापूर्वक लगे हैं और उनकी ज्योति झिलमिला रही है।

३६. उसमें मोती माणिक्य, हीरा, पन्ना, तथा पोखराज—कुन्दन में जड़े चमक रहे हैं। इस साज-सज्जा को श्यामा सुन्दरी ने रास खेल हेतु रचाया है।

३७. बीच-बीच में मोती, माणिक्य, हीरा, पन्ना आदि अनमोल रत्न जड़े हैं। मंगल सूत्र के चतुर्दिक काले मोतियों की लड़ियां शोभायमान हैं। यह कोई विशेष ही चमकीली धातु है।

३८. इसके ऊपर देखो—गले में कण्ठी की शोभा कितनी जंच रही है। उस कड़ी की बनावट ही निराली है। उसमें नग भी विभिन्न प्रकार के लगे हैं, जो दूसरी ही तरह के हैं।

३९. कण्ठी के जड़ाव की विधि भी विचित्र है—उसमें गहरे नीले जवाहरात की लड़ियां हैं। श्यामा जी के समस्त शृंगार की शोभा महिमामण्डित है। स्वर्णाभूषणों में भी मोती झलकते हैं।

४०. अब नख से लेकर हाथ तक की शोभा का वर्णन करूं—यह बड़ा ही मनोरम विवरण होगा। अंगूठों समेत उंगलियां, बड़ी कोमल हैं। नाखूनों में हीरे की शुभ्रता ज्योतित है।

४१. हथेली की रेखाएं एकदम महीन हैं। हथेली का पृष्ठभाग, पहुंचा—लालिमा लिए है। उंगलियों के साथ-साथ उनके पोरों की झांकी देखी जा सकती है। कलाइयां भी बहुत ही कोमल हैं।

वीटी जडाव छे छो आंगलिऐं, सातमी अंगूठी सार ।
आभलियो ने फरतां पांना, दरपणमां मुख झलकार ।। ४२

बे वीटी ने हीरा मोती, बीजी बे रंग वे रतन ।
पांच रंगनी पाच एकने, एकने करडा कंचन ।। ४३

पोहोंची ने नवघरी दीसे, ऊपर ऊँचा नंग ।
माणक मोती पांना कुन्दन, ए सोभे पोहोंचीना नंग ।। ४४

नवघरी ने निरमल मोती, हीरा ने रतन ।
कुन्दन मांहें पांना पुखराज, चूड मांहें नव रंग ।। ४५

नव रंगना नंग जुजवा, तेहेना ते जुजवा रूप ।
हूं मारी बुध सारूं वरणवुं, पण एह छे अदभूत ।। ४६

नीलवी लसनियां सोभित, पांना ने वली लाल ।
माणक मोती हीरा कुन्दन, मांहें रतन तणां झलकार ।। ४७

कोणी आगल कांकणी, जांबू रंग नंग जडाव ।
कुन्दनना करकरियां सोंमे, जोत करे अपार ।। ४८

मोहोलिऐं मोतीनी कांगरी, नीली राती चुंनी कुन्दन ।
वेल मांहे हीरा हार दीसे, इंद्रावती जुए द्रढ मन ।। ४६

सुंदरने सोभे अति जुगते, झणबाजे रसाल ।
चूड केरा छापा अति सोभे, उर पर लटके माल ।। ५०

गाल तणो रंग कह्यो न जाए, अधुर परवालीनी भांत ।
दंत सोभे रंग दाडिमनी कलियो, हरवटी अधुर वचे लांक ।। ५१

४२. छः उंगलियों में छः अंगूठियां पड़ी हैं, सातवीं उंगली में रत्नजटित अंगूठी हैं—जिसके बीच पन्ने जड़े हैं और जिनकी विशुद्धता में चेहरा दीख पड़ता है।

४३. हीरा और मोती की दो-दो अंगूठियां हैं। इनमें से दो रंगों वाले रत्नों की भी अंगूठी है—एक में मरकत की आभा है। एक सोने के मोतिया दानों से निर्मित है।

४४. पहुँचा और कलाई के समवेत आभूषण और उनमें लगी नौ लड़ियाँ और नग—माणिक्य, मोती, पन्ना और अन्यान्य रत्न—पहुँचों को शोभा प्रदान कर रहे हैं।

४५. नौ लड़ियों के आभूषण में निर्मल मोती, हीरे और दूसरे रत्न भी टँके हैं। आभूषणों में पन्ना-पोखराज भी शोभित हैं। कलाई में नवरंग चूड़ियाँ झिलमिला रही हैं।

४६. इन नौ रंगों की चूड़ियों के रंग और स्वरूप भी अलग-अलग हैं—यह मैं केवल अपनी बुद्धि की (वर्णन या विवरण) क्षमता-सीमा के अंतर्गत कह सकती हूँ कि यह सारा प्रसंग अद्भुत और विस्मयकारी है।

४७. नीलकांत (मणि), शुभ्र मोती, पन्ना, लाल, माणिक्य, मुक्ता, हीरा तथा हेम आदि रत्नाभूषणों की झिलमिलाहट रह-रह कौंध उठती है।

४८. कोहनी के आगे कंगन में जामुनी रंग की मीनाकारी है और उसमें कई प्रकार के जवाहर लगे हुए हैं। स्वर्णिम आभा और उसकी कांति से जैसे प्रकाश फूटता है।

४९. मोहरे पर मोती के झालरों वाली नीली चुन्नी, सोने के तारों से बुनी हुई है। इन बेलों की शोभा हीरों के हार की भाँति है, जिसकी शोभा देखकर इन्द्रावती की आकांक्षा आश्वस्त (पूर्ण) हो रही है।

५०. इन शोभापूर्ण और शालीन स्वर्णाभूषणों से निकलने वाली मीठी ध्वनि मन को भाती है। चूड़ी की बनावट मोहक है। हृदय पर हार सुशोभित है।

५१. कपोल की रंगिमा भी अवर्णनीय है। होंठ गहरे लाल रंग के हैं। दाँत अनार के दानों की तरह शोभाप्रदायक हैं। होंठ और ठोढ़ी के बीच की वर्तुल गहराई बड़ी प्यारी है।

मुख चौक सोभित अति मांडनी, अने झलके काने झाल ।
जडाव माणक मोती ने हीरा, कुन्दनमां पांना लाल ।। ५२

नासिका वेसर लाल मोती लटके, आंखडिएं अंजन सोहे ।
पापन चलवे ने पीउजीने पेखे, चतुराईए मन मोहे ।। ५३

नयणां चपल अति अणियाला, ने रेखा सोभित मांहें लाल ।
बेहूगमा भ्रकुटीनी सोभा, टीलडी तें मध्य गुलाल ।। ५४

सारा साथ सुणो एक वातडी, आ सरूप ते केम वरणवाए ।
एक भूषणतणी जो भांत तमे जुओ, तो आंणे देह जीव न खमाए ।। ५५

एक वेसर ऊपर लालज दीसे, लालकनो न लाभे पार ।
जेटला मांहें मीट फरीवले, एटले दीसे झलकार ।। ५६

खीटलडी जडाव भली पेरे, मांहें लाल हीरा सुचंग ।
माणक मोती हीरा पांना, मांहें पांच वाणीना नंग ।। ५७

करण लवने जे सोभा धरे, ऊपर साडीनी कोरे ।
सणगटडा मांहें पीउजीने पेखे, आडी द्रष्टें हेरे ।। ५८

निलवट बेणा चोकडो, पांच मोती तिहां सोभे ।
लाल पाच कुंदन मांहें सोभित, जोई जोईने जीव थोभे ।। ५९

पटली सामी छे फूली दीसे, मध्य सेंदुरनी रेखे ।
बेहूगमां मोती सर सोभे, इंद्रावती खांत करी पेखे ।। ६०

चार फूली ते फरती दीसे, बे फूली अणियाली ।
मध्य लाल मोती फरतां पांना, ए जुगत क्यांहें न भाली ।। ६१

५२. मुख-मंडल की मंजुल शोभा बहुत ही प्यारी है। कानों के आभूषण अपनी झलक दिखा रहे हैं। उनमें मणिक्य-मोती, पन्ना, हीरा,लाल आदि जड़े हुए हैं।

५३. नाक की नथ में लाल मोती झूल रहा है। गहरी आँखों में काजल लगा हुआ है। पलकें उठाकर श्यामा स्वामिनी, अपने प्रिय स्वामी को देखती हैं और अपने कटाक्ष से उनका मन मोह लेती हैं।

५४. चंचल आँखों में बांकी चितवन और लाल-गुलाबी डोरे खिचे है। दोनों भौंहों के मध्य ललाट पर चमकीले गुलाल की बिंदी शोभित है।

५५. सुन्दर सखियों ! एक बात सुनो। इस शोभातीत स्वरूप का सौंदर्य—वर्णन से परे है। वह हो नहीं सकता। यदि एक आभूषण की शोभा की झाकी भी दिख जाय तो इस शरीर में जीव (आत्मा) न ठहर पाये। उसकी पात्रता परिणत हो जाये।

५६. एक नथ में पिरोये लाल मोती की लालिमा का पार नहीं पाया जा सकता। जहां तक दृष्टि जाती है, लालिमा ही लालिमा दृष्टिगत होती है। (ससीम ही अपनी सत्ता में असीम बन जाता है जब परमात्मा की पराज्योति उसमें प्रविष्ट हो जाती है)।

५७. नाक की लौंग में लाल रत्न योग्यतापूर्वक जुड़ा है। उसमें हीरा, मोती, माणिक्य, पन्ना और लाल—ये पांच प्रकार के दूसरे नग भी जुड़े हुए है।

५८. कानों में कुण्डल और बाली शोभासीन है, उसके ऊपर साड़ी की किनारी है। श्यामा स्वामिनी आधे घूघट में, तिरछी चितवन से अपने प्रियतम को निहारती हैं।

५९. माथे पर सजीला टीका बहुत ही फब रहा है। उसमें भी पांच मोती जड़े हैं। पाँचों रत्न भी लगे हैं। जीव इन शोभा-सपूर्ण झाकियों को देख कर मन्त्र मुग्ध हो जाता है।

६०. टीका के साथ, मांग के ऊपर मोतियों के शीशफूल में छः फूल लगे है। बीचो-बीच लाल सिन्दूर की रेखा है। दोनों ओर मोतियों की लड़ियां है, जिन्हें इन्द्रावती प्रसन्नतापूर्वक निहारती है।

६१. मोती की लड़ियों में चार फूल सामने की तरफ और दो-दो फूल पीछे की तरफ दिखाई देते हैं। बीच में लाल पीले मोती की शोभा बिखर रही है। यह सौंदर्य अन्यत्र दिखाई नहीं देता।

राखडलीमां रतन नंग झलके, हीरा चांना बेहू भांत ।
माणक मोती फरतां सोभे, वेण चुए गं धो अख्यात ।। ६२

पांच रंगना पांचे फुमक, सोहे मूल वेणने बंध ।
गोफणडे फुमक जे दीसे, तेहनो स्याम कसवी रंग ।। ६३

गोफणडे घूंघरडी फरती, बोलंतो रसाल ।
फरतां पांना डोरी बंध सोभे, वेंण लेहेके जेम व्याल ।। ६४

मुख मांहें बीडी तंबोलनी, मंद मरकलडो सोभे ।
इंद्रावती नयणेसूं निरखे, अति घणूं करीने लोभे । ६५

मुखडू निहाले अंगूठीमां, सोभा धरे सरवा अंग ।
सणगटडो सिणगार सोभावे, श्री कस्नजी केरी अरधंग ।। ६६

मुखथी वाणी जे ओचरे, कांई ए स्वर अति रसाल ।
एक मात्र कणका जो रुदें आवे, तो थाए फेरी सुफल संसार ।। ६७

सुख्यम सरूप ने उनमद अंगे, केणी पेरे ए वरणवाए ।
मारी बुध सारूं हूं वरणवुं, इंद्रावती लागे पाए ।। ६८

पांउं भरे एक भांतसूं, स्यामाजी सोभे एणी चाल ।
जीव निरखीने नेत्र ठरे, इंद्रावती लिए रंग लाल ।। ६९

ए सिणगार जोईए ज्यारे निरखी, त्यारे सूं करे मायानों पास ।
साथ सकल तमे जो जो विचारी, वली ते आव्या साख्यात ।। ७०

सुंदर सोभा स्यामाजी केरी, निरखी निरखी ने निरखूं ।
अंतर टालीने एक थया, इंद्रावती कहे हूं हरखूं ।। ७१

प्रकरण ।। ६ ।। चोपाई ।। २४९ ।।

६२. चोटी के आभूषण में रतन और विभिन्न प्रकार के नग झलक रहे हैं। कई तरह के हीरे, पन्ने, माणिक्य और मोती आदि की लड़ियों से भव्य और सुवासित वेणी और लटें गुथीं हुई हैं।

६३. इस वेणी बन्ध के गिर्द पांच प्रकार के फुंदने लटक रहे हैं—उनमें काले और कुसुम्भी रंग के फुंदने अपनी छटा बिखेर रहे हैं।

६४. वेणी बन्ध में बंधी हुई छोटी-छोटी घुंघरियां हिलती हुई मधुर स्वर-लहरी फैला रही हैं। उसे बाँधने वाली डोर में भी पन्ने लगे हुए हैं। चोटी नागिन की तरह बल खाती है।

६५. मुंह में ताम्बुल का बीड़ा है। उनकी मन्द-मन्द मोहिनी मुस्कान इन्द्रावती बहुत ही ललक से और संतृष्ण नेत्रों से देखती है।

६६. अपने सम्पूर्ण अंगों में सौंदर्य और शोभा की अनन्त राशि संजोये श्यामा नायिका अपने मुखारविन्द को अंगूठी की नग में देखती हैं। जिसमें श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी का अप्रतिम और अन्यतम शृंगार घूंघट के भीतर से अपनी झलक दिखा रहा है।

६७. उनके मुंह से जो भी वाणी निकलती है, उसकी स्वर माधुरी अपूर्व है। यदि उसका तनिक भी अंश हृदय में बस जाये, अन्तर में उतर जाये तो संसार में अपना आगमन सफल हो जाय।

६८. उनका शोभा स्वरूप सूक्ष्म है, अंगों में अतिशय प्रेमोन्माद है। उनकी इस अलौकिक रूप राशि का वर्णन सम्भव ही नहीं, तथापि मैंने यथाशक्ति उसका विवेचन किया है। इन्द्राबती उनके इस दिव्य स्वरूप को निहारती हुई उनके श्रीचरणों में अपना प्रणाम निवेदित करती है।

६९. श्यामा अपनी सुललित और संतुलित चाल से आगे बढ़ रही हैं। उनको देखकर आँखें सुशीतल होती हैं। उनकी आँखों से झाँकती अनुराग-लालिमा से इन्द्रावती अनुरंजित हो गई।

७०. इस सांगोपांग शृंगार को भली भांति देख पाने वाले के लिए माया का कोई महत्त्व नहीं रह जाता; माया का बन्धन उनका क्या बिगाड़ सकेगा। हे सुन्दर साथ, विचार कर देखो वह स्वरूप स्वयं पुनः साक्षात्कृत हुआ।

७१. श्यामा जी की सुन्दर शोभा को मैं बार-बार निरखती हूं, और ठगी रह जाती हूं। उस अपूर्व शोभा-विन्यास के साथ में अन्तरंग हो गई हूं, एक हो गई हूं। उसे देख-देखकर पुलकित और हर्षित हो रही हूं।

श्री साथनों सिणगार

राग धन्यासरी

जोगमायानों देह धरीने, श्री स्यामाजी थया तैयार ।
ततखिण तिहां तेणे ठामे, मारे साथें कीधों सिणगार ।। १

सोभा सागर साथ तणी, केणी पेरे ए वरणवाए ।
हूं रे अबूझ कांई घणूं नव लहूं, एनों निरमाण केम करी थाए ।। २

कोटान कोट जाणे सूरज उदया, ब्रह्मांड न माए झलकार ।
प्रघलपूर जाणे सायर उलट्यो, एक रस थई सरवे नार ।। ३

एक नखतणी जो जोत तमे जुओ, तेमां कैने सूरज ढंपाए ।
केम करी सोभा वरणवुं रे सखियो, मारो सबद न पोहोंचे त्यांहें ।। ४

वली गुण जो जो तमे नखतणां, हूं तेहनों ते कहूं विचार ।
सूरज द्रष्टें तापज थाए, आंणे अंग उपजे करार ।। ५

साथतणी रे साड़ियों ज्यारे जोईए, तेमां रंग दीसे अपार ।
अनेक विधना जवेरज दीसे, करे ते अति झलकार ।। ६

तेवा सरूप ने तेवा भूषण, तेज तणां अंबार ।
ए अजवालूं ज्यारे जीव जुए, त्यारे सूं करे संसार ।। ७

मांहों मांहें वालाजीनी वातों, बीजो चितमां नथी उचार ।
ततखिण वेण सांभलतां वल्लभ, खिण नव लागी वार ।। ८

मन उमंग वालाजीसूं रमवा, आयत अति घणी थाए ।
आनंद मांहें अति उजाए, धरणी न लागे पाए ।। ९

भूषण स्वर सुहामणां, मुख वाणी ते बोले रसाल ।
ए स्वरने ज्यारे श्रवणा दीजे, त्यारे आडो न आवे पंपाल ।। १०

प्रकरण—७

सखियों का शृंगार

१. योगमाया की देह धारण करके श्यामा जी तैयार हुईं। तत्क्षण सुन्दर सखियों ने भी अनुरूप शृंगार किया।

२. इन सुन्दर सखियों के शृंगार का वर्णन भला किस प्रकार किया जाय? मैं तो अल्प मति हूँ, अल्पज्ञ हूँ। न कुछ ग्रहण कर पाती हूँ न प्रदान कर सकती हूँ। और फिर इसका हिसाब भी कैसे लगाया जाय।

३. मानो एक साथ करोड़ों सूर्य उदित हो गए हों। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में इसकी ज्योति नहीं समा रही। मानो सौंदर्य के समुद्र में ज्वार आ गया हो। जिसमें सब सखियां एक ही रस हो गईं।

४. जब एक-एक नख की ज्योति के सम्मुख कई सूर्य ढंक जाय तो ऐसी विराट शोभा का वर्णन कैसे हो? मेरे शब्द वहां किस प्रकार पहुँच सकते हैं।

५. फिर उन नखों का रूप गुण भी तो विशेष महत्त्व का है। सूर्य के आलोक में एक प्रकार की गर्मी या ऊष्मा रहती है, लेकिन श्रीनख के सौंदर्य को देखने पर प्रशांति प्राप्त होती है।

६. सुन्दर साथ की साड़ियों में विभिन्न प्रकार के रंग बिखरे हुए हैं। उनमें लगे हुए जवाहरात झिलमिलाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

७. जैसा दिव्य स्वरूप है, वैसे ही आभूषण हैं, सभी तेजोदीप्त। वनिताओं की शोभा राशि के प्रकाश में इन्हें जिन जीवों ने देखा, संसार के उपादान उन्हें क्या आकर्षित करेंगे!

८. वे सखियां आपस में बाला जी की ही बातों में रमी हुई हैं। चित्त में कोई अन्यथा विचार या संकल्प न था। इसीलिए तो वेणु वल्लभ की पुकार को सुनने में उन्हें पल भर का विलम्ब न हुआ। वे तत्क्षण दौड़ पड़ीं।

९. उनके हृदय में प्रीतम से आनन्दपूर्ण खेल रचाने की तीव्र इच्छा है। उतावली है। आनन्द में वे फूली नहीं समातीं। धरती पर पांव नहीं पड़ते।

१०. उनके स्वर्णाभूषण की ध्वनि और उनकी वाणी की मधुर स्वर-लहरी को जिनके कानों ने सुन लिया, माया उनके लिए कदापि व्यवधान नहीं बन सकती।

साथ सकल मारा वाला पासे आव्यो, मन आंणी उलास ।
विविध पेरे वालाजीसूं रमवा, चितमां नथी मायानों पास ।। ११

रस भर रग वालाजीसूं रमवा, उछरंग अंग न माए ।
इंद्रावती कहें धामना साथने, हूं नमो नमी लागूं पाए ।। १२

।। प्रकरण ।। ७ ।। चौंपाई ।। २६१ ।।

श्रीराजजीनों सिणगार

पेहेलो सिणगार कीधों मारे वालेंजीएं, तेहेनो ते वरणवुं लवलेस ।
पछे संवाद वालाजी साथनो, ते मारी बुध सारूं कहेस ।। १

सोभा रे मारा स्याम तणी, सखी केणी पेरे वरणवुं एह ।
सवदातीत मारा वालाजीनी सोभा, मारी जिभ्या आंणी देह ।। २

चरण तणां अंगूठा कोमल, नख हीरा तणां झलकार ।
रंग तो जोई जोई मोहिए, पासे कोमल आंगलियों सार ।। ३

फणा नसो अने कांकसा, अति रंग घणूं रे सोहाए ।
जीव थकी अलगां नव कीजे, राखिए चरण चित मांहें ।। ४

चरण तले पदमनी रेखा, करे ते अति झलकार ।
पाणी लांक लाल रंग सोभे, इंद्रावती निरखे करार ।। ५

टांकन घूंटी ने कांडा कोमल, कांवी कडला बाजे रसाल ।
घूंघरडी घम घम स्वर पूरे, माहें झांझर तणो झमकार ।। ६

कांवी कडला जुगते जडिया, सातवाणी नंग सार ।
लाल पांना हीरा माणक नीलवी, कुन्दन मां मोती झलकार ।। ७

झांझरियां जडाव जुगतना, करकरियां सोभंत ।
घूंघरडी करबा जडतरमां, झलहल हेम करंत ।। ८

११. सभी सम्मिलित हो, अपने स्वामी के निकट आई हैं। उनका हृदय उल्लसित है। वे विविध प्रकार से बालाजी के साथ रमण करेंगी, अब उनके मन में माया जन्य कोई आकर्षण शेष नहीं।

१२. आनन्द रंग और रस में डूबकर स्वामी के संग रमण करने की उमंग—अन्तर में नहीं समाती। इन्द्रावती परम धाम की सखियों को इस रूप में संग पाकर, बार-बार उनके चरणों में अपना प्रणाम निवेदित करती है।

प्रकरण—८

—श्री राज जी का शृंगार—

१. स्वामी जी ने जो अपूर्व शृंगार किया। संक्षेप में, उनका वर्णन करने के उपरांत मैं उनके और सुंदर साथ के बीच हुए संवाद को अपनी मति के अनुसार कहूँगी।

२. हे सखी, मैं अपने श्याम की शोभा का बखान कैसे करूं, वह शब्दातीत है। वह संभव नहीं। दूसरे, मेरी जिह्वा तो इसी नश्वर शरीर की है।

३. उनके श्री चरणों का अंगूठा कोमल है। नख में हीरों की ज्योति है। साथ ही, सुकुमार उंगलियां हैं। उनके रंग और रूपाभ को देखकर मन मोहित होजाता है।

४. श्रीचरणों की शिराएं और उंगलियों की पोरों की सुंदरता सम्मोहक है। इन चरणों से अपने को कभी अलग मत कीजिये। इन्हें अपने चित्त में संजो कर रखना चाहिए।

५. चरण-तल में पद्म (चिह्न) की रेखा अत्यन्त प्रकाशवान है। इसके नीचे पीछे की ओर एड़ी का रंग लाल है, जिसकी छटा देखकर इन्द्रावती को शांति और प्रसन्नता हो रही है।

६. टखने, घुटने और पैरों के निम्न भाग अतीव मंजुल हैं। उनमें कड़े और पाजेब हैं—जिनमें लगी हुई घूंघर और झांझर के मधुर स्वर गूंजते हैं।

७. श्रीचरणों के आभूषण में सात प्रकार के रत्न लगे हुए हैं। इनमें—लाल पन्ना, हीरा, माणिक्य, नील, कुंदन (हेम) और मोती ज्योतित हो रहे हैं।

८ झांझरें बड़ी कुशलता से जड़ी हैं। सोने के दानों के बीच घूंघर जड़े हुए हैं, जिससे सोने में भी अतिरिक्त चमक आ गई है।

कणक तणां वाला माहें गंठिया, निरमल नांकां झलकंत ।
झांझरियांमा जुगते जडिया, भली पेरे मांहें भलंत ।। ९

पीडी ऊपर पाएचा, ने झीणी कुरली झणबार ।
केसरिये रंग सूथनी, इन्द्रावती निरखे करार ।। १०

मोहोलिएं मोती ने वली नेफे, वेल टांकी बेहू भांत ।
नाडी माहें नव रंग दीसे, माणकदे जुए करी खांत ।। ११

सेत स्याम ने सणिएं सेंदुरिए, कखूंवर बंने कोर ।
नीलो पीलो जांबू गुलालियों, ए सोभा अति जोर ।। १२

पीली पटोली पेहेरी एक जुगते, मांहें विविध पेरे जडाव ।
जीव तनों जोवन ज्यारे जोईए, त्यारे नव मूकाए लगार ।। १३

कोरे वेल जडाव जुगतनी, मध्य जडावना फूल ।
जडाव झलहल जोर करे, चीर कानियांनी कोरे मस्तूल ।। १४

माणक मोती ने नीली चूंनी, फूल बेल मांहें झलकंत ।
सोभा मारा स्यामजीनी जोई जोई जोईए, मारी तेणे रे काया ठरंत ।। १५

नीलो ने कांई पीलो दीसे, कणा तणो रंग जेह ।
कांणी छेडा जडाव जुगते, लवलेस कहूँ हूँ तेह ।। १६

छेडे हेम हीरा ने पुखराज पांना, कोरे माणक नीलवी ने मोती ।
कांणी छेडा जुजवी जुगतें, इंद्रावती खांत करी जोती ।। १७

अंगनो रंग कह्यो नव जाए, जाणे तेज तणो अंबार ।
पेट पांसा उर कंठ निरखतां, इंद्रावती पामे करार ।। १८

रतन हीराना वे हार दीसे, त्रीजो हेम तणो जडाव ।
चौथो हार मोती निरमलनो, करे जुजवी जुगत झलकार ।। १९

उतरी जड़ाव सर बे सोभंती, चंनी राती नीली जुगत ।
निरखी निरखी ने नेत्र ठरे, पण केमे न पामिए त्रपत ।। २०

९. सोने के तारों में जड़ी हुई घूंघर की निर्मल स्वर्णाभा झलक रही है। इन झाँझरों में जरी को भी कुशलतापूर्वक जड़ा गया है।

१०. टखने के ऊपर बारीक (महीन) सुथनी और सलवार का पायचा दीख रहा है। इसका रंग केसरिया है। इसे निहार कर इन्द्रावती आश्वस्त होती है।

११. सुथनी की मोहरी पर मोती जड़े हैं और नीवी जड़ें हैं पर विविध प्रकार के बेल बूटे कढ़े हैं। नाड़े में नौ प्रकार के रंग दीख रहे हैं। मानिकदे (इन्द्रावती) प्रसन्नता पूर्वक सारा यह शृंगार-वैभव देख रही है।

१२. इस नीवी बंध में श्वेत, श्याम, सिंदूरी, ककुंबरी, लाल, नीला, पीला. जामुनी और गुलाबी रंगों से दोनों ओर (के धागे) सुशोभित हो रहे हैं।

१३. पीला पीताम्बर (पटुका) युक्तिपूर्वक पड़ा हुआ है। उसमें भी विविध प्रकार के रत्नों का जड़ाव हैं। जीव जब इस प्रकार की जीवनदायिनी शोभा को देख पाता है तो थोड़ी देर के लिए भी त्याग नहीं पाता।

१४. इसके किनारों पर बेल बूटे कढ़े है। बीच-बीच में फूल जड़े है। उनमें खचित रत्नों की आभा फूट पड़ती है। पटुके के किनारे पर खूबसूरत गोटे लगे हैं और उनकी बनावट कंगूरेनुमा है।

१५. नीले रंग की चुन्नी (ओढ़नी) में फूल और बेलें कढ़ी हैं। इनसे शोभित, सुदर्शन श्याम की शोभा को देख-देख कर मेरी काया (और आँखें) शीतल होती जाती है।

१६. नीले और पीले पटुके की किनारियों का रंग बड़ा लुभावना है। ये किनारे और आँचल कुशलतापूर्वक शोभा पा रहे हैं। उनका थोड़ा-सा ही वर्णन करती हूँ।

१७. आंचल में सोने, हीरे, पुखराज और पन्ने जैसे रत्न लगे हैं—माणिक्य, नील मणि और मोती भी जड़े हैं। पट्टी और आंचल के किनारे की नक्काशी की सुन्दरता को इन्द्रावती प्रसन्नता पूर्वक देखती है।

१८. इनके अंगों के रंग का वर्णन क्या हो, मानो ये ज्योति-पुंज हों। मध्य भाग, वक्ष और ग्रीवा देख-देखकर इन्द्रावती चैन पाती है।

१९. गले में रत्न और हीरे के हार हैं। तीसरा हार सोने का और चौथा शुभ्र श्वेत मोतियों का है। इन सारे हारों की झलक भी विभिन्न प्रकार की है।

२०. दो लड़ियाँ ऊपर से नीचे शोभित हैं। गहरे नीले रंग की चुनरी है। इस रूप-सौंदर्य को देखकर आँखें शीतल तो होती हैं, पर तृप्त नहीं होती।

रग सेंदुरिएं पछेडी, अने मांहें कसवनी भांत ।
छेडे तार ने कसवी कोरे, इंद्रावती जुए करी खांत ।। २१

अंग ऊपर आंणी वंने चौरडी, छेडा बंने पासे लटकंत ।
नवल वेष लीधों एक भांतनों, जोई जोईने जीव अटकंत ।। २२

कोमल कर एक जुई रे जुगतना, जो वली जोईए रंग ।
झलकत नख अंगूठा आंगलियों, पोहोंचा कलाई पतंग ।। २३

झीणी रेखा हथेली आंगलिएं, सात वीटी सोभंत ।
त्रण वीटी ऊपर नंग दीसे, अति घणूं ते झलकंत ।। २४

अंगूठिएं लाल चूंनीनी जडतर, बे वीटी हीरा रतन ।
एक वीटी ने नीलू पानूं, बीजा बांकडा वेलिया कंचन ।। २५

कोमल कांडे कडली सोभे, नीली जडित अति सार ।
कडली पासे पोहोंची घणूं ऊँची, करे ते अति झलकार ।। २६

मध्य माणक ने फरतां मोती, पाच तणो नीलास ।
किरण ज्यारे उठतां जोईए, त्यारे जोत न माए आकास ।। २७

कोमल कोणी चंदन अंग चरचित, मणि जडित बाजूबंध ।
कंचन कसवी फुमक वेहू लटके, सूं कहूं सोभा सनंध ।। २८

जोइए मुखारविंद गाल बंने गमां, तेज कह्यो नव जाए ।
अधरुयण जो अ[illegible]गां रहिए, त्यारे चितडा उपागला थाए ।। २९

हरवटी सोहे हंसत मुख दीसे, वली जोईए अधुरनो रंग ।
दंत जाणे दाडिमनी कलियों, अधुर परवालीनों भंग ।। ३०

मुख ऊपर मोती निरमल लटके, वेसर ऊपर लाल ।
काने करण फूल जे सोभा धरे, ते तां झलके मांहें गाल ।। ३१

करण फूल छे अति घणूं ऊँचा, राती नीली चुंनी सार ।
निरखी निरखी जीव निरांते, मांहें मीतीडा करे झलकार ।। ३२

२१. उत्तरीय का रंग सिंदूरी है—जिसमें विभिन्न प्रकार का कसीदा कढ़ा है। इस के किनारों पर सुनहले तार खिंचे हैं। सज्जित उत्तरीय को इन्द्रावती आनंद और उल्लास-पूर्वक देखती है।

२२. कांधों पर दोनों ओर चौकोर पल्लू है। जीव इस नवल रूप-सज्जा को देखकर ठिठक जाता है और ठगा-सा रह जाता है।

२३. कोमल हाथों की कमनीय शोभा अनोखी है। उसके रंग की शोभा अनुपम है। हाथों की उंगलियां, अंगूठे और नाखून तथा पृष्ठ भाग और कलाई में सौंदर्य की झलक है।

२४. हथेली और उंगलियों की रेखाएं महीन हैं। सात अंगूठियां शोभा पा रही हैं। इनमें से तीन अंगूठियों पर नग लगे हैं, जो बहुत ही चमक रहे हैं।

२५. अंगूठी में लाल नगों की मीनाकारी की गई है। दो अंगूठियों में हीरे और रतन जड़े हैं। एक में नीला पन्ना जड़ा है—दूसरी अंगूठी सोने की टेढ़ी-मेढ़ी वंकिम जालियों की बेलों से सजी हैं।

२६. पाँव में विभिन्न आकार के अलंकृत कड़े हैं। उनमें नीले नीलम जड़े हैं। कड़े के ऊपर लगी हुई पहुँची बहुत ऊंची है, जो अपनी चमक दिखा रही है।

२७. इसके बीच में माणिक और चतुर्दिक मोती है। जहां पाँच रत्नों की नीलिमा है। उन रत्नों में से फूटती आभा इस तरह की है कि वह ज्योति आकाश में भी नहीं समाती।

२८. चन्दन से चर्चित और सुवासित अंग कितने कमनीय हैं। कोहनी के ऊपर मणिजटित बाजु-बंध है। उसमें सोने की जरी वाले दो फुंदने लटक रहे हैं। उस शोभा के बारे में क्या बताऊं।

२९. उनके मुखारविंद और दोनों कपोलों का लावण्य तो देखो, उसका वर्णन नहीं हो सकता। आधे क्षण के विलगाव से भी चित्त उद्विग्न और उदास हो जाता है।

३०. हंसते हुए मुंह और टोढी की सुंदरता, होंठों का रंग, और अनार के दानों की भांति दांत तथा कलियों की तरह लाल अधरों पर मुस्कुराहट हैं।

३१. मुख के ऊपर नासाभूषण में निर्मल मोती लटक रहा है और बेसर में लाल। कानों के बुन्दे बड़े मोहक हैं। उनकी आभा गालों पर झलक रही है।

३२. कर्णफूल काफी ऊंचे है, गहरी नीली चुन्नी पर पिरोये मोती अपनी आभा बिखेर रहे हैं। ऐसी झाँकी को देख-देखकर जीव शांति पाता है।

खीटलडी वालाजी केरी, जीव करे जोयानी खांत ।
माणक मोती हीरा पुखराज, कुंदन मांहें जडिया भांत ।। ३३

आंखडली अणियाली सोभे, मध्य रेखा छे लाल ।
निरखत नयण कोडामणां, जीवने ताणी ग्रहे ततकाल ।। ३४

मीठी पापन चलवे एक भांते, तारे तेज अपार ।
बेहूगमां भ्रकुटीनी सोभा, इंद्रावती निरखे करार ।। ३५

निलवट सोभे तिलकनी रेखा, नीली पीली गुलाल ।
बेहूगमां सुन्दर ने सोभे, रेखा मध्य विदका लाल ।। ३६

मस्तक मुकट सोहामणों, कांई ए सोभा अति जोर ।
लाल सेत ने नीली पीली, दोरी सोभित चारे कोर । ३७

ए ऊपर जव दाणानी सोभा, एह जुगत अदभूत ।
ते ऊपर वलो फूलोंनी जडतर, तेणां केम करी वरणवुं रूप ।। ३८

बीजा अनेक विधना फूल दोरी बंध, करे जुजवी जुगत झलकार ।
माणक मोती हीरा पुखराज, पिरोजा पांना पांचो सार ।। ३९

लाल लसणियां नीलवी गोमादिक, साढ सोलू कंचन ।
फूल पांखड़ियों मनि जवेरनी, मध्य जड्या रतन ।। ४०

मुकट ऊपर ऊभी जवेरोंनी हारों, तेमां रंग दीसे अपार ।
अनेक विधनी किरणज उठे, ते तां ब्रह्मांड न माए झलकार ।। ४१

चार हारना चारे फुमक, तेहेना जुजवी जुगतना रंग ।
लाखी लिबोई ने स्याम सेत, सुंदर ने ए सोभंत । ४२

वण गूंथी एक नवल भांतनी, गोफणडे विविध जडाव ।
फरती करती घूंघरडी, ने बोलंती रसाल ।। ४३

३३. बाला जी के ललाट पर पड़ा कुंदन का टीका शोभा पा रहा है, जिसे मन बार-बार देखना चाहता है। उसमें भी माणिक्य, मोती, हीरा, पुखराज आदि रत्न जड़े हैं।

३४. उनकी वंकिम और अनियारी आंखें शोभामंडित हैं। उनमें लाल डोरे खिंचे हुए हैं। उन मुस्कुराती आंखों को देखते ही जीव तत्काल विमोहित हो जाता है।

३५. प्यारी पलकें एक-साथ उठती-गिरती हैं। आंखों की पुतली (तारे) में अपार तेज है। दोनों भृकुटियों की सुशोभा को देखकर इन्द्रावती को चैन मिलता है।

३६. माथे पर तिलक की रेखा शोभाप्रदायक है। दोनों और नीले पीले गुलाल का टीका है और बीचो बीच लाल बिंदी चमक रही है।

३७. सिर पर सुहाना मुकुट है, जिसकी शोभा विलक्षण है। लाल, श्वेत, नीली और पीली डोर से यह चारों कोनों पर बंधा है।

३८. उनके ऊपर जौ की तरह के सोने के दानों से सुसज्जित जो आधार है, वह विलक्षण शोभा युक्त है। उस पर फूलों की बेल कढ़ी है, उसके सौंदर्य का वर्णन मैं करूं तो कैसे ?

३९. इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अलंकृत फूल—पंक्तियों में शोभा पा रहे हैं, जो अपनी अलग-अलग रूप छटा बिखेर रहे हैं। इनमें मोती, माणिक्य, हीरे, पन्ना, पोखराज और पिरोजा तथा अन्यान्य रत्न भी अच्छी तरह जड़े हुए हैं।

४०. लाल, मुक्ता, नीलम, गोमद आदि उत्तमोत्तम रत्न अलंकारों में जड़े अपनी आभा छितरा रहे हैं। फूलों की पंखुरियाँ—मणियों और जवाहरों जैसे रत्नों से जटित हैं।

४१. मुकुट के ऊपर जवाहरों की सरणियां हैं। उनमें असंख्य रंगों की विच्छिति है। उनमें से निकलतीं-फूटतीं ज्योति-किरणों की आभा ब्रह्मांड में भी नहीं समाती।

४२. चार हारों के फुंदने अलग-अलग रंग के हैं— तेज लाल (लाखी), नारंगी, काले और सफेद। ये रंग पर्याप्त शोभा संपन्न है।

४३. इन डोरों की भी अद्‌भुत छटा है। यह चोटी-सी गुंथी हैं। इनके फुदनों पर विभिन्न प्रकार के जवाहरात जड़े हैं। इनमें छोटी -छोटी घूघरियाँ भी लगी हैं, जिनके डोलते-हिलते ही मधुर स्वर थिरकने लगता हैं।

गोफणडे फुमक जे दीसे, तेनो लाल कसवी रंग ।
जडाव मांहें माणक ने मोती, पांना पुखराज नंग ।। ४४

वासा ऊपर वेंण लेहेकती, सोभा ते वरणवी न जाए
खुसबोए मांहें रंग भीनो, बीडी तंबोल मुख मांहें ४५

नवल वेष ल्याव्या एक भांतना, कसवटिएं बांसली लाल ।
अधुर धरीने ज्यारे वेण वगाडे, त्यारे चितडा हरे तत्काल । ४६

वेण तणी विगत कहूं तमने, कोरे कांगरी जडाव ।
मोहोवड नीला मध्य लाल, छेडे आसमानी रंग सोहाए ।। ४७

वस्तर बरणव्या सबद माहें सखियो, वली वरणवी भूषणनी भांत ।
रेसम हेम कह्या में जवेरना, पण ए छे वसेक कोए धात ।। ४८

सज थया सिणगार करीने, रास रमवानूं मन मांहे ।
साथ सकल मारा पिउ पासे आव्यो, इंद्रावती लागे पाए ।। ४९

दई प्रदखणा अति घणी, साथें कीधां डंडवत परणाम ।
हवे करसूं रामत रंग तणी, अने भाजसूं हेंडानी हाम ।। ५०

प्रकरण ।। ८ ।। चौपाई ।। ३११ ।।

उथला—राग मेवाडो

हवे वालैयो वाणी एम उचरेजी, कहे सांभलजो सहू साथ ।
पतिव्रता स्त्री जे होए, ते तो नव मूके घर रात ।।
रे सखियो सांभलो ।। १

तमे साथ सकल मली सांभलो, हूं वचन कहूं निरधारजी ।
तमे वेण मारो श्रवणे सुण्यो, घर मूक्या ऊभा वारजी ।। २

कुसल छे कांई व्रजमांजी, केम आवियो आणी वेरजी ।
उतावलियों उजाणियोजी, कांई मूक्या कारज घेरजी ।। ३

४४. वेणी बंध के फुंदने लाल रंग के हैं। उनमें मोती, माणिक्य और पोखराज आदि अनमोल रत्न जड़े हुए हैं।

४५. पीठ पर जो वेणी सुशोभित है उसकी सुषमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। मुख में रंग-रस भीने खुशबू दार पान का बीड़ा है।

४६. यही नहीं, प्रियतम ने कमर में लाल वंशी खोंस कर एक नया रूप-विन्यास किया है। वे उस वंशी को अपने होंठों पर रखकर तान छेड़ते हैं तो चित्त एकदम व्याकुल हो उठता है।

४७. ऐसी वंशी का विवरण क्या दूँ—इसके किनारे पर जड़ाऊ कड़ी लगी हुई है। जिसके आगे नीला, बीच में लाल और पुनः आसमानी रंग अपनी शोभा बिखेरता है।

४८. हे सखियों, मैंने पहले वस्त्रों और स्वर्णाभूषण आदि का विविध वृत्तांत प्रस्तुत किया। फिर रेशमी वस्त्र और आभूषणों तथा जवाहरों आदि का नाम-विवरण दिया। लेकिन याद रखना ये सभी विशेष धातु और पदार्थों के हैं।

४९. शृंगारोपरांत सभी सज-धज कर तैयार हो गईं। तब सब के मन में रास खेलने की इच्छा बलवती हो उठी। सारी सुन्दर सखियाँ प्रियतम के सन्निकट आयीं। इन्द्रावती ने चरणों में प्रणाम निवेदित किया।

५०. फिर प्रदक्षिणा देकर दंडवत प्रणाम ज्ञापित किया। अब हम सब आनंदपूर्वक खेल खेलेंगे और अपनी सभी अभिलाषाएं पूरी करेंगे।

प्रकरण—९

उथला—उल्टे वचन

१. अब प्रियतम कहते हैं कि हे सखियों सुनो, जो भी पतिव्रता स्त्री होती है, वह रात के समय अपना घर नहीं छोड़ती।

(ऐ सखियो, सुनो—)

२. 'तुम सब समवेत होकर सुनो और इन वचनों पर ध्यान दो। मैं जो सत्य वचन कह रहा हूँ। तुम सबों ने मेरी वंशी की टेर सुनी और सुनते ही तत्काल अपने-अपने घरों को छोड़ दिया।

३. ब्रज में सब कुछ सामान्य तो है! तुम सब यहाँ कैसे चली आई? उतावली और अनमनी होकर अपने-अपने घरों के सारे कामकाज छोड़कर यहाँ दौड़ी आई?

किहे रे परियाणे तमें निसरयाजी, कांई जोवा बृंदावंन ।
जोयूं वन रलियामणूं, कांई तमे थया प्रसंन ।। ४

हवे पुरे पधारो आपणेंजी, कांई रजनी ते रूप अंधार ।
निसाचरी जीव बोलसेजी, त्यारे थासे भयंकार ।। ५

निसाएं नारी जे निसरेजी, कांई कुलवंती ते न केहेवाए ।
न्यात पर न्यात जे सांभलेजी, कांई चेहरो तेमां थाए ।। ६

सखियो तमे तो कांई न विमांसियूंजी, एवडी करे कोई वात ।
अणजाणे उठी आवियूंजी, कांई सकल मलीने साथ ।। ७

ससरो सासु मात तातनी जी, कांई तमे लोपी छे लाज ।
तमे सरम न आंणी केहेनी, तमें ए सूं कीधूं आज ।। ८

तमे पति तो तनारा ऊभा मूकियांजी, कांई रोता मूक्यां बाल ।
ए वचन सुणीने विनता टलवली, कांई भोम पडियो तत्काल ।। ९

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रहियो, कांई द्रढ करीने मन ।
काई बांक हसे जो आपणोजी, तो वालोजी कहे छे बचन ।। १०

वचन बाले सामा तामसियों, राजसियों फडकला खाए ।
स्वांतसिएं बोलाए नहीं, ते तां पडियो भोम मुरछाए ।। ११

एणे समे मही सखी ऊभी रही, कहे सांभलो घणीना वचन ।
सखियो कुलाहल तमे कां करोजी, कांई ऊभा रहो द्रढ करी मन ।। १२

सखियो भूलां छूं घणवें आपणजी, अने वली कीजे सामा रुदन ।
कलहो करो भोमे पडोजी, कां विलखाओ वदन ।। १३

४. तुम सब की-सब किसकी सलाह से यहां तक निकलकर चली आई ? क्या वृन्दावन देखने की इच्छा थी । अब तो इस सुन्दर वन को देखकर तुम्हारा जी आनंदित हो गया ।

५. अब अपने-अपने घरों को लौट जाओ । रात बहुत ही काली और अंधकार पूर्ण है । निशाचर और अन्य वन्य प्राणी पुकारने लगेंगे तो वन और भी भयंकर हो जायगा ।

६. फिर, जो सन्नारिया रात्रि में गृह-त्याग कर अन्यथा निकल पड़ती हैं, उन्हें कुलवंती नहीं कहा जाता । परिजन-पुरजन (रिश्तेदार आदि) जब यह सुनेंगे तो चर्चा चल निकलेगी । फिर तुम मुँह उठा न पाओगी ।

७. अरी सखियों क्या तुम्हें तनिक भी क्षोभ (विमर्ष) न हुआ ! ऐसा भी कोई करता है ! अनजाने में ही उठकर तुम सब एक साथ भला क्यों यहां चली आई ?

८. तुमने अपने सास-सुसर, माता-पिता किसी की भी परवाह न की । उनकी प्रतिष्ठा को मिटा दिया !—तुम्हें किसी की शर्म न आई । आज तुमने ऐसा क्योंकर किया ?

९. तुम अपने पति के सामने से ही उठकर चली आई, तुममें से कइयों ने अपने-अपने रोते बच्चों को छोड़ दिया ।—इन वचनों को सुनकर विनीत सखियाँ तड़प उठीं और कुछेक धरती पर गिर पड़ीं ।

१०. उनमें से कई सखियां वहीं खड़ी रहीं और उन्होंने अपना हृदय सुस्थिर कर लिया । हम में अवश्य ही कोई त्रुटि रह गयी होगी, जिसके लिए प्रियतम हमें ऐसे वचन सुना रहे हैं ।

११. तामसियों ने बालाजी के प्रश्नों का उत्तर दिया । राजसी तड़प-तड़प उठी । सात्विकी सखियां कुछ कह न पाईं । वे तो मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं ।

१२. इनमें से कुछेक सखियाँ हिम्मत कर खड़ी रहीं । श्यामाजी ने कहा— तुम धनी जी की वाणी को समझो । तुम व्यर्थ का कोलाहल क्यों करती हो ! अपने चित्त को संभाल कर खड़ी रहो ।

१३. सखियों—देखो, हम सबों से ही बड़ी भूल हुई है । लेकिन सब-कीसब इस तरह रोती बिसूरती कलह मचाती और पछाड़ खाती क्यों अपने को हलकान कर रही हो !

पीउजी पधारया प्रभातमां आपण आव्या छूं अत्यारे ।
ते पण तेडीने वाले काढियां, नहीं तो निसरतां नहीं क्यांरे ॥ १४

पाछल आपण केम रहूं, जो होए कांई वालपण ।
केम न खीजे वालैयो, ज्यारे सेवा भूल्या आपण ॥ १५

वालाजी केहेवुं होए ते केहेजो, कांई अमने निसंक ।
अमे तम आगल ऊभा छूं, कांई रखे आंणो ओसंक, वालेयो सांभलो ॥ १६

सखियो तम माटे हूं एम कहूं, कांई तमारा जतन ।
रखे कोए तमने बांकूं कहे, त्यारे दुख धरसो मन ॥ १७

सखियो तमे जेम घर ऊभा मूकियां, तेम माणस न मूके कोए ।
एम व्याकुल थई कोई न निसरे, जो ग्यान रुदेमां होए ॥ १८

सखियो तमे पाछा वलो, अधखिन म लावो वार ।
मनडे तमारे दया नहीं, घेर टलवले छे बाल ॥ १९

ए धरम नहीं नारी तणोंजी, हूं कहूं छूं बारम्बार ।
हवे घरडे तमारे सिधाविएजी, घेर बाटडी जुए भरतार ॥ २०

वालैया हजी तमारे केहेंवु छे, के तमे कहीने रह्या एह ।
ते सरवे अमे सांभल्यूंजी, तमे कह्यूं जुगते जेह ॥ २१

सखियो हजी मारे केहेवुं छे, तमें श्रवणा देजो चित ।
मरजादा केम मूकिए, आपण चालिए केम अनित ॥ २२

हवे वली कहूं ते सांभलो, कांई मोटूं एक द्रष्टान्त ।
वेद पुराणे जे कह्यूं, कांई तेहेनूं ते कहूं व्रतांत ॥ २३

१४. हमारे प्रिय तो प्रभात से ही यहाँ आ उपस्थित हैं। हम तो अभी आ पाई हैं। यह तो उनकी सदाशयता है कि उन्होंने तुम्हारा आह्वान किया है, वर्ना अब तक हम यहां न आ पातीं।

१५. यदि स्वामी के लिए हमारे मन में स्नेह कृतज्ञता का भाव होता तो हम अबतक पीछे नहीं पड़ी रहतीं। हमने सेवा का दायित्व वहन न कर उन्हें भुला दिया—तब भला स्वामी क्यों न अप्रसन्न हों।

१६. 'हे स्वामी—सुनिये, आपको जो भी कहना हो वह निःसंकोच कह डालिये। हम आपके सम्मुख विनीत खड़ी हैं अपने मन की बात स्पष्ट कह दीजिये।'

१७. '—हे सखियों, मैं तुम्हारे कल्याणार्थ ही वह रहा हूं। कुछ तो अपने प्रयत्न करो। अन्यथा फिर तुम्हें कोई भला-बुरा कहेगा तो तुम्हें दुःख पहुंचेगा।

१८. हे सखियों, तुमने जिस प्रकार अपने-अपने घरों को छोड़ दिया और बाहर निकल पड़ीं, उस प्रकार कोई भी मनुष्य अपना घर नहीं छोड़ता। जिसके हृदय में तनिक भी विवेक होता है वह इस प्रकार व्याकुल होकर घर से निकल नहीं पड़ता।

१९. इसलिए हे सखियों, अब क्षण भर की देर न करो। पीछे घर लौट जाओ। क्या तुम्हारे मन में दया का लेश नहीं—घर में बच्चे बिलख-बिलख कर रो रहे हैं।

२०. मैं बार-बार यही दोहरा रहा हूँ कि यह नारी का धर्म नहीं है। अच्छा हो, तुम सब अपने अपने घर लौट जाओ। घर पर तुम्हारे पति तुम्हारी राह देख रहे हैं।

२१. सखियों ने निवेदन किया—'हे प्राण प्रियतम ! आपको जो कुछ कहना था कह चुके या कुछ कहना बाकी भी है ! अबतक आपने जो कुछ युक्ति-पूर्वक कहा वह सब हमने सुन लिया।

२२. स्वामी श्रीकृष्ण ने कहा—'हां मुझे और भी कहना है—मैं जो कुछ कहता हूँ उसे कान (ध्यान) देकर सुनो। हम अनीति की राह पर चलकर अपनी मर्यादा को क्यों छोड़ें ?

२३. मैं इसे एक दृष्टांत से पुष्ट करके कहना चाहता हूँ—ताकि तुम सब अब ध्यान से सुनो। मैं बेद और पुराणों से ही वृत्तान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ—

भवरोगी होए जनमनो, जो एहेवो होए भरतार ।
तोहें तेणे नव मूकवो, जो होए कुलवन्ती नार ।। २४

जो पत होए आंधलो, अने वली जड होए अपार ।
तोहे तेणे नव मूकवो, जो होए कुलवन्ती नार ।। २५

जो पत होए कोढ़ियो, अने कलहो करे अपार ।
तोहे तेणे नव मूकवो, जो होए कुलवन्तो नार ।। २६

जो पत होए अभागियो, अने जनम दारिद्री अपार ।।
तोहे तेणें नव मूकवो, जो होए कुलवन्ती नार ।। २७

जो पत होए पांगलो, बीजा अवगुण होए अपार ।
तोहे तेणे नव मूकवो, जो होए कुलवन्ती नार । २८

खोड होए भरतारमां, अने मूरख होए अजाण ।
तोहे तेणे नव मूकवो, एम कहे छे वेद पुराण ।। २९

ते माटे हूं एम कहूं, जे नव मूकवो पत ।
ततख्यण तमे पाछा वलो, जो रुदें होए कांई मत ।। ३०

हवे साथ कहे अमें सांभल्या, कांई तमारा वचन ।
हवे अमें कहूं ते सांभलो, कांई द्रढ़ करीने मन ।। ३१

पत तो वालैयो अमतणो, अमें ओलखियो निरधार ।।
वेण सांभलतां तमतणी, अमने ख्यण नव लागी वार ।। ३२

अमें पीहर पख नव ओलखूं, नव जाणूं सासर वेड ।
एक जाणूं मारो वालैयो, नव मूकूं तेहेनी केड ।। ३३

पत तो केमे नव मूकवो, तमे अति घणूं कह्यूं रे अपार ।
तमे साख पुरावी वेदनी, त्यारे केम मूकूं आधार ।। ३४

तमे कह्यूं पत नव मूकवो, जो अवगुण होए रे अपार ।
तमे रे तमारे मोहें कह्यूं, तमे न्याय रे कीधों निरधार ।। ३५

२४. कुलवन्ती स्त्री, अपने पति को, चाहे वह जन्म से ही रोगी क्यों न हो—त्याग नहीं सकती।

२५. चाहे वह अन्धा ही क्यों न हो, और जड़ (मूर्ख) ही क्यों न हो—तो भी कुलवंती स्त्री उसे नहीं छोड़ती।

२६. भले ही वह कोढ़ी हो और अन्यथा कलह खड़ा करने वाला हो—तब भी कुलवन्ती नारी उसे नहीं छोड़ती।

२७. अगर वह अभागा हो और जन्म से ही अनन्य दरिद्र हो—तब भी कुलवन्ती नारी उसे नहीं छोड़ती।

२८. यदि वह अपाहिज हो, पिंगल या विकृतांग हो तो भी कुलवन्ती नारी उसे नहीं त्यागती।

२६. पति में खोट हो या उसमें अन्यान्य अपार दुर्गुण हों—वह मूर्ख और अज्ञानी हो—तो भी कुलवन्ती स्त्रियां अपने पति को नहीं छोड़तीं, ऐसा वेद-पुराण भी कहते हैं।

३०. इसीलिए मैं तुम सब से यही कहना चाहता हूँ कि अपने पति को कदापि न छोड़ो। इसी क्षण पीछे लौट जाओ। यदि तुममें तनिक भी बुद्धि विवेक हो।'

३१. सखियों ने फिर कहा—'आपने जो अनुदेश दिया, उसे हमने सुन लिया। अब हमारी बातें भी ध्यान देकर सुनिये और विचार कीजिए।

३२. हे स्वामी, हमने अपने पति को पहचान लिया—हमने उन्हें देख भी लिया। आप की वंशी की तान सुनते ही हम निकल भागीं—एक क्षण की भी देर नहीं हुई।

३३. हमने न तो नैहर की ओर और न ही ससुराल की तरफ ही ध्यान दिया। तो केवल प्रिय-पथ और प्रियतम को जानती हैं। इसीलिए किसी प्रकार उनका पीछा छोड़ना नहीं चाहतीं—छोड़ भी नहीं सकतीं।

३४. यह तो आपने बार-बार दोहराया ही है कि पति कैसा भी हो उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जिस आशय को वेद पुराणों की साक्षी देकर संपुष्ट किया गया हो—उसे भला छोड़ा भी कैसे जाए।

३५. फिर आपने यह भी कहा कि पति को कदापि नहीं छोड़ना चाहिए, भले ही वह अपार अवगुणों वाला हो। यह तो आपने अपने ही मुँह से—(हमारे ही पक्ष में) न्याय कर दिया है।

अवगुण पत नव मूकवो, तो गुण धणी मूकिए केमजी ।
तममां अवगुण किहां छे, तमे कां कहो अमने एमजी ।। ३६

एवा हलवा बोल न बोलिए, हूं वारूं छुं तमने ।
ए वचन केहेवा नव घटे, कांई एम केहेवुं अमने ।। ३७

अमे तो आव्या आनन्द भरे, कांई तमसूं रमवा रातजी ।
एवा बोल न बोलिए, अमने दुख लागे निघातजी ।। ३८

अमें किहां रे पाछां वली जाईए, अमने नथी बीजो कोई ठामजी ।
कहोजी अवगुण अमतणां, तमे कां कहो अमने अेमजी ।। ३९

अमे तम विना नव ओलखूं, बीजा संसार केरा सूलजी ।
चरणे तमारे वालैया, कांई अमारा छे मूलजी ।। ४०

फल रोप्यो आंबो तमतणों, बाड कांटा कुटंम पाखल ।
बीजो झांपों रखोपूं करे, कांई स्यो रे सनमंध तेसूं फल ।। ४१

फूल फूल्या जैम वेलडी, ते तां विकसे सदा रे सनेह ।
वछूटे ज्यारे वेलथी, त्यारे ततखिण सूके तेह ।। ४२

जीव अमारा तम कने, कांई चरणे बलगा एम ।
फूल तणी गत जाणजो, ते अलगां थाए केम ।। ४३

तेम जीव अमारा बांधिया, जेम पडिया मांहें जाल ।
ख्यण एक सांमू नव जुओ, तो पिंडडा पडे ततकाल ।। ४४

जीव अमारा चरणे तमतणे, ते अलगां थाए केम ।
जल माहें जीव जे रहे, कांई मीन केरा वली जेम ।। ४५

वाला तमे अमसूं एम कां करो, अमे वचन सह्या नव जाए ।।
ख्यण एक सांमूं नव जुओ, तो तरत अदृष्ट देह थाए ।। ४६

३६. फिर ऐसी स्थिति में, जब कि अवगुणी पति को छोड़ना लोक या वेद सम्मत नहीं है तो आपके जैसे सर्वथा गुण की खान और योग्य स्वामी को कैसे छोड़ा जा सकता है ! हमें बताइए कि आपमें क्या कोई ऐसा अवगुण है ? फिर आप हमें क्यों विचलित कर रहे हैं !

३७. हमें इतने कठोर वचन न कहिए । हम आपको मना करती हैं । ये वचन उपयुक्त प्रासंगिक नहीं हैं । फिर भला आप ऐसा क्यों कहते हैं ।

३८. हम तो आनंद हेतु यहाँ उमंगकर आईं कि आपके साथ हम रात भर लीला-विहार करेंगे । जब आप हमें ऐसे वचन कहते हैं तो हमें दुःख और गहरा आघात सहन करना पड़ता है ।

३९. अब हम पीछे कहां लौटें भला ! हमारे लिए तो अन्यत्र कोई स्थान नहीं । हमारा दोष क्या है—वह बताए बिना आप हमें ऐसा क्यों कहते है ?

४०. हमने तो सिवा आपके और किसी को अपना नहीं माना । और आप जैसा न किसी को देखा, न पाया । हे प्रियतम, आपके श्रीचरणों में ही तो हमारा मूल स्थान है ।

४१. आपने आम का पेड़ (आनंद का बाग) लगाया । तदुपरांत चतुर्दिक समस्त परिवार आदि की काँटों की बाड़ लगा दी । अतः वे तो केवल बाग के रखवाले भर हुए । उनका फल पर भला क्या अधिकार है ?

४२. फूल जिस प्रकार किसी बेल पर उसके प्रेम-रस में पगकर खिलता-फूलता है, वही फूल जब बेल से अलग छूट कर गिर पड़ता है तो तत्काल सूख जाता है ।

४३. हमारी जीवन बेल भी तो आपके श्री चरणों से लिपटी हुई है । फूल की की गति आप जानते ही हैं, वह अलग रह भी कैसे सकता है ?

४४. उसी प्रकार हमारा जीव भी आपके श्रीचरणों में है, वह आपसे अलग कैसे हो ? वह तो जाल में पड़ा है । एक क्षण भी जीवन (प्रदायक) को न देखें तो तत्क्षण अपना शरीर छोड़ दे ।

४५. हम तो आपके चरणों की शरण में आ पड़ी हैं—हमें अपने से अलग मत कीजिये । यह जीव मछली की तरह (आपके स्नेह) जल से अलग नहीं रह सकता ।

४६. हे प्रभु, आप हमसे ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं । हमसे आपके ये वचन सहे नहीं जाते । यदि आप हमारी तरफ़ नहीं देखेंगे तो तुरन्त ही हमारी देह छूट जायगी ।

निखर अमारी आतमा, अने निठुर अमारा मन ।
कठण एवा तमतणां, अमे तो रे सह्या वचन ॥ ४७

अम माहें कांई अमपणूं, जो होसे आ वार ।
तो वचन एवा तमतणां, अमें नहीं सांभलूं निरधार ॥ ४८

सखिएं मनमां वचन विचारियां, कांई प्रेम वाध्यो अपार ।
जोगमाया अति जोर थई, कांई पाछी पडियो तत्काल ॥ ४९

ततखिण वालें उठाडियों, कांई आवीने लीधी अंग ।
आनन्द अति वधारियो, कांई सोकनो कीधो भंग ॥ ५०

वालो जी कहे छे वातडी, तमे सांभलजो सहू कोए ।
में जोयूं तमारूं पारखूं, रखे लेस मायानो होए ॥ ५१

ओसीकल वचन वालें कह्या, कांई ते में न कहेवाए ।
सुकजोएं निरधारियूं छे, पण ते में लख्यूं न जाए ॥ ५२

ए वचन श्रवणे सुणी, कांई मनडा यथा अति भंग ।
वाला एम तमे अमने कां कहो, अमें नहीं रे खमाए अंग ॥ ५३

कलकलती कम्पमान थैयो, कांई ततखिण पडियो तेह ।
आवीने उछरंगे लीधियो, कांई तरत वाध्यो सनेह ॥ ५४

आंखडिएं आंसू ढालियां, तमे कां करो चितनो भंग ।
आंसूडा लोऊं तमतणां, आपण करसूं अति रंग ॥ ५५

सखी पूरूं मनोमथ तमतणां, कांई करसूं ते रंग विलास ।
करवा रामत अति घणी, में जोयूं मायानों पास ॥ ५६

सखी वृन्दावन देखाडूं तमने, चालो रंग भर रमिऐ रास ।
विविध पेरेनी रामतो, आपण करसूं मांहों मांहें हास ॥ ५७

तमे प्राणपें मूने वालियो, जेम कहो करूं हूं तेम ।
रखे कोए मनमां दुख करो, कांई तमे मारा जोवन ॥ ५८

॥ प्रकरण ॥ ९ ॥ चौपाई ॥ ३६९ ॥

४७. हमारी आत्मा तो अत्यन्त ढीठ है और मन बड़ा कठोर है। तभी तो आपके निष्ठुर वचनों को सह गया।

४८. हममें तनिक भी अपनत्व होता तो निश्चित ही आपके इन कठोर वचन को न सुन पातीं।

४९. इतना कह कर सखियां विचार कर ही रही थीं कि इसी बीच योग माया के प्रताप से उनके मन में प्रेम का ज्वार (ज़ोर) बढ़ा और वे स्वभावत: पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

५०. तत्क्षण वल्लभ ने उन्हें आगे बढ़कर उठा लिया। उन्होंने उन्हें आलिंगन में बांध लिया और उनके आनंद को बढ़ाते हुए उनके शोकों का भंजन किया।

५१. स्वामी ने पुन: कहा तुम सब सुनो 'मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था कि कहीं तुम्हारे मन में माया का कोई संस्कार या लेश तो नहीं रहा।'

५२. प्रियतम ने सखियों को तनिक खेद व्यक्त करने वाले वचन कहे, जिनको उद्धृत करना मेरे लिए संभव नहीं। शुकदेव मुनि ने श्रीमद्भागवत में जितना कुछ विवरण दिया है—मैं उसे यहां व्यक्त नहीं कर पाऊंगी।

५३. तथापि, जितना कुछ कहा गया था—उन वचनों को सुनकर मन टूट गया। 'हे प्रीतम, आप क्यों कर ऐसा आक्षेप करते हैं! हमसे ये वचन सहन नहीं होते।'

५४. इनमें से कुछ सखियाँ बिलखती हुई काँपने लगीं और उनमें से कई एक मूर्च्छित हो गईं। उसी क्षण प्रभु ने उन्हें आगे बढ़कर थाम लिया। जिससे उनके मन में तत्काल प्रेमातिरेक बढ़ गया।

५५. आँसू बहाकर तुम सब अपने जी को छोटा न करो। आओ मैं तुम्हारे आंसुओं को पोंछ दूं और तुम लोगों के संग आनन्द पूर्ण खेल रचाऊं।

५६. 'हे सखियों, मैं आपके सारे मनोरथ पूरे करूंगा। वैविध्य और आनंद पूर्ण खेल रचाऊंगा। इन समस्त खेलों में प्रवृत्त करने के पूर्व मैं यह देखना चाहता था कि तुममें माया का संस्कार (लेश) तो नहीं रहा।

५७. सखियों, चलो तुम्हें वृन्दावन-वैभव का परिदर्शन कराऊं। हम विविध प्रकार के आनंदपूर्ण खेलों में हंसते-मुस्कुराते सम्मिलित होंगे और इन कौतुक पूर्ण खेलों में हास-परिहास करेंगे।

५८. तुम मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हो। तुम सब जैसा कहोगी, मैं वैसा ही करूंगा। अब अपने मन में किसी प्रकार का दु:ख न करो। क्योंकि तुम्हीं मेरी जीवन हो।

वृन्दावन देखाडयूं—राग धन्या

जीवन सखी वृन्दावन रंग जोईएजी, जोईए अनेक रंग अपार ।
विगतें वन देखाडूं तमने, मारा सुन्दर साथ आधार ।। १

आंबा आंवलियो ने आसोपालव, अंजीर ने अखोड ।
अननास वे आंवलियो दीसे, चारोली चांपा छोड ।। २

साग सीसम ने सेमला सरगू, सरस ने सोपारी ।
सूफ सूकड ने साजडिया, अगर ऊंचो अति भारी ।। ३

बड पीपल ने बांस बेकला, बोलसरी ने वरणां ।
केवडी केल कपूर कसूंबो, केसर झाड अति घणां ।। ४

मेहेंदी नेवरी ने मलियागर, डाडम डोडंगी द्राख ।
बीयो बदाम ने बीली बिजोरी, रुद्राख ने भद्राख ।। ५

पीपली पारस ने पारजातक, साले ने सीसोटा ।
फणसतून ने तीन तेवरिया, ताड छे अति मोटा ।। ६

रायण रोइण रामण रायसण, लिवडा लिवोई लवंग ।
तज तलसी ने आदू एलची, वाले अति सुगन्ध ।। ७

केवडो काथो ने कपूर कांचली, भरणी ने भारंगी ।
सेवण सेरडी सूरण सिगोटी, नालियरी नारंगी ।। ८

अरणी ऊंमर वेहेडा दीसे, जांबू ने वली जाल ।
गूंदी गूंदा गुंगल गंगोटी, गहुला ने गिरमाल ।। ९

ऊंवरो अगथ ने आंवलियो, अकलकरो अम्रतजी ।
करमदी ने कगर करंजी, कदम छे अदभुतजी ।। १०

बूंद बकान ने कोठ करपटा, नेगोड ने वली नेत्र ।
मरी पानरी ने मरुओ, अकोल ने आकसेत्र ।। ११

प्रकरण—१०

वृन्दावन की शोभा

१. हे मेरे जीवन की आधार सखियो, वृन्दावन की शोभा देखो। उसमें अनेक रंग हैं। मैं आपको हर तरह से बन की शोभा दिखाता हूँ।

२. वृन्दावन में आम, इमली, अशोक वृक्ष, अंजीर, अखरोट, अनानास, चिरोंजी और चंपा के पौधे हैं।

३. सागवान, शीशम, सेमल, कौंसा, सरसों, सुपारी, सौंफ, चंदन और अगर के ऊंचे वृक्ष हैं।

४. वढ़ पीपल वास वेकल मोलश्री कई रंग की हैं, केवड़ा का पौधा, केला कपूर कसंबी केसर आदि के झाड़ बहुत ज्यादा हैं।

५. वहाँ मेंहदी दारचीनी अनार अंगूर हैं। और बादाम बेल बीजौरा रुद्राक्ष और भद्राक्ष के वृक्ष है।

६. पारस, पीपल, पारिजात, शाल, सींसोटा, कटहल, तेवरिया और ताड़ के ऊंचे वृक्ष हैं।

७. वहाँ कई रंगों के फल—रायण, रोसन रायसन हैं। नीम है, निबौली है। लवंग के वृक्ष हैं। तेजपात, तुलसी, अदरक, इलायची आदि के पौधे हैं। जिनकी सुगंध व्यापक है।

८. केवड़ा, काथा, कपूर, कांचलीं भरणी और नांरगी के पेड़ है। सरमल, गन्ना, जिमीकंद, सिगोटी, नारियल और सन्तरा के भी।

९. हवन काष्ट, अरणी, कदम्ब, बहेड़ा है, फिर जामुन और जाल है इनमें लसूड़ा आदि लस्सेदार और दवाईयों के काम आन वाले पौधे भी यथा हैं गूंदी, गूदा, गुगंल गिगोटी गहुला और गिरमाल।

१०. गूलर, अगस्त, इमली, आँवला और अक्लबर—जिससे रेशम पर रंग चढ़ाया जाता है वह पोधा, मीठे फलों के वृक्ष और बेलें, करोंदा करमदी कगर करोंची ओर कदम्ब जैसे वृक्ष शोभित हैं।

११. बूद, बकान, कोट, करपटा, निओड़, काली मिर्च, पानरी महुआ, आक आदि के कड़वे सुतीक्षण और रोएंदार पोधे हैं।

कमल कांकडी ने झाड चीभडी, बोरडी ने वली बहेडा ।
हिरवरण हिमज हरडे मोटी, मोहोला ने वली महूडा ।। १२

धामणां धावडी ने बरीआली, सफल जल भोज पत्र ।
खसखस फूल दीसे एक जुगते, छोत्रा ऊपर छत्र ।। १३

माया मस्तकी ने बरस बडबोहोनी, सकरकन्द संदेसर ।
करोड भरोड ने पलासी, अगथने आक सुन्दर ।। १४

टेवरू कुंदरू ने कंबोई कांकसी ने कलूंभ ।
खेजड खजूरी ने खाखर दीसे, केसू तरणी अति लूंब । १५

परवती परवाली ने पाडर, पान वेल अति सार ।
आल अकोल ने बेर उपलेटा, दुधेला ने देवदार ।। १६

चंबेली ने चनी चनोटी, चंद्रवंसी चोली चीभडी ।
गलकी ने गिसोटी गोटा, गुलबांस ने गुलपरी ।। १७

जाई जुई ने जासू जायफल, जाए ने जावंत्री ।
सूरजवंशी ने सणगोटी, सूआ ने सेवंत्री ।। १८

कोली कालंगी कारेली, तुवडी ने तडबूची ।
कोठवडी ने चनक चीभडी, टीडूरी ने खडबूची ।। १९

गुलाबी ने कफी डोलरिया, दूधेली ने दोफारी ।
कमल फूल ने कनीअल केतकी, मोगरेमां झरमरी ।। २०

ओलिया वालोलिया ने परवालिया, इसक फाग वेल सार ।
आरिया तो अति उत्तम दीसे, जाणे कलंगे रंग प्रतकाल ।। २१

सेहेस्र पांखडीनों दमनो दीसे, सोवरण फूली मकरंद ।
वन सिणगार कीधो वेलडिऐं, जुजवी जुगतना रंग ।। २२

साक फल अंन अनेक विधना, कंदमूल मांहें सार ।
सारा स्वाद जुजवी जुगतना, वन फलिया रे अपार ।। २३

१२. कमलगट्टा, खीरा, खरबूजा, मतीरा—तरबूज़ की लतें तथा बेरी-बहेड़ा आदि तथा हरड वगेरह के पौधे श्रौर मोहला महुडा आदि के पेड़ वहां दिखाये ।

१३. धामणां, धावड़ी, सौंफ, भोजपत्र, खसखस के फूल सब सुन्दर छत्रों के समान बेलों में हैं ।

१४. आकर्षक और मोहवे के बड़े-बड़े वृक्ष यथा सकरकद, सदेसर करोड़ भरोड़ पलास अकथ सुन्दर आक है ।

१५. टेवरु कुंदरु कंवाई, कांकसी कलूभ खेजड़ खजुर खाखर केसु, देवदार के सुन्दर वृक्ष हैं ।

१६. परवती परवाली और पाडर पान की बेल, आल अकोट उमलेटा और केसू आदि के गुच्छे दिखाई दिये ।

१७. चमेली चनी चनोटी—काले लाल फूल चन्द्रवंशी चोली, चीभड़ी खरबूजे की वेल तोरी गुलाल गिसोटा गुलवांस श्रौर गुलपरी के सुन्दर फूलदार पौधे हैं ।

१८. जाई, जुई जांस, जायफल जावत्री सुरजदर्शी रुणगोटी सुआ और सेवत्री के वृक्ष है ।

१९. कोली कालंगी, कारेली, करेले की बेल, तोरी तरबूज और खरबूजे तथा कोठवड़ी चनक चीभड़ी टिंडोरा और खरबूजे के कई वेलें हैं ।

२०. गुलाब और कफ दूधेल और दो पत्तियों वाले कमल फल कनीअल केतकी, मोगरा भरमरी और सुन्दर फूल शोभा दे रहे हैं ।

२१. औलिया, परवालिया वाहोलिया और परवालियो प्रेमवेल बड़े सुन्दर है । श्रारिया तो इतना सुन्दर है, मानो प्रातःकाल में किसी कलगे का फल खिला हो ।

२२. हजार पांखुरी का गेंदा (हजार) सोने के रंग श्रौर ताजगी से भरा हुआ है । बेलें ऐसी दीखती हैं—मानो अलग-अलग रंगों के फूलों का शृंगार किये खड़ी हों ।

२३. सब्जी और फल हैं । विविध प्रकार के श्रेष्ठ कंद-मूल हैं । सब अच्छे स्वाद वाले और अच्छी तरह लगे हुये । बन अनेक तरह के सुन्दर फूलों से पुलकित मुस्करा रहा है ।

वन ऊपर वेलडिस्रो चढिस्रो, जो जो ते श्रा निकुंज ।
मंदरना जेम जुगते दीसे, मांहें श्रनेक विधना रंग ।। २४

व्रध आडी तरवरनी, डालो, जुगते वन कुलंभ ।
भोम ऊपर ऊभा फल लीजे, केटली कहूँ एह सनंध ।। २५

बोजो विध विधनी वनसपती मोरी, केटला लेऊं तेना नाम ।
जमुनाजीना त्रट घणूं रूडा, रूडा मोहोल बेसवाना ठाम ।। २६

बेहू कांठे वनसपती दीसे, झलूबे ऊपर जल ।
नेहेचल रंग सदा विध विधना, ए वचन छे श्रविचल ।। २७

कांठें जल ऊपर वेलडियो, तेमां रंग श्रनेक ।
फूलडे जल छाह्यो छे जुगते, विध विधना विसेक ।। २८

जमुनाजीना जल जोरावर, मध्य वहे छे नीर ।
वेहेतां जल बलेरे खजूरिश्रा, दरपण रंग जाणे खीर ।। २९

व्रन्दावन फूल्यूं बहू फूलडे, सोभा धरे श्रपार ।
वन फल उत्तम श्रति घणूं ऊंचा, कुसम तणां वेहेकार ।। ३०

रेत सेत सोभा धरे, कांई वृन्दावन मंझार ।
सकल कलानो चन्द्रमां, तेज धरा धरे अपार ।। ३१

गुंजे भमरा स्वर कोयलना, घूमे कपोत चकोर ।
सूडा बपैया ने वली तिमरा, रमे ते वांदर मोर ।। ३२

मांहें ते मृग कस्तूरिया, प्रेमल करे श्रपार ।
बीजा श्रनेक विधना पसू पंखी, ते रमे रामत अति सार ।। ३३

छूटक थड़ ने घाटी छाया, रमवाना ठाम श्रति सार ।
इंद्रावती बाई श्रति उछरंगे, श्रायत करे श्रपार ।। ३४

श्रारोग्या वन फल स्वादें, जल जमुना त्रट सार ।
व्रन्दावन वालें जुगतें देखाड्यं, श्रागल रही श्राधार ।। ३५

२४. कुंज वन के ऊपर बेलें चढ़ी हैं। शोभाशाली वन चतुर्दिक फैला हुआ है। वह निकुंज देखो—वह एक सुन्दर मन्दिर की तरह शोभायमान है, उसमें अनेक रंग है।

२५. वृक्षों के ऊपर बेलें चढ़ी हैं। वन बड़ा सुन्दर और सुहावना प्रतीत हो रहा है। पृथ्वी पर खड़े होकर इसका आस्वाद तो ले लो। इसका वर्णन कहां तक करूं?

२६. और कई तरह की वनस्पतियां फैली हुई है—उनके नाम कहां तक गिनाऊं? यमुना जी का किनारा बड़ा सुन्दर है। सुन्दर महल विराजने के लिये बने हैं।

२७. दोनों किनारों पर शोभित वनस्पति जमुना-जल के ऊपर प्रतिबिम्बित हो रही है। इस वृन्दावन के आनंद अविनश्वर, स्थायी और आलौकिक हैं।

२८. किनारे पर कई रंगों की बेलें छाई हुई है। फूलों से जल ढंका है। कई तरह के फूलों ने और विशेष शोभा कौशल से जल को ढंक दिया है।

२९. यमुना का जल बड़े जोर से बहता है। खजूर के पत्तों की तरह लहराता है। जल कांच की तरह निर्मल और स्वच्छ है।

३०. सारा वृंदावन तरह-तरह के फूलों से प्रफुल्लित है। वह बहुत ही शोभा युक्त है। वनों के अत्युत्तम फल दूर-दूर तक बहुत ऊंचे लगे हैं। फूलों की सुवास चारों और फैली है।

३१. वृन्दावन में रजत शुभ्र रेत बहुत शोभा देती है। सकल कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा से सारी पृथ्वी आलोकित हो रही है।

३२. भ्रमर गुंजरित हो रहे हैं। कोयल कुहुक रही है। कबूतर और चकोर घूम रहे हैं। तोता, पपीहा, पतंगे, बन्दर और मोर खेल रहे हैं।

३३. कस्तूरी-मृग वहां प्रेम-लीला-विहार कर रहे हैं। और भी कई तरह के पशु-पक्षी विभिन्न प्रकार के सुन्दर खेल खेल रहे हैं।

३४. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर चबूतरे और श्यामल छाया के नीचे केलि-कुंज वन हैं। इन्द्रावती बड़ी उमंग से भर कर वहां खेलने की अभिलाषा रखती है।

३५. वन के समस्त सुस्वादु फलों का स्वाद चखा। यमुना का जल और किनारे सुन्दर हैं। स्वामी ने आगे-आगे चलकर इस वृन्दावन को बहुत कुशलता-पूर्वक दिखाया।

एह सरूपने एह व्रन्दावन, ए जमुना अट सार ।
घरथी तीत ब्रह्मांडथी अलगो, ते तारतमे कीधों निरधार ।। ३६

प्रकरण १० ।। चौपाई ४०५ ।।

रामत पेहेली—राग कालेरो

वालें वेष लीधो रलियामणों, कांई करसूं रंग विलास ।
आयत छे कांई अति घणी, वालो पूरसे आपणी आस
सखीरे हम चडी ।। १

व्रन्दावन तो जुगते जोयूं स्याम स्यामाजी साथ ।
रामत करसूं नव नवी, कांई रंग भर रमसूं रास ।। २

सखी मांहों मांहें वात करे, आज अमें थया रलियात ।
वेष निरखीने नेत्र ठरे, आज करसूं रामत निघात ।। ३

वेष नवानों बागो पेहेर्यो, तेड्या व्रन्दावन ।
मस्तक मुकट सोहामणों, वेष ल्याव्या अनूपम ।। ४

भली भांतना भूषण पेहेर्या, वेण रसालज वाए ।
साथ सकलमां आवीने ऊभो, करसूं रामत उछाए ।। ५

तेवा भूषण ने तेवो बागो, नटवरनों लीधों वेष ।
घणां दिवस रामत कीधी, पण आज थासे वसेक ।। ६

रास रमवाने वालेंजी अमारे, आज कीधो उछरंग ।
नयणे जोई जोई नेह उपजावे, वारी जाऊं मुखारने विंद ।। ७

सखी इन्द्रावती एम कहे, चालो जैऐ वालाजी ने पास ।
कंठ वलाई मारा वालाजी संगे, कीजे रंग विलास ।। ८

३६. यह स्वरूप, यह वृन्दावन और यमुना का किनारा परम धाम और सम्पूर्ण सृष्टि, ब्रह्मांड से अलग है—ऐसा तारतम ज्ञान ने निश्चय करा दिया है।

प्रकरण—११

रामत पहली—रास का पहला खेल।

१. प्रियतम ने मनोहर वेष धारण किया है। अब हम सब वृन्दावन में रमण करेंगे। मन में सहज प्रतीति होती है कि स्वामी हमारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। हे सखी, हम पर तो इस बात का आनंद-ज्वार उमड़ आया है।

२. श्री श्याम और श्यामा जी के साथ वृन्दावन तो अच्छी तरह से देख लिया है। अब आनंद के साथ नई-नई रामतें—खेल—खेलेंगे।

३. सखियाँ आपस में बात करती हैं कि आज हम आनन्दित हो उठीं है। स्वामी का वेश देख कर नेत्र शीतल होते हैं। आज उनके साथ जोरदार खेल खेलेंगे।

४. आज उन्होंने नवीन ही बागा—पोशाक पहनी है। हमें उन्होंने इसीलिए वृन्दावन में बुलाया है। उन्होंने मस्तक पर सुहाना मुकट पहना है। अनुपम वेश धारण किया है।

५. वे आभूषण भली-भाँति धारण हुए किये हैं। मधुर वंशी बजाते हैं। सुन्दर सखियों के बीच आ खड़े हुये हैं, ताकि उमंग में भर कर आंनद पूर्ण खेल रचायें।

६. जैसे (अनुपम) वस्त्र हैं, वैसे ही आभूषण पहने हैं। नटवर वेष धारण किये हैं। हम बहुत दिन तक खेलते रहे हैं। परन्तु आज का खेल अपूर्व होगा।

७. रास खेलने के लिये हमारे स्वामी ने आज मन में उमंग भर दिया है। आँखों से देख कर स्नेह पैदा करते हैं। उनके मुखारविंद पर बलिहारी जाऊँ।

८. श्री इन्द्रावती सखी कहती हैं कि चलो स्वामी के पास चलें। प्रियतम के गले में बाहें डाल कर आनन्द विहार करें।

एवी वात सांभलतां वालेंजो अमारे, आवीने ग्रही बांहें ।
कहो सखी पेहेली रामत केही कीजे, जे होए तमारा चित मांहें ।। ९

सखी मनोरथ होए ते केहेजो, रखे आंणो आेसंक ।
जेम कहो तेम कीजिए, आज करसूं रामत निसंक ।। १०

पूरूं मनोरथ तमतणां, करार थाए जीव जेम ।
सखी जीवन मारा जीव तमे छो, कहो करूं हूं तेम ।। ११

रासनी रामत अति घणी, अनेक छे अपार ।
सघली रामत संभारीने, अमने रमाडो आधार ।। १२

अमे रंग भर रमवा आवयां, कांई करवा विनोद हांस ।
उतकंठा अमने घणी, तमे पूरो सकलनी आस ।। १३

अमें अवसर देखी उलासियों, कांई अंगडे अति उमंग ।
कहे इन्द्रावती अमने, तमे सहूने रमाडो संग ।। १४

प्रकरण ११ ।। चौपाई ४१९ ।।

चरचरी

वालैऐं करी उमंग, सखी सरवे लेडी संग ।
रमाडे नव नवे रंग, अदभुत लीला आज री ।। १
सखियो मली संघात, सोभित चांदनी रात ।
तेज भूषण अख्यात, मीठे स्वरें बाज री ।। २
जोतां जोत व्रन्दावन, अंगे रंग उतपन ।
सामग्री सखी जीवन, नवलो सरवे साज री ।। ३
अंगे सहू अलवेल, करे रे रंगना रेल ।
विलास विनोद हांस खेल, लोपी रमे लाज री ।। ४
वचे वचे वाए वेण, रंग रस ल्यण ल्यण ।
उपजावे अति घंण, पूरवा पूरण काज री ।। ५

९. ये बातें सुन कर प्रियतम ने आकर हमारी बाँहें थाम लीं और पूछा—'हे सखी ! कहो, पहला खेल कौन-सा खेलें । जो तुम चाहती हो—वही खेल होगा ।

१०. तुम्हारे मन में जो इच्छा हो ! निःसंकोच कहो, जैसा तुम कहोगी वैसा ही किया जाएगा । आज निर्द्वन्द्व हो कर खेल होगा ।

११. मैं तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण करूंगा । जिससे जीव को चैन मिले । हे सखियों, तुम्हीं तो प्राणों का प्राण हो । जैसा कहोगी, वैसा ही करूंगा ।'

१२. 'रास के खेल असंख्य, अनन्त और अपार हैं । उन सभी खेलों को याद करते हुए हे स्वामी ! आप जैसा चाहो हमें खेल खिलाओ ।

१३. हम आनन्द मे भर कर आई हैं कि हँसी खुशी खेल खेलेंगे । हमारे मन में तीव्र उत्कंठा है, आज हमारी सभी अभिलाषाओं को पूरा कीजिये ।

१४. यह अवसर पाकर और आपको देखकर हमारे मन में उल्लास भर गया है । हमारे अंग-अंग में उमंगें जाग उठी हैं ।' इन्द्रावती कहती है—'आप हम सबको साथ लेकर खेल खिलाओ ।'

प्रकरण—१२

१. प्रियतम ने उमंग में भर कर सब सखियों को पास बुला लिया । नये-नये तरीकों से खेल खिलाए । आज की लीला अद्भुत है ।

२. सब सखियाँ साथ में मिलकर खेलती हैं । चाँदनी रात की शोभा अनुपम है । आभूषण अपनी छटा बिखेर रहे हैं । उनके बजने से मधुर ध्वनि निकलती है ।

३. वृन्दावन अपूर्व ज्योति से पूर्ण है. अंग-अंग में आनन्द का ज्वार है । वहाँ के सारे उपादान चैतन्य है. सब साज सज्जा नवीन है ।

४. सब सखियाँ अलमस्त हैं, नये-नये रंगों के खेल खेलती हैं । विलास, विनोद, हंसी और खुशी के खेल-खेल रहे हैं । उन्होंने लोक-लाज का परित्याग कर दिया है ।

५. बीच-बीच में श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं । क्षण-क्षण में रंग के रस से आच्यायित करते हैं और सब सखियों की मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं ।

रमंवु उनमद परों, वालाजी सूं रंग घरों।
कर कंठ धणी तणे, विलसूं संगे राज री॥ ६

वाणी तो बोले मधुर, करसूं ग्रही अधुर।
पिए वालो भरपूर, राखी हैडा मांझ री॥ ७

रमती इन्द्रावती, घातो घणो ल्यावती।
वालैया मन भावती, मुखमां मरजाद री॥ ८

प्रकरण १२ ॥ चौपाई ४२७ ॥

राग धन्यासरी

वालैयो रमाडे रे, अमने नव नवे रंग।
जेम जेम रमिएं, तेम तेम वाधे रे उमंग॥ १

सकल मलियो रे साथ, सोभे वालैया संघात।
जाणिएं उदयो प्रभात, तिमर भाजयो रात, सोहे वृन्दावन॥ २

भूषण झलहलकार, नंग तो तेज अपार।
जोत तो अति आकार, वस्तर सोहे सिणगार, मोहे वालो मन॥ ३

सिणगार सरवे सोहे, वालोजी खंत करी जुए।
जाणिए मूलगां होए, तारतम विना नव कोए, जाणे एह धंन॥ ४

वालोजी अति उलास, मन मांहें रलियात।
पूरवा सुन्दरीनी आस, मरकलडे करे हांस, उलट उतपंन॥ ५

सुख तो वालाजीने संग, अरधांग लिए अंग।
जुवती करती जंग, रमे नव नवे रंग, घणूं जसंन॥ ६

सुन्दरी वल्लभ बंने, करे इछा मन गमे।
रीस तो कोए न खमे, नीच तो भाखे न नमे, बोले बल तन॥ ७

६. बाला जी से अनन्य रस में डूब कर मस्ती में खेलना है। 'जैसे मैं प्रीतम के गले में बांहे डाल में उनसे रमरग करती हूं।'

७. प्रियतम बहुत मधुर वाणी बोलते हैं। हाथ से पकड़ प्रीतम अपने अधरों से होंठों का रस पान करते हैं। अपने हृदय से लगा लेते हैं।

८. इन्द्रावती विभिन्न भंगिमा द्वारा खेलती हैं। मुख पर संकोच और मर्यादा का भाव लिए हुए प्रियतम के मन को लुभाती हैं।

प्रकरण—१३

१. प्रियतम हमें नये-नये खेल खिलाते हैं। जैसे-जैसे खेलते हैं, वैसे-वैसे उमंगों का जोर बढ़ता जाता है।

२. सब सखियां स्वामी के साथ मिलकर इस तरह शोभायमान हैं मानो रात का अन्धकार मिट गया हो और दिन चढ़ आया हो। सारा वृन्दावन शोभा लुटा रहा है।

३. भूषणों के हिलने से झलक पैदा होती है, नगों में अपार तेज है। वस्त्रों और आभूषणों से विलक्षण ज्योति निकलती है, जो स्वामी के मन को मोह लेती है।

४. सारे शृंगार अपूर्व शोभा देते है। स्वामी सबको प्रेमपूर्वक निहारते है। शृंगार ऐसा है मानो उनसे अर्न्तमन का प्रगाढ़ सम्बन्ध हो। तारतम के बिना यह रहस्य कोई नहीं जान सकता।

५. स्वामी बड़े हर्ष में है। मन में खेलने की उमंग है। सुन्दरियों की आशा पूरी करने के लिए वे मन ही मन मुस्कुराते हैं। सखियों की हंसी के साथ-साथ प्रत्युत्तर में पुनः विनोद करते हैं।

६. प्रीतम के साथ उनकी अर्द्धांगिनी अंग लग कर सुख पाती है। युवा सखी खिंच कर कभी आगे कभी पीछे हटती है। जंग मची हुई है। नये-नये स्नेह और आनन्द में भर कर रमण होता है। बड़ा समारोह सम्पन्न हो रहा है।

७. सुन्दरी और वल्लभ दोनों अपनी-अपनी इच्छा पूर्ण करते हैं। कोई रोष सहन नहीं करती। कोई किसी से नीचे या पीछे नमता नहीं है। शरीर का सारा जोर और जोश लगा हुआ है।

चालती चतुरा रे चाल, मुख तो अति मछराल ।
सोहंतो कट लंकाल, चढती जाने घंटाल, प्रेम काम सिंध ।। ८

छेलाईएं अति छेल, वल्लभ संघाते गेहेल ।
प्रेम तो पूरो भरेल, स्याम संगे रंग रेल, वाले बांहोंडी बंध ।। ९

वाणी तो बोले विसाल, रमती रमती आल ।
कंठ तो झांक झमाल, अंग तो अति रसाल, सोहंती रे सनंध ।। १०

गावती सुचंग रंग, आंणती अति उमंग ।
स्वर एक गाए संग, अलवेली अति अंग, वास्नाओ सुगंध । ११

वल्लभ कंठ वलाए, लिए रंग धाए धाए ।
रामत करें सवाए, पाछी नव राखे कांए, ऊभी रहे रे ओकंध ।। १२

इन्द्रावती अंगे आप, वालाजीसूं करे विख्यात ।
मुखतो मेले संघात, अंमृत पिए अघात, सुख तो लिए रे सुन्दर ।। १३

प्रकरण १३ ।। चौपाई ४४० ।।

राग श्री कालेरी

आवो रे सखियो आपण हमची खूदिए, वालाजीनें मेलां लीजे रे ।
रामत करतां गीतज गाईए, हांस विनोद रंगडा कीजे रे ।। १

मारा वालैया ए रामत घणूं रूडी, हमचडी रलियाली ।
कालेरामां कंठ चढावो, गीत गाईए पडताली ।। २

हमचडीनो अवसर आव्यो, आंगे कह्यूं नहीं अमे तमने ।
एवो समयो अमने क्यांहें न लाधो, हामडी रहीती अमने ।। ३

जे रस छे वाला हमचडीमां, ते तो क्यांहें न डीठो रे ।
जेम जेम सखियो आवे अधकेरी, तेम तेम दिए रस मीठो रे ।। ४

वचन सरवे गाईए प्रेमना, अरथ अंगमां समाए ।
ते तां अरथ प्रगट पाधरा, हस्तक वाला संग थाए ।। ५

८. नागरी नायिका फिर चतुराई की चाल चलती है । उसके मुख पर शरारत का भाव है । पतली कमर शोभा देती है । घंटे की चोट पर थिरकती है । प्रेम और काम के समुद्र में ज्वार उठ रहा है ।

९. छैल-छबीली, मस्तानी वल्लभ के साथ खेल खेलती है, पूर्ण प्रेम में पगी है, प्रियतम के गले में बाहें डालकर झूल जाती है, मौज मनाती है ।

१०. खेल-खेल में ऊंचे स्वर से गाती है । कंठ का आरोहावरोह बहुत भाता है । कमनीय अंग बड़े प्यारे और लुभावने हैं । जो विभिन्न भंगिमाएं प्रदान करते हैं ।

११. मधुर रंग में, उमंग में, भर कर सब सखियाँ एक स्वर में गाती हैं । उन अलबेली सखियों के अंगों में से सुवास फूट रही है ।

१२. वे वल्लभ के गले मिलती हैं । भाग भाग कर खेलती हैं । दौड़ती हुई और एक-से-एक बढ़-चढ़ कर रामत करती हैं । पीछा नहीं छोड़ती । फिर कंधे उचका कर तैयार खड़ी है ।

१३. श्री इन्द्रावती अपने स्वामी से अंग मिला कर चुम्बन द्वारा अधरों का अमृत पी कर तृप्त होती हैं । बड़े मनोरम और सुन्दर खेल का सुख लेती हैं ।

प्रकरण—१४

१. 'आओ री सखियों, हम उछलते हुये ताली बजाने का खेल खेलें । स्वामी को भी साथ ले लें । नाचते हुये गीत गाएं । हास्य-लास्य, विनोद और आनन्द में सम्मिलित हों ।

२. हे प्रियतम, यह खेल बहुत अच्छा है । हमें बहुत आनन्द आता है । 'कालेरा राग' के साथ पंचम स्वर में गीत गाएं और नृत्य भी करें ।

३. अब हमारी चाह को पूर्ण करने का समय आ गया है । हमने इसके पूर्व कभी आपसे ऐसा नहीं कहा । ऐसा अपूर्व अवसर हमें कहीं नहीं मिलेगा । आज तक हमारे हृदय में यही चाह शेष रह गयी थी ।

४. इस लीला में जो रस है—वह हमें कहीं नहीं दिखाई दिया । इसमें जैसे-जैसे अधिक सखियां आती जाती हैं, वैसे-वैसे अधिक रस उत्पन्न होता है ।

५. 'सखियों, प्रेम से उनकी 'वाणी'को गाओ । प्रेम से ही उनके अर्थ समझ में आते हैं । इसका आशय भी स्पष्ट है—'हाथ पकड़ कर प्रीतम के साथ हो लो ।'

अंमृत पीजे न चुमन दीजे, कठडे वालाने वलाइए ।
हमचडीमा त्रण रस लीजे, रेहेस रामतडी गाईए ।। ६

ए रामतमां विलास जे कीधां, ते केहेवाए नहीं मुख वाणी ।
सरवे सुखडा लेई करीने, रह्या रुदयामां जाणी ।। ७

जेटला वचन गाया अमें रमतां, ते सरवेना सुख लीधां ।
कहें इन्द्रावती केम कहूं वचने, अनेक सुख वालें दीधां ।। ८

प्रकरण १४ ।। चौपाई ४४८ ।।

राग मारू

वाला आपण रमिए आंख मिचामणी, ए सोभा जाए न कही ।
निकुंजना मंदर अति सुंदर, आपण छपिए जुजवा थई ।। १

एवुं सुणीने साथ सहू हरख्यो, ए छे रामतडी सारी ।
पेहेलो दाव आपणमां कोंण देसे, ते तमें कहोने विचारी ।। २

सहू साथ कहे वालो दाव देसे, पेहेलो ते पीउजीनो वारो ।
जो पेहेलो दाव आपण देऊं, तो ए झलाए नहीं धुतारो ।। ३

आवो रे वाला हूँ आंखडी मीचूं, आंखडी मीच जो गाढो ।
अमे जईने वनमां छपिए, पछे तमे खोलीने काढो ।। ४

सखियो तमें छाना थई छपजो, भूषण ऊँचा चढाओ ।
रखे सखी कोई आप झलाओ, मारा वालाजीने खीदडी खुदावो ।। ५

छेलाईएं छांना थई छपजो, रखे कोई बोलतूं कांई ।
ए काने सरूओ छे सबलो, हमणा ते आवसे आहीं ।। ६

६. अधरों का रस पीओ. चुम्बन दो और स्वामी के कंठ से लिपट जाओ। 'हम चढी' की रामत में ये ही तीन रस हैं। इस रामत के रहस्यों को वार-वार गाओ, दुहराओ।'

७. इस रामत में जिन्होंने अखड सुख पाया, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यह सारा सुख लेकर उन्हें अपने हृदय में समा लिया, तभी इस आनंद-क्रीड़ा की सार्थकता जान पड़ी।

८. उनके जिन वचनों का हमने गायन किया, उन सबका सुख रास के खेल में पाया। इन्द्रावती कहती है 'वाला ने जो सुख दिये उन्हें वचनों से कैसे कहूं।'

प्रकरण—१५

१. हे प्रीतम, आओ हम आँख-मिचौली का खेल खेलें। निकुंज-निर्मित मन्दिरों की शोभा कही नहीं जा सकती। मन्दिर बड़े सुन्दर और परकोटे भव्य हैं। हम सब अलग-थलग होकर छिप जायें।

२. ऐसा सुन कर सारी सखियां प्रसन्न हो गईं। यह खेल तो बहुत अच्छा है, परन्तु यह तो बताओ कि हममें से पहला दाव कौन देगा ?

३. सब सखियां कहती हैं कि पहला दाव तो स्वामी देंगे। पहले तो उनकी ही वारी है। यदि पहला दाव हम देंगे तो छलिया श्याम कभी पकड़ में नहीं आयेंगे।

४. 'आओ स्वामी ! पहले हम आप की आंखें बन्द करें। आंखें भली-भांति जोर से बन्द करनी होगी। तब हम वन में जाकर छिप जायेंगी। पीछे आप आंखें खोल कर हमें ढूंढियेगा।

५. सखियों, तुम सब अच्छी तरह छिप जाओ। आभूषणों को ऊंचे चढ़ा लो। कोई भी सखी प्रियतम की पकड़ में नहीं आना, फिर तो हम उन्हें खूब नचाएंगी।

६. चुपचाप खामोश होकर छिप जाओ। कोई भी बोलना नहीं। इनके कान पतले हैं। जल्दी सुन लेते हैं। बस अभी यहां आ धमकेंगे।

लपतो छपतो आवे छे, सखियो सावचेत थाईए।
आंणीगमां जो आवे वालो, तो इहां थकी उजाईए॥ ७

जो कदाच वालो आवे ओलीगमां, तो आपण पैऐ जैऐ।
दाव रहे जो वालाजो ऊपर, तो फूली अंग न मैऐ॥ ८

ते माटे सहू आप संभारी, रखे कोई प्रगट थाए।
जो दाव आपण ऊपर आवसे, तो ए केमे नहीं झलाए॥ ९

अमे निकुंज बनथी निसरया, आवी थवकला खाधा।
वाले वनमां चीमी चीमी, श्री ठकुराणीजी लाधा। १०

सखियो जाओ तमे छपवा, हूँ देऊं दाव स्यामाजी सांटे।
हूँ रमो सूं नथी जाणती, तमे स्याने देओ मूं माटे॥ ११

रामतमां मरजाद म करजो, रमजो मोकले मन॥
नासी सको तेम नासजो, तमे सुणजो सरवे जन॥ १२
स्यामाजी आंखडी मीचीने ऊभा, सखियो वनमां पसरी।
सहू कडछीने रमे जुजवा, भूषण लीधां ऊंचा धरी॥ १३
आनंद मांहें सहुए सखियो, पैए जाए उजाणी।
भूषण न दिए बाजवा, एणी चंचलाई जाए न वखाणी॥ १४

उलास दीसे अंगों अंगे, श्रीस्यामाजी ने आज।
ठेक देई ठकुराणीजीऐं, जईने झाल्या श्री राज॥ १५

ए रामत घणूं रूडी थई, मारा वालाजीने संग।
कहे इंद्रावती निकुंज वन, घणूं रमतां सोहे रंग॥ १६

प्रकरण १५॥ चौपाई ४६४॥

७. वे लुकते छिपते आ जायेंगे। सखियों, सब सावधान हो जाओ। उधर से वे यहां पहुँच जायें, तो इधर भाग जाना।

८. यदि कभी स्वामी वहां से यहां चले आए तो तुम दांव के ठिकाने पर पहुंच जाओ। ताकि दाव उनके ऊपर ही रहे। फिर हम आनंद में फूले नहीं समाये।

९. इसलिए सब सावधान हो जाओ, कोई दिखाई न दे जाना। अगर हम पर दाव आ गया तो वे फिर पकड़ में आने से रहे।'

१०. इधर गोपियां निकुंज वन से निकल कर विश्राम कर ही रही थीं कि इस बीच श्री कृष्ण ने चुपचाप जा कर श्री ठकुरानी श्यामा को ढूंढ कर पकड़ लिया।

११. 'हे सखियों, तुम सब अब बन में छिप जाओ। मैं श्यामा के लिए फिर अपना दाव दे दूंगा।' श्यामा जी बोलीं—'क्या मैं खेलना नहीं जानती। तुम मेरे बदले दांव क्यों दोगी ?

१२. खेल में कोई मर्यादा (भेद-भाव) मत रखो। खुले दिल से खेलो। तुम सब अब यह सुन लो, जितनी दूर भाग सको—जल्द भाग जाओ।'

१३. श्यामाजी आंखें बंद करके खड़ी रहीं और सखियां वन में दूर-दूर तक फैल गईं। सब ने साडियों को ऊपर तक बांध लिया और आभूषण ऊंचे चढ़ा लिए।

१४. आनन्द में सब सखियां अपने-अपने छिपने के स्थल पर पहुँच गईं। आभूषणों को तनिक भी बजने नहीं दिया। उनके इस लीला-चातुर्य का वर्णन नहीं हो सकता।

१५. श्यामा जी के अंग-अंग में क्रीड़ाजन्य आनंद और उल्लास दिखाई दे रहा है। भाग कर श्यामा जी ने श्री कृष्ण जी को पकड़ लिया।

१६. यह खेल बहुत ही सुन्दर रहा। बाला जी के साथ खेलने में आनन्द आया। श्री इन्द्रावती कहती हैं—'निकुंज वन में इन आनन्द पूर्वं खेलों से सभी प्रसन्न हो गए।'

राग अडोल गोरी—चरचरी

सखी ब्रषभान—नंदनी, कंठ कर क्रस्ननी ।
जोड एक अंगनी, रमती रंगे रास री ।। १

स्याम स्यामाजी जोड सुचंगी, जुओ सकल सुंदरी ।
सोभा मुखारविंदनी, करे मांहों मांहें हांस री ।। २

भूषण लटके भामनी, कांई तेज करण कामनी ।
संग जोड स्यामनी, वनमां करे विलास री ।। ३

पांउं भरे एक भांतसूं, रमती रंगे खांतसूं ।
जुओ सखी जोड कान्हसूं, कांई सुंदरी सकला परी ।। ४

फरती रमे फेरसूं, सुंदरबाई घेरसूं ।
हजार वार तेडसूं, आवी वालाजी पास री ।। ५

वल्लभें लीधी हाथसूं, सुंदरबाई बाथसूं ।
रामत करे निघातसूं, जोरे मुकावे हाथ री ।। ६

बेहूगमां बे भामनी, वचे कान्ह कंठें कामनी ।
कंठ बांहोंडी बंने स्यामनी, एम फरत प्राणनाथ री ।। ७

आखल पाखल सुंदरी, केटलीक कंठे बांह धरी ।
एक ठेकती फरती भमरी, एम रमत सकल साथ री ।। ८

झणके झण झांझरी, घूंघरी घमके मांझ री ।
कडला बाजे मांहें कांबीरी, बिछुडा स्वर मिलाप री ।। ९

घमके पांउं धारुणी, रमती रास तारुणी ।
फरती जोड फेरनी, न चढे कोंणे स्वांस री ।। १०

चंद चाल मंद थई, जोई सनंघे थकत रही ।
गत मत भूली गई, देखी थयो उदास री ।। ११

आनंद घणों इंद्रावती, बांहोंडी कंठ मिलावती ।
लटकती चाले आवती, वालाजी जोडे जास री ।। १२

प्रकरण १६ ।। चौपाई ४७६ ।।

प्रकरण—१६

१. वृषभान की बेटी (राधा) श्री कृष्ण के गले में बाहें डाल कर युगल लीला रचाती हैं। आनन्द में रास खेलती हैं।

२. श्याम-श्यामा जी की जोड़ी कितनी सुन्दर है। सखियों, देखो, उनके मुखारविंद की शोभा देखो—वे परस्पर कैसी हंसी और चुहल कर रहे हैं।

३. श्यामा जी के आभूषण झलक रहे हैं, उनमें ज्योति की किरणें फूट रहीं हैं। श्याम जी उनकी जोड़ के हैं। उनके साथ बन में विलास कर रही हैं।

४. एक जैसे ही पाँव बढ़ते हैं। बड़े हर्ष में भर कर खेलते हैं। देखो, सखी कृष्ण के साथ उनकी जोड़ी कितनी भली लगती है। सब सखियाँ उन्हीं की बातों में आनन्दित होती हैं।

५. वे साथ-साथ घूमती-फिरती हैं। सुन्दरबाई को घेर कर खेलती हैं। बारह हज़ार सखियों को बुला कर स्वामी के पास जाती हैं।

६. स्वामी ने सुन्दरबाई का हाथ पकड़ लिया। उन्हें भी अंक में भर लिया। ज़ोर से रामत करते हैं। संकोच वश सुन्दरबाई हाथ छुड़ाती है।

७. दोनों ओर दो सखियों के बीच में श्रीकृष्ण गले में बाहें डाले नृत्यरत हैं। दोनों सखियां भी उनके गले में बांहें डाले हैं। प्राणनाथ इस प्रकार क्रीड़ारत हैं।

८. आस पास और सखियां भी गले में बांहें डाले झूलने लगीं। एक ठेका देकर नाचती है। एक घूमती है। इस प्रकार सारा वृन्दावन उमके साथ झूम रहा है।

९. झांझर झनक रही हैं। घूंघरियां बज रहीं हैं। कड़े और कड़ियों की घूंघर बीच-बीच में बज रही हैं। बिछुआ स्वर मिला कर संगत कर रहा है।

१०. धरती पर बड़े जोर से पांव मार कर गोप-तरुणियां नाचती हैं, तो धमक पड़ती है। वे गोल घूमती हैं। आनन्द का अतिरेक है तो भी किसी की सांस नहीं फूलती।

११. चन्द्रमा की चाल भी मन्द हो गई। इस लीला को देखकर वह ठहर और ठिठक गया। उसकी गति क्रमशः धीमी हो गयी है। लगता है, उसकी गति-मति भूल गई। ब्रज मण्डल की शोभा देख कर वह (अपनी शोभा पर) उदास हो कर विवर्ण हो गया।

१२. सखी इन्द्रावती आनन्द में फूली नहीं समातीं। बांहें गले में डाले है। लचकती चाल से आ रही हैं। स्वामी भी उनके साथ चले आ रहे हैं।

राग सिधूडो

ओरो आवो वाला आपण फूदडी फरिये, फरिये ते फेर अपार ।
फरतां फरतां जो फेर आवे, तो बांहोंडी न मूकसो आधार ॥ १

बांहोंडी मूकसो तो अडवडसूं, त्यारे हांसी करसे सहू साथ ।
ते माटे बल करीने रमजो, फरतां न मूकवो हाथ ॥ २

तमे तो वालाजो फूदडी फरो छो, फरो छो आप अंग राखी ।
ए रामतकी फरतां मारा वालैया, फरिए पाछां अंग नाखी ॥

जुओ रे सखियो तमे आ जोड फरतां, रामत करे घणें बल ।
इन्द्रावतीना तमे अंगडा जो जो, मारा वालाजीसूं फरे केवे बल ॥ ४

जुओ रे सखियो एम गातां फरता, वाजाजीने देऊँ चुमन ।
भंग न करूं फेर फूदडी केरो, तो देजो स्याबासी सहू जन ॥ ५

फरतां फूदडी लीधी कंठ बांहोंडी, वली फरे छे तेमना तेम ।
देई चुमन ने थया जुजवा, वली फरेतें फरतां जेम ॥ ६

एम अंग वालीने रमजो रे सखियो, तो कहूँ तमसे स्याबास ।
एम लटके रंग ले जो वचमां, तो हूँ तमारडी दास ॥ ७

हूँ तो सांचूं कहूँ रे सखियो, तमने तो कांईक मरजाद ।
सांचू कहे अने प्रगट रमे, इंद्रावती न राखे लाज ॥ ८

प्रकरण १७ ॥ चौपाई ४८४ ॥

राग कालेरो

भूलवणीनी रामत कीजे, वाला तमे अम आगल थाओ ।
दोडी सको तेम दोडजो, जोइए अम आगल केम जाओ ॥ १

भूलवणीमां भूलवजो, देजो वलाका अपार ।
भूलवी तमारी हूँ नव भूलूं, तो हूं इन्द्राबती नार ॥ २

प्रकरण—१७

१. हे स्वामी, आओ हम फिरकी-किकली—का खेल खेलें। इसमें बहुत बार फिरेंगे फिरते हुए चक्कर भी आ जाये तो हाथ न छोड़ना।

२. बाँह छोड़ देंगे तो गिर पड़ेंगे और तब सब हंसेंगे। इसलिए बलपूर्वक खेलते और फिरते हुए हाथ न छोड़ियेगा।

३. स्वामी आप जब फिरकी खेलते हैं तो अपने अंगों का ध्यान रखते हैं और उन्हें सिकोड़ लेते हैं। हे नाथ, इस रामत में तो अंगों को पीछे ढीला छोड़ कर घूमना होता है।

४. हे सखियों, आप इसी जोड़ी को—खेल खेलता देखिये। ये कितने ज़ोरों से फिर रही हैं। आप इन्द्रावती का अंग देखिये—अपने स्वामी के साथ कैसे रमण कर रही है।

५. देखो सखियों, इसी प्रकार गाते-फिरते मैं स्वामी को चुम्बन प्रदान करूंगी। तथापि फिरकी की गति में कोई अन्तर न पड़े तो तुम सब मेरी सराहना करना।

६. ऐसा ही हुआ। वे किकली फिरकी करते हुए गले मिल गये और फिर वैसे ही घूमने लगे। चुम्बन देकर अलग हो गये और पहले की तरह घूमने लगे।

७. सखियों! इसी तरह अंग में अंग जोड़कर खेलो तो तुम्हें साधुवाद दूं। इसी तरह की लहरियां और लटके बीच-बीच में लो तो तुम्हारी दास बनूं।

८. वस्तुतः तुमलोग मर्यादा में ही रह जाती हो (इसलिए पूरा आनन्द नहीं ले पाती) वहां इन्द्रावती सत्य कहती है और खुल कर खेलती है। प्रियतम के साथ खेलने में—वह संकोच और शर्म नहीं करती।

प्रकरण—१८

१. चलो स्वामी, अब हम भूल भुलैया का खेल खेलें। पहले आप आगे हो जाइये। जितनी दूर और देर तक दौड़ सकें, उतना दौड़िये। देखना यही है कि आप हमारे आगे कैसे निकल भागते हैं।

२. हे स्वामी! भूल भुलैया के खेल में हमें चाहे जितना भुलाओ भटकाओ, चाहे जितने ही चक्कर दिलाओ—लेकिन अब आप के भुलाने से मैं भूलूंगी नहीं। क्योंकि मेरा नाम भी इन्द्रावती है, (जिसे चक्कर में डालना आसान नहीं)

जुओ रे सखियो वालें भूलवी मूने, पण हूं केमे नव टली ।
अनेक वलाका दीधां मारे वालें, तो हूं मलीने मली ।। ३

रहो रहो रे वाला मारे वासे थाओ, हूं तम आगल थाऊं ।
सांची तो जो भूलवुं तमने, मारा साथ सहू ने हसाऊं ।। ४

सखियो तमे सावचेत थाजो, रखे कोई मूकतां हाथ रे ।
हमणा हरावुं मारा वालाजीने, जो जो तमे सहू साथ रे ।। ५

भूलीस मा रे वचिख्यण वाला, आवी मारे वासे वलगो ।
एक वलाका जो हूँ देऊं, पण तूं म थाएस अलगो ।। ६

एक वलाका मांहें रे सखियो, वालो भूल्या ते प्रथम मूल ।
दिए सखि ताली पडी आलोटे, हंसी हंसी आवे पेट सूल ।। ७

सहू साथ मलीने साबत कीधो, इन्द्रावती विविध विसेक ।
धणी थई रामत ने वली थासे, पीउ भूलवतां राखी रेख ।। ८

प्रकरण १८ ।। चोपाई ४६२ ।।

राग कल्याण चरचरी

आज राज पूरण काज, मन मनोरथ सुन्दरी ।
मन मनोरथ सुंदरी, सखी मन मनोरथ सुन्दरी ।। १

विध विधना विलास, मगन सकल साथ ।
मरकलडे करे हांस, रेहेस रामत विस्तरी ।। २

कह्यो न जाए आनन्द, अंग न माए उमंग ।
विकसिया अमारा मन, रहियो सरवे हरवरी ।। ३

आ समेनों व्रन्दावन, जुओ रे आ सोभा चन्द ।
फूलडे अनेक रंग, रमे साथ परवरी ।। ४

कावर कोयल स्वर, कपोत घूमे चकोर ।
मृगला बांदर मोर, नाचत फेरी फरी ।। ५

३. देखो री सखियों ! स्वामी ने मुझे भुलाया—परन्तु मैं किसी तरह टली नहीं। उन्होंने अनेक दांव-पेंच लड़ाये-भिड़ाये तो भी मैं साथ ही रही।

४. ठहरिए, जरा ठहरिए स्वामी ! आप जरा मेरे पीछे हो जाइये। मैं आप के आगे होती हूँ। सच्ची हूँ और इस खेल में पारंगत रहूँ, तो आप को भुला कर छोड़ूंगी और तब सब सखियों को हंसाऊंगी।

५. सखियों, तुम सब सावधान रहना। हाथ न छोड़ना। अभी मैं प्रियतम को हराती हूँ। तुम सब देखना।

६. भूलने में स्वामी बड़े तेज हैं। इसलिए सब मेरे पीछे हो जाओ। उनको मैं अनेक चक्कर दिलाऊंगी, परन्तु तुम सब कभी अलग न होना।

७. एक ही चक्कर में स्वामी चकरा गये। सखियां ताली दे-दे कर लोटने लगीं। हँसते-हंसते तो पेट में दर्द होने लगा।

८. तब सब सखियों ने मिलकर प्रमाण दिया कि इन्द्रावती इन खेलों को खेलने में सबसे कुशल है। बहुत रामतें हुई और आगे भी बहुत होंगी। पिया ने भी भूलकर अपनी टेक रख ली।

प्रकरण—१६

१. आज श्री राज—स्वामी सुन्दरियों के मन के मनोरथ और सब कार्य पूर्ण करेंगे। सखियों की मनोकामनाएं पूर्ण होंगीं।

२. तरह-तरह के विलास हो रहे हैं। सब एक साथ मग्न है। मुस्कुराते हुए हंसी और ठिठोली कर रहे हैं क्योंकि रहस्यमय खेल खेले जा रहे हैं।

३. इस समय के आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। अंग में उमंगों का रेला समाता नहीं है। हमारा चित्त खिल उठा है। आज सारी सखियों में अधिकतम सुख लेने की हड़बड़ाहट और होड़ है।

४. इस समय के वृन्दावन और उसमें निकले चन्द्रमा की शोभा देखो। अनेक रंगों के फूल फूले हैं। सखियां मुक्त होकर विहार कर रही हैं।

५. कावर (गुडसल या गुडरी नाम की) चिड़िया के साथ कोयल की कूक गूंज रही है। कबूतर और चकोर घूम रहे हैं। मृग, बन्दर मोर नाच रहे हैं और इधर-उधर घूम रहे हैं।

श्यामना उलासी अंग, उलट अमारे संग ।
मांहों मांहें मकरन्द, व्यापियो विविध पेरी ।। ६

रामत करे कामनी, विलसतां वाधी जामनी ।
सखी सखी प्रते स्याम घन, दिए सुख दया करी ।। ७

रमतां दिए चुमन, एक रस जुवती जन ।
करी जुगत नौतन, चितडा लीधां हरी ।। ८

कंठ बांहों वली वली, अनेक विधे रंग रली ।
लिए अंमृत मुख मेलो, पिए रस भरी भरी ।। ९

रस घणों उपजावती, सखी मीठड़े सुर गावती ।
नव नवा रंग ल्यावती, इन्द्रावती अंग धरी धरी ।। १०

प्रकरण १९ ।। चौपाई ५०२ ।।

राग पंचम मारू

रामत गढतणी रे, हाथ माहें हाथ दीजे ।
बल करीने सहू ग्रहजो बांहोंडी, तो रामत रस लीजे ।। १

प्रथम पाधरूं कहूं रे सखियो, ए रामत छे मदमाती ।
दोडी न सके तेणी बांहोंडी न छूटे, ते आवसे पाछल घसलाती ।। २

ते माटे बंध बांहों खरों ग्रही, करजो जोरमां जोर ।
पछे दोड़सो त्यारे नहीं रे केहेवाए:, थासे अति घणों सोर ।। ३

पेहेली चाल चालो कीडीनी, हलवे पगला भरजो ।
पछे वली कांईक अधकेरा, वधतां वधतां वधजो ।। ४

वली कांईक वध पामतां, मचकासूं मालेजो ।
हजी लगे आकला म थाजो, लडसडती चाल चालेजो ।। ५

६. श्यामा जी के अंगों में उल्लास का नृत्य है। वही रूपांतरित हो कर हमारे अंगों में भी समाया है। परस्पर एक दूसरे के शरीर की सुरभि व्याप रही है।

७. कामिनियां खेल रही हैं। इस चिद् विलास में यह रात भी मानो ठहर गई। सखी-सखी को आनन्द-घन धनी श्रीश्याम कृपा करके सुख दे रहे हैं।

८. इस खेल में हर सखी के साथ एक-एक कन्हैया हैं। सबको उन्होंने एक साथ चुम्बन प्रदान किया। इस नई युक्ति से श्री कृष्ण ने सबका मन मोह लिया।

९. गले में बांहें डाल डाल कर सभी अनेक तरह स आनन्दपूर्ण खेल खेलते हैं। मुख मिलाकर अधरों का रसामृत पान करते हैं।

१०. इस प्रकार वे बहुत ही आनन्द उत्पन्न करते हैं। सखियाँ मीठे स्वरों से गा रही है। नये-नये कौतुकों को सामने लाकर इन्द्रावती नये खेलों का भव्य आयोजन करती है।

प्रकरण—२०

१. अब गढ़ बनाकर एक नया खेल खेलें। हाथों में हाथ डालकर ज़ोर से बांह को थामें रहना तो इस खेल का आनन्द आएगा।

२. मैं पहले ही स्पष्ट कर दूं। यह खेल बहुत ही मस्ती (शरारत) से भरा है। जो दौड़ न सकेगी उसकी बांह भी छूटेगी नहीं। उसे फिर पीछे-पीछे घिसटते आना पड़ेगा।

३. इसलिए बन्धन पक्के बांधना, अधिक से अधिक जोर लगाना। अगर कोई पीछे दौड़े तो कुछ कहना नहीं। नहीं तो अन्यथा ही शोर मच जाएगा।

४. पहले चींटी की चाल से चलना होगा—फिर धीरे-धीरे चाल तेज करना। इसी तरह कुछ अधिक और तेज़ कदमों से इसी तरह बढ़ते-बढ़ते वहां तक बढ़ जाना है।

५. फिर एकदम जोर से चलना। देखो मोच न आ जाए। उस समय तक भी बहुत जल्दबाज़ी न करना। धीमी चाल से चलना। सुस्ता सुस्ता कर।

हवे कांईक पग भरजो प्रगट, सावचेत सहू थाजो ।
साथ सकल तमे आप सम्भारी, मुखडे पुकारीने गाजो ॥ ६

लटके चटके छटके दोडजो, रखे पग पाछां देतां ।
हांसी छे घणी ए रामतमां, दोडतणो रस लेतां ॥ ७

कहे इंद्रावती ए रामतडी, मारा वालाजी थई अति सारी ।
दोड करतां तमे पांछूं नव जोयूं, अमें बाहोंडी न मूकी तमारी ॥ ८

प्रकरण २० ॥ चोपाई ५१० ॥

राग श्री काफी

रामत करतालीनी रे, एमां छे वलाका विसमां ।
बेसवूं उठवूं फरवूं रमवूं, ताली लेवा साम सामां ॥ १

तम सामी अमें ऊभा रहीने, हाथ ताली एम लसूं ।
बेसतां उठतां फरतां, सामी ताली देसूं ॥ २

बेसतां ताली देईने बेसिए, उठतां दीजे ताली ।
फरतां ताली देई करीने, वचे रामत कीजे रसाली ॥ ३

रामत करतां अंग सहू वालिए, सकोमल जोड सोभंत ।
अंग वाली वचे रंग रस लीजे, भंग न कीजे रामत ॥ ४

ए रामतडी जोई करीने, सहू साथने वाध्यो उमंग ।
सहू कोई कहे अमें अणी पेरे, रमसूं वालाजीने संग ॥ ५

साथ कहे वाला रमो अमसूं, ए रामत सहू मन भावी ।
सहूना मनोरथ पूरण करवा, सखी सखी प्रते लेओ रंग आवी ॥ ६

हाथ ताली रमे छे वालो, सघलीसूं सनेह ।
रंगे रमाडे रासमां, वालो धरी ते जुजवा देह ॥ ७

६. अब कुछेक कदम जल्द-जल्द उठाना। सब सावधान रहना। सब सखियां अपने आप को संयत कर ऊचे स्वर से कोलाहल करना।

७. लटक कर—छिटक कर दौड़ना, बीच में एक-एक पांव पीछे की ओर भी रखना। इस खेल में दौड़ने के आनन्द के साथ-साथ हंसी भी बहुत आयेगी।

८. सखी इन्द्रावती कहती हैं, 'हे स्वामी यह खेल बहुत अच्छा रहा। अच्छा किया, दौड़ते हुए आपने पीछे नहीं देखा और मैंने भी आपकी बांह नहीं छोड़ी।'

प्रकरण—२१

१. अब ताली बजाने का खेल खेलें। इसमें भी बहुत सारे दांव-पेच हैं। बैठते, उठते, फिरते, खेलते आमने-सामने ताली दो।

२. तुम्हारे सामने मैं खड़ी होऊंगी और इस तरह ताली बजाऊंगी। उठते बैठते, फिरते हुए सामने के हाथ पर ताली देना पड़ेगी।

३. बैठते हुए ताली देकर बैठो और उठते हुए ताली दो। पीछे फिरते हुए ताली दे देकर इस मधुर खेल का आनन्द उठाओ।

४. खेलते हुए सभी अंगों को मोड़ो, इससे सुकुमार अंगों की शोभा दिखाई देगी क्योंकि अंग मड़ोरते हुए बीच बीच में इसका आनन्द मिलेगा। परन्तु बीच में ही इस खेल को टूटने न देना।

५. इस खेल को देख कर सबके मन में उमंग बढ़ गई। हर कोई कहने लगीं—हम भी स्वामी के साथ यही खेल खेलेंगी।

६. साथ की सखियां कहती हैं, 'हम स्वामी के संग यही खेल खेलेंगीं। यह खेल सबके मन को भा गया है। इसलिए अब इन सब के मनोरथ पूर्ण करने के लिए, हर एक के लिए हे प्रिय, अलग-अलग रूप धारण कीजिए।'

७. स्वामी हाथ से ताली देते हैं। सबसे स्नेह दर्शाते हैं। रास में बड़े आनन्द के साथ खेल खिलाते हैं। सबके लिए अलग-अलग रूप धारण करते हैं।

कहे इन्द्रावती ए रामतडी, मारा वाला जी थई अति सारी ।
सघली संगे रमया रंगे, एक पीउ एक नारी ।। ८

प्रकरण २१ ।। चौपाई ५१८ ।।

राग केदारो—चरचरी

उमंगे उदयो साथ, रंगे तो रमवा रास ।
रासमां करूं विलास, सखियो सुख लेत री ।। १

भोमनी किरण भली, आकासे जईने मली ।
चादलो न जाए टली, उजलीसी रेत री ।। २

रुत निस नवो सस, दीसे सहू एक रस ।
प्रकासयो दसो दिस, न केहेवाए संकेत री ।। ३

सूं कहूं वननी जोत, पत्र फूल झलहलोत ।
वृन्दावन उद्योत, सामग्री समेत री ।। ४

पसू पंखी अनेक नाम, तेना विचित्र चित्राम ।
निरखतां न भाजे हाम, जुजवी जुगत री ।। ५

रमतां भूषण किरण, ब्रह्मांड लाग्यो फिरण ।
सखियो उलासी तन, कमल विकसेत री ।। ६

एणी पेरे करूं रामत, मनडा थया महामत ।
खंत खरी लागी चित, वालाजीसूं हेत री ।। ७

प्रेमना प्रघल पूर, सूरो मांहें अति सूर ।
पिए रस मेली अधुर, सघली सुचेत री ।। ८

इंद्रावती करे रंग, रामत न करे भंग ।
रमती फरती वाला संग, छबके चुमन देत री ।। ९

प्रकरण २२ ।। चौपाई ५२७ ।।

८. इन्द्रावती कहती हैं, 'यह रामत तो बहुत सफल रही। स्वामी ने सबके साथ, एक-एक के लिए प्रिय और एक-एक सखी के रूप में रमण किया।'

प्रकरण—२२

१. इसी प्रकार उमग में सखियां खड़ी है। आनन्द पूर्ण आवेग में रास खेलना चाहती हैं। रास में विहार करके सभी सखियाँ प्रिय के अंग का सुख लेती हैं।

२. धरती पर ज्योति की किरणें उठ रही हैं और ऊपर जाकर आकाश में मिल जाती हैं—चन्द्रमा तक रुकती नहीं हैं। यमुना पुलिन पर बिछी हुई रेती बड़ी उज्ज्वल है।

३. शरद् ऋतु में रात्रि और भी नवीन दिखाई देती है। सब एक रस दिखाई देता है। दशों दिशाएं प्रकाशित हो रही हैं इस अनिर्वचनीय आनन्द के विषय में सांकेतिक परिचय भी नहीं दिया जा सकता।

४. इस वन की ज्योति क्या कहूँ ? पत्ते और फूलों का प्रकाश अपनी आभा बिखेर रहा है। समस्त उपादान और रास परिकर के साथ समस्त वृन्दा-वन जगमगा रहा है।

५. विभिन्न प्रकार के पशु पक्षी हैं। उनपर विशिष्ट और विलक्षण चित्रकारी है। उनकी अनेक किस्में देख कर भी मन तृप्त नहीं होता।

६. नाचती हुई गोपियों के आभूषणों की झिलमिल किरणों के साथ सारा संसार भी घूमता दिखाई देता है। वे आभूषण सखियों के उल्लास से भरे शरीर में ऐसे लगते हैं—मानो आनन्द कमल खिल उठे हों।

७. इस प्रकार खेल खेलते हुए सबका मन आनन्द से पूरित हो गया है। चित्त में सच्ची और पक्की लगन लगी और प्रीतम से स्नेह प्रगाढ़ हुआ।

८. प्रेम का तीव्र प्रवाह चल पड़ा। शूरवीरों में शूर, महामति अधुर मिला कर रस पीती हैं। लेकिन पूर्ण सचेत रह कर। ताकि तन्द्रा न आ जाये।

९. इंद्रावती आनन्द करती हैं, खेल टूटने नहीं देती। खेलते, फिरते हुये स्वामी को आवेग में भर उछल-उछल कर चुम्बन देती है।

राग सिंधूडो

ओरो आवो वाला आपण घूमडले घूमिए, वाणी विविध पेरे गांऊं ।
अनेक रंगे रस उपजावीने, मारा वालैया तूंने वालेरी थाउं ।। १

घोघरे घाटडे स्वर वोलाविए, बीजा अनेक स्वर छे रसाल ।
झीण झीणा झीणा झीण झीनेरडा, मीठा मधुराने वली रसाल ।। २

घूमडलो घूमवानो रे वालैया, मुने छे अति घणो कोड ।
साम सामा आपण थंने घूमिए, मारा वालैया, आपण बांधीने होड ।। ३

ए रामत अमे रब्दोने रमसूं, साथ सकल तमे रेहेजो जोई ।
हूं हारूं तो मोपर हसजो, मारो वालोजी हारे तो हस जो मां कोई ।। ३

घूमडलो वालो मोसूं घूमे छे. वचन मीठडा रे गाए ।
अंग वस्तर भूषण मीठडा लागे, वचे वचे कंठडे रे वलाए ।। ४

हारया हारया कहे स्वरवां, हांसी हरषे उपजावे ।
हूँ जीती जीती कहे घोघरे, साथ सहूने हंसावे ।। ६

ए रे घूमडले हांसी रे साथने, रहे नहीं केमे झाली ।
लडथडे पडे भोम आलोटे, हंसी हंसी पेट आवे रे खाली ।। ७

ए रामतडी जोई कहे सखियो, इंद्रावतीएं राखी रेख ।
साथ सहूने वाली घणूं लागी, मारा वालाजीने वली विसेख ।। ८

प्रकरण २३ ।। चौपाई ५३५ ।।

राग वसंत

कोणियां रमिये रे मारा वाला, गाईए वचन सनेह ।
मनसा वाचा करी करमना, सीखो तमने सीखवूं एह ।। १

प्रकरण—२३

१. इधर आओ स्वामी ! अब हम 'चक्करी का खेल' खेलें । घूमते हुये मैं तरह-तरह के गीत सुनाऊँ । अनेक तरह का आनंद दे कर हे प्रियतम, मैं आपकी और भी अधिक प्यारी बन जाऊँ ।

२, हम ज़ोर से, स्वरित स्वरों में गाएंगी । और मेरे साथ की सखियाँ भी मधुर गीत गाएंगी । पहले हम महीन, फिर अधिक मधुर और फिर अत्यधिक कोमल या मधुरतम स्वर में मदिर प्रेम गीत गाएँगी ।

३. घूम-घूम कर नाचने में मुझे बहुत हर्ष होता है । हम एक-दूसरे के सामने खड़े होकर हाथ पकड़े हुए होड़ लगाकर घूमते हुए चले जाएं ।

४. यह खेल हम मस्त होकर खेलेंगे । हे सखियों, तुम सब देखती रहो । अगर मैं हार जाऊं तो मुझ पर खूब हंसना । लेकिन हमारे प्राण-प्रियतम हार जायें, तो कोई भी हंसना नहीं ।

५. स्वामी, मेरे साथ घूमते हुये नाच रहे हैं । वे पुनः बड़े मधुर स्वर से गा रहे हैं । उनके मनोहर अंग और वस्त्र सब कितने सुन्दर और सजीले लग रहे हैं । वे बीच-बीच में सबसे गले मिलते हैं ।

६. 'पिया हार गये' ऐसा कहकर स्वयं ही वे अपने स्वरों में गाने लगते हैं । ऐसा सुन कर सब को आनंद होता है । वे गंभीर स्वर में 'मैं जीत गई' ऐसा भी कहते हैं और सखियों को हंसाते हैं ।

७. इस घूमने के नृत्य में सखियों की हंसी थमती नहीं । वे पृथ्वी पर लोट पोट हो जातीं है । हंस-हंस कर पेट खाली हो गया ।

८. इस खेल को देखकर सब सखियाँ कहती हैं कि हे इन्द्रावती, तूने हमारी टेक रख ली । हम सब को तो यह खेल अच्छा लगा ही, स्वामी को और भी अच्छा लगा । इंद्रावती सबको प्यारी लगी विशेषकर स्वामी को तो वे अधिक प्यारी लगती ही हैं ।

प्रकरण—२४

१. हे स्वामी, चलें कोणियां मिला कर खेलें । आपके अनुग्रह के स्नेह-संपूरित गीत गायें । सखियों, मन वचन कर्म से प्रेममय हो जाना है तुम्हें अभी और भी सीखना है ।

ए रामतडी जोरावर रे, दीजे ठेक अंग वाली।
रमता सोभा अनेक धरिए, गाईए वचन कर चाली ॥ २

करें रमिएं कोणियां रमिएं, चरण रामतडी कीजे।
वली रामतमां विलास विलसी, प्रेम तणां सुख लीजे ॥ ३

जुओ रे सखियो वालो कोणियां रमतां, भांत भांत अंग वाले।
सखियो रामत बीजी करी नव सके, उभली जोड निहाले ॥ ४

कर मेलीने कोणियां रमिएं, कोणी मेलीने करे।
अंगडा वाले नयणा चाले, मनडा सकलना हरे ॥ ५

ए रामतना रस कहूं केटला, थाए निरतना रंग।
हस्त चरणना भूषण सर्वे, बोले बंनेना एक बंग ॥ ६

लटके गाए लटके नाचे, लटके मोडे अंग।
लटके रामत रेहेस लटके, लटके सांईं लिएं संग ॥ ७

मारा वालाजीमां एक गुण दीसे, जाणे रामत सीख्या सहू पेहेली।
इंद्रावतीमां बे गुण दीसे, एक चतुर ने रमतां गेहेली ॥ ८

प्रकरण २४ ॥ चौपाई ॥ ५४३ ॥

राग कालेरो

आवो वाला रामत रासनी कीजे, आपण कंठडे बांहोंडी काहांन लीजे ॥ १

आ वेष केम करी ल्याव्या रे वालैया, अमने थयो अति मोह।
ख्यण एक अमथी अलगां म थाजो, अमें नही खमाए रे विछोह ॥ २

आ वेष अमने वालो घणूं लागे, वेष रसाल अति रंग।
द्रष्ट थकी अलगां म थाजो, डीठडे ठरे सरवा अंग ॥ ३

२. देखो, यह खेल भी बहुत जोरदार है। अंगों को मोड़-मरोड़ कर ठुमका दो। फिर एक साथ नाचते हुए कूदना बड़ा रोमांचकारी है। साथ ही हाथ चला कर भाव प्रदर्शित करते हुए गीत गाओ।

३. आओ हम हाथ मिला-मिलाकर, कोहनी और चरणों को मिला-कर नाचें। फिर नाचते हुए आनन्द प्राप्त करें और इस प्रेम का सुख अन्तर में ग्रहण करें।

४. देखो सखियों, स्वामी कोणियों से खेलते हुये कितनी तरह से अंग मरोड़ रहे हैं, हमारी दूसरी सखियाँ यह खेल खेल ही नहीं सकतीं। केवल उन दोनों की युगल जोड़ी देख कर मग्न हो रहीं हैं।

५. वे पहले हाथ मिलाकर कोहनी मिलाते हैं फिर कोहनी मिला कर हाथ। अंग-मरोड़ कर नयनों से प्रेमपूर्ण कटाक्ष चलाते हैं और सबका मन मोह लेते हैं।

६. इस खेल के आनन्द का कितना वर्णन करूं। इस नृत्य में बहुत ही आनन्द है। इसमें हाथों और पाँवों के सभी आभूषण एक ही लय में बजते हैं।

७. वे सभी लटक कर गाती हैं, मटक के नाचतीं हैं और लहरियाँ ले-लेकर ही अंगों को मोड़ती हैं। लटका ले कर रास की रहस्यमयी रामतें खेलती हैं। इसमें भी स्वामी का साथ नहीं छोड़तीं।

८. हमारे स्वामी में एक गुण है, मानों पहली बार ही खेल सीखे हों। इंद्रावती में दो गुण हैं। एक तो वह चतुर नागरी हैं, फिर अलमस्त होकर खेलती हैं।

प्रकरण—२५

१. आओ स्वामी, हम रास का खेल खेलें। हम गलें में बाहें क्यों न डाल लें!

२. आप ऐसा मनोहर वेष धारण करके आये हैं कि हमें आपसे ही मोह हो गया है। जब एक क्षण भी हमसे विलग होते हैं तो हमसे यह वियोग सहन नहीं होता।

३. आपका यह मनोहारी रूप और मनोरम वेष हमें बड़ा सुन्दर लगता है। इसे हमारी दृष्टि से एक क्षण के लिए भी ओझल न कीजिये। इसे देखकर हमारे अंग शीतल होते हैं।

आ वेष अमने गमे रे वालैया, लीधों कोई मोहन वेल ।
नयणे पल न आवे रे वालैया, रूप दीसे रंग रेल ।। ४

रामत करतां रंग सहू कीजे, ख्यण ख्यण आलिंघण लीजे ।
अधुर तणो जो रस तमे पीओ, तो अमारा मन रीझे ।। ५

उलट अंग न माए रे वालैया, कीजे रंग रसाल ।
पल एक अमथी न थाओ जुआ, रखे कंठ बांहोंडी टाल ।। ६

तम सामूं अमें ज्यारे जोईए, त्यारे जोर करे मकरंद ।
बाथो बथिया लीजे रे वालैया, एम थाए आनंद ।। ७

रामत करतां आलिंघण लीजे, ए पण मोटो रंग ।
साथ देखतां अमृत पीजे, एम थाए उछरंग ।। ८

आलिंघण लेतां अमृत पीतां, विनोद कीधां घणां हांस ।
कठण भीडा भीड न कीजे रे वालैया, मुझाए अमारा स्वांस ।। ९

प्रकरण २५ ।। चौपाई ५५२ ।।

छंदनी चाल

सखी एक भांत रे, मारो वालोजी करे छे वात रे ।
लेई गले बाथ रे, आंणी अंग पासरे, चुमन दिए चितसूं ।। १

मारा वाला मांहें कल, अंगे अति बल ।
रमे घणें बल, रंग अविचल, वल्लभ अति वितसूं ।। २

आ जुओ तमे स्याम, करे केवा काम ।
भाजे मूसी हांम, राखे नहीं मांम, हरवे घणें हितसूं ।। ३

मारा वालासों विलास, स्यामा करे हांस ।
सूधो रंग पास, करी विस्वास, जुओ जोपे खंतसूं ।। ४

४. आपका यही वेष अच्छा लगता है स्वामी । आप तो कोई मोहनवेल जैसे हैं । नयनों की पलक झपकना बन्द हो जाता है । रूप आनन्द की लहरों जैसा शोभित है ।

५. हम रामतें खेलते हुए आनन्द करेंगे, क्षण-क्षण में आलिंगन करेंगे । यदि आप भी हमारे इन अधरों का रस पियें तो हमारा संतृप्त मन संतुष्ट हो जाये ।

६. अंग में उत्सुकता समाती नहीं है । हमसे आप रंग पूर्ण विलास कीजिए । हमसे एक पल भी अलग न होइये । गले में बांहें डाले रहिए इन्हें हटाइये नहीं ।

७. आपको सम्मुखीन पाकर हमारा मन मकरन्द ज़ोर करता है । गले में वांहे डालकर लिपट जाओ स्वामी ! सचमुच बड़ा आनन्द आता है । (काम शक्ति के आवेग का शमन प्रभु में एकाकार हो जाने से होता है)

८. नृत्य करते हुए गले मिलने में बड़ा आनन्द आता है । अपनी अंगनाओं के देखते हुए अधरों का रस पान करो तो मजा आयेगा ।

९. गले मिलें, अमृत पिएं और विनोदपूर्ण हंसी करें । परन्तु बहुत ज्यादा ज़ोर से न मिलिए स्वामी, हमारी सांसें घुटती हैं ।

प्रकरण—२६

१. हे सखी, मेरे बालाजी इसी तरह की प्रेमभरी बातें करते हैं, गले में बांहें डाल कर, पास खींचते हैं और प्रेम से चूम लेते हैं ।

२. मेरे स्वामी में भी बड़ी युक्तियां हैं, अंगों में बड़ी शक्ति है । उनमें बड़ा बल है । वे अविचलित आनन्द में बड़े जोश में भर कर खेल खेलते हैं ।

३. अरे जरा श्याम को तो देखो, कैसे काम करते हैं । गर्व (मान) नाश करके मनोकामना पूरी करते हैं । किसी का अहंकार शेष नहीं रखते । बड़े कौशल से हर लेते हैं ।

४. मेरे स्वामी से विलास करती हुई श्यामजी विनोदपूर्ण हंसी करती हैं । अपने भोलेपन से हमें आनन्दित करती हैं । पूर्ण विश्वास से समर्पित हैं । भले ही, तुम चाहे जितना सतर्क होकर उन्हें देखो ।

स्याम स्यामा जोड, करतां कलोल ।
रमे रंग रोल, थाए झक झोल, बंने एक मतसूं ।। ५

बेहू सरखा सरूप, मेली मुख कूप ।
पिए रस घूंट, अमृतनो लूट, लिए रे अनितसूं ।। ६

आलिंघण लिए, रंग रस पिए ।
बंने सुख लिए, लथबथ थिए, आ भीनी स्यामा पतसूं ।। ७

इंद्रावती वात, सुणो तमे साथ ।
जुओ अख्यात, बंने रलियात, रमतां इजतसूं ।। ८

प्रकरण २६ ।। चौपाई ५६० ।।

रास सामेरी

रामत आंबानी कीजे मारा वालैया, आवी ऊभा रहो लगतां रे ।
सखियो ज्यारे बल करे, त्यारे रखे कांई तमे डगतां रे ।। १

तमे आंबला ना थड़ थाओ, अमें चरण झालीने बेसूं ।
मारो आंबो दहोए दूधें सींचूं, एम केहेसूं प्रदख्यणा देसूं ।। २

केटलीक सखियो आंबलो सीचे, अमें चरण तमारे वलगां ।
द्रढ करीने अमें चरण ग्रह्या, जोईए कोंण करे अमने अलगां ।। ३

बल करीने तमे ऊभा रेहेजो, खससो तो हंससे तम पर ।
जो अमें चरण ग्रही नव सकूं, तो सहू कोई हंससे अम पर ।। ४

ते माटे रखे चरण चाचरो, थिर थई ऊभा रेहेजो ।
जो जोर घणो आवे तमने, त्यारे तमे अमने केहेजो ।। ५

अनेक सखियो चरणे वलगी, खसवा नहीं दीजे रे ।
वालो सखियो सहू थाजो सावचेत, ओलियो ऊपर सामी हांसी कीजे ।। ६

जे सखी सांचीं थईने वलगी, ते तां बछोडतां नव छूटे रे ।
ओलियो सखियो बल करी करी थाकी, ते तां उठाडतां नव उठे रे ।। ७

५. श्यामा श्याम जी की जोड़ी कलोल कर रही है। वे आनन्द में मग्न हैं। परस्पर केलि करते हैं—दोनों का एक ही मंतव्य है।

६. दोनों के एक से स्वरूप हैं। वे रस के घूंट पीते हैं। प्रेम-अमृत की लूट मची है, जिसमें वे अचिंत्य सुख ले रहे हैं।

७. आलिंगन लेते हैं, जोर से गले मिलते हैं, अधरों का रस पीते हैं। दोनों परस्पर आनन्द लुटाते हैं। श्यामा भी श्याम के रंग में रंग गई हैं।

८. इन्द्रावती की बातें तुम सभी सुन्दर सखियों सुनो, इनका हाल तो देखो। दोनों रंग में मस्त हैं। वे मान पूर्वक खेल रहे हैं।

प्रकरण—२७

१. अब आम वृक्ष का खेल खेलें स्वामी ! आप जाकर खड़े हो जाइये। सखियाँ अगर जोर भी लगाएं तो आप हिल न जाइयेगा।

२. आप आम का तना बन जाइये। हम आप के पांव पकड़ लेंगी। मैं अपने आम को दही-दूध से सीचूंगी और ऐसा करते हुए प्रदक्षिणा करूंगी।

३. कुछेक सखियां आम को सींचती हैं, हम आपके चरणों से लिपटी हैं। हमने बड़े जोर से पाँव पकड़ रखे हैं, देखें कौन हमें अलग करता है !

४. आप बलपूर्वक यहीं खड़े रहिए, अगर आप हिलेंगे, तो आप पर हम सब हंसेंगी। जो हम चरणों को पकड़े न रह सकीं, तो शेष बची सखियां हम पर हंसेंगी।

५. इस लिए आप पांव न हिलाइयेगा। स्थिर करके खड़े रहिए। यदि आप पर अधिक जोर पड़ रहा हो, तो हमें बताइये।

६. तब बहुत-सी सखियाँ चरणों से लिपट गईं। 'इन्हें जरा-सा भी हिलने नहीं देना है। स्वामी और सखियों, सुनो तुम सब सावधान रहना। वरना, सामने वाली तुम पर हंसी करेंगी।'

७. जो सखी सच्चे दिल से चिपटी है, उसे तो चरणों से कोई अलग नहीं कर सकता। दूसरे पक्ष की सखियां जोर लगाकर थक गयीं, परन्तु उठाने से वे चरणद्वय उठे नहीं।

जे सखी चरणें रही नव सकी, ते पर हांसी थई अति जोर ।
इंद्रावती बालो ने सखियो, दिए ताली हांसी करे सोर ।। ८

प्रकरण २७ ।। चौपाई ५६८ ।।

राग आसावरी

रामत उडन-खाटलीनी, मारा वालाजी आपण कीजे रे ।
रेत रूडी छे आंणी भोमे, ठेक मृग जेम दीजे रे ।। १

सखियो मनमां आनंदियो, ए रामतमां अति सुख ।
साथ सहू रब्दीने रमसूं, मारा वालाजी सनमुख ।। २

पेहेलो ठेक दीधों मारे वालें, पछे जो जो ठेक अमारो ।
तो मारा वचन मानजो सखियो, जो देऊं ठेक वालाजीथी सारो ।। ३

जुओ रे सखियो तमे वालोजी ठेकतां, दीधी फाल अति सारी ।
निसंक अंग संकोडीने ठेक्या, जाऊं ते हूँ वलिहारी ।। ४

हांऊं हांऊं रे सखियो तमे ठेक वखाण्यो, ए तो दीधों लडसडतां ।
एवा तो ठेक अमें सहू कोई देतां, सेहेजे रामत करतां रे ।। ५

रहो रहो रे सखियो तमे ठेक वखाण्यो, हवे जो जो अमारो ठेक रे ।
एवी तो फाल साथे केटलीक दीधी, तूं तो मोही उडाडतां रेत रे ।। ६

कोंणे हंसिए कोंणें वखाणिए, ए रामत थई अति रंग ।
एणी विधें दीधां अमें ठेक, मारा वालाजीने संग ।। ७

ए रामतडी जोई करीने, हवे निरतनी रामत कीजे ।
रूडी रामत इंद्रावती केरी, जेमां साथ वालो मन रीझे ।। ८

प्रकरण २८ ।। चौपाई ५७६ ।।

८. जो सखी चरणों में न रह सकी, उन पर बहुत हंसी हुई। सखी इन्द्रावती स्वामी और अन्यान्य सखियों सहित ताली देकर बड़ा शोर करती हुई हंसती हैं।

प्रकरण—२८

१. स्वामी चलिये, अब हम उड़न खटोले का खेल खेलें। इस भूमि की रेत बड़ी अच्छी है, इस पर मृग की तरह उछल कर चौकड़ी भरिये।

२. सखियां मन में आनन्दित हुई कि इस खेल में बहुत मज़ा है। सब सखियाँ होड़ बांध कर खेलेंगी, स्वामी के सामने शर्त लगायेंगी।

३. पहली छलांग मेरे स्वामी लगायेंगे। फिर मेरी उड़ान देखना। तभी मेरे वचनों का विश्वास करना। हे सखियों, देखना मैं स्वामी से भी बढ़ कर कूदूंगी।

४. देखो, सखियों देखो, स्वामी छलांग लगा रहे हैं। उन्होंने कैसी सुन्दर कुदान लगाई है। उन्होंने निःसंकोच अंगों को समेट कर कैसी छलांग लगाई! हाय! मैं, उन पर बलिहारी जाऊं।'

५. 'अरी सखियों, तुम उनकी छलांग की प्रशंसा करती हो, यह तो उन्होंने लड़खड़ाते हुए पैरों से छलांग लगाई है। ऐसी कुदान तो हम सब भी दे सकती हैं, सहज खेलते हुए ही।

६. ठहरो, ठहरो सखियों 'तुमने इनकी उड़ान देखी! अब हमारी भी छलांग देखना। वैसी छलांगें तो सखियां कितनी ही बार लगा चुकीं हैं। उन्होंने तो कितनी रेत उड़ाते हुए (घिसटते हुये) कुदान भरी है।'

७. किसकी हंसी करे! किसकी प्रशंसा! यह कौतुकपूर्ण शोभा, यह रामत बड़े आनन्द की रही। इस तरह हमने स्वामी के साथ छलांग लगाई।

८. यह खेल देख कर अब नृत्य की रामत करेंगे। इन्द्रावती का खेल अच्छा है, जिससे सुन्दर सखियों और स्वामी का मन प्रसन्न होगा।

राग कल्याण

वाला तमे निरत करो मारा नाहोजी, अमनें जोयानी खांत ।
साथ जोई आनंदियो, कांई वेष देखी एक भांत ॥ १

तमे निरत करो रे भामनी, निरत रूडी थाए नार ।
तमे वचन गाओ प्रेमना, पासे सुर पुरूं रसाल ॥ २

सुणो सुंदर वल्लभजी मारा, निरत केणी पेरे थाए ।
अमने देखाडो आयत करी, कांई उलट अंग न माए ॥ ३

जेणी सनंधे पांउं भरो, अने अंग वालो नरम ।
भमरी फरो जेणी भांतसूं, अमें नाचूं फरूं तेम ॥ ४

हस्त करी देखाडिए, अने ठमके दीजे पाए ।
वचन गाईए प्रेमना, कांई तेना अरथज थाए ॥ ५

कंठ करीने राग अलापिए, कांई स्वर पूरे सकल साथ ।
वेण · वेणा रबाबसों, कांई ताल बाजे पखाज ॥ ६

करतालमां बाजे झरमरी, कांई श्री मंडल हाथ ।
चंग तंबूरे रंग मले, वालो नाचे सकल साथ ॥ ७

भूषण बाजे भली भांतसूं, धरती करे धमकार ।
सबद उठे सोहांमणा, उछरंग वाध्यो अपार ॥ ८

निरत करी नरम अंगसूं, कांई फेरी फरया एक पाए ।
छेक वाले छेलाईसूं, तता थेई थेई थाए ॥ ९

एक पोहोर आनंद भरी, कांई रंग भर रमिया एह ।
साथ सकलमां वालेंजी, रमतां कीधां सनेह ॥ १०

प्रकरण—२६

१. स्वामी, हे प्रियतम ! अब आप नृत्य करें ! हमारे मन में उसे देखने की बहुत उत्कण्ठा है। इस विशेष प्रकार का वेष देख कर सखियों को बड़ा आनन्द आया।

२. 'हे श्यामा स्वामिनी, आप नाचिए। स्त्रियां अच्छा नाचतीं हैं। आप सब के साथ समवेत स्वर में प्रेम पूर्ण वचन गाइये। मैं भी पास से स्वर में स्वर मिलाऊंगा।'

३. मेरे सुन्दर प्रियतम, सुनिए ! नृत्य कैसे होता है, कृपा कर मुझे करके दिखाइये। मेरे मन में इस इच्छा से बड़ी प्रसन्नता होती है, जो अंतर में नहीं समातीं।

४. आप जिस रीति से पाँव घुमाकर ठुमका लगायेंगे और अंगों को मरोड़ेंगे तथा गोल घूमेंगे मैं भी उसी प्रकार नाचूंगी और साथ फिरुंगी।

५. हाथ ऊपर कर मुद्राएं दिखाइये और ठुमका दे कर चाल चलिए। साथ ही, प्रेम भरे गीत गाइये—जिनका अर्थ नृत्य में स्पष्ट हो जाय।

६. कण्ठ से राग अलापिये। समस्त सखियां स्वर पुराएंगी—मिलाएंगी। बाँसुरी, सारंगी और पखावज के स्वर बजेंगे।

७. करताल और छरमरी बजाएंगे और हाथ में श्री मण्डल बजेगा। मृदंग और तानपुरों का स्वर साथ मिल जायेगा और सब साथ मिलकर नाचेंगे।

८. आभूषण अच्छी तरह बज रहे हैं। पृथ्वी पर धम-धम का गम्भीर उद्घोष हो रहा है। शब्द-स्वर बड़े सुहाने लग रहे हैं। मन की उमंग बहुत बढ़ गयी है।

९. वे सुकुमार अंगों से नाचते हैं और एक पांव पर एक साथ गोल फिरते हैं। एक दम त्वरा से मुड़ कर फिर से घूमते हैं। तेज गोल चक्कर काटते हैं। ता-ता-थई-थई का स्वर गूंज रहा है।

१०. एक पहर तक आनन्द-अनुरागपूर्ण यही खेल खेला गया। सुन्दर सखियों के साथ स्वामी ने बड़े आनन्द में भर कर स्नेह से खेल किया।

आनंद घणों इंद्रावती, वालाजीने लागे पाए ।
अवसर छे कांई अति घणों, वाला रासनी रामत मांहें ।।११

ते सरवे चित धरो, अमसूं रमो अति रंग ।
कहें इंद्रावती साथने, रमवानी घणी उमंग ।। १२

प्रकरण २६ ।। चौपाई ।। ५८८ ।।

चरचरी छंद

मृदंग चंग, तंबूर रंग, अति उमंग, गावती सखी स्वर करी ।। १

करताल ताल, बाजे विसाल, वेण रसाल, रमत रास सुंदरी ।। २

नार सिणगार, भूषण सार, संग आधार, निरत करे सनंधरी ।। ३

घम झणा झण, जोड रणा रण, विछुडा ठणाठण, छेक वाले फेरी फरी ।। ४

वचन गाए, हस्तक थाए, भाव संधाए, देखाडे वालो खंत करी ।। ५

हांस विलास, सकल साथ, लेत बाथ, मध्य रामत हेत करी ।। ६

वेष वसेख, राखो रेख, सुख लेत, वाहंत मुख वांसरी ।। ७

धमके धारुणी, गाजती, गारुणी, चांदनी रैणी, जोत करे जामंत री ।। ८

रंग वनमां, सोभित जमुना, पसू पंखीना, सबद रंगे थंत री ।। ९

११. इन्द्रावती के मन में अपार आनन्द है। वह पिया के चरणों में प्रणाम करती हैं। कहती हैं—'हे पिया, रास की रामत खेलने का यह बड़ा सुन्दर अवसर मिला है।

१२. यह सब बातें ध्यान में रख कर आप हम से क्रीड़ा रचाइये। इन्द्रावती कहती हैं कि समस्त सखियों के मन में खेलने की बड़ी चाह है।'

प्रकरण—३०

१. मृदंग, चंग, तम्बूरा के साथ सबमें बहुत उमंग है, और सखियां आनन्द से भर कर गाती हैं।

२. हाथ से तालियां बजाती हैं। वे मधुर वीणा बजाती हैं—अन्य गोप सुंदरियां रास का खेल खेल रहीं हैं।

३. नारियों के सुन्दर आभूषण धारण किये हैं। अपने प्राणाधार स्वामी के साथ बड़ी युक्ति-पूर्वक नाच रही हैं।

४. झण-झण का स्वर है। जोड़ों में प्रतिद्वंद्विता ठन गई है। बिछुए से ठनाठन का स्वर निकल रहा है। स्वामी ठुमका देकर नाचते-फिरते हैं।

५. सखियाँ गीत गाती हैं। हाथ से भाव-नृत्य दिखाती हैं। जिसे स्वामी को प्रसन्न होकर दिखाती हैं।

६. वे सब सखियों से हास-परिहास और विलास करते हैं, गले लगते हैं। रामत के बीच बड़ा नेह दिखाते हैं।

७. उन्होंने विशेष वेष धारण किया है। अपनी दी हुई टेक रखी है। रसपगी वंशी को गोपांगनाएं मुख से लगाकर सुख पाती हैं।

८. पृथ्वी से धमक उठती है। आसमान गरजता है। चाँदनी रात में सब कुछ चमाचम चमक रहा है।

९. वन में आनन्द छाया है। यमुना शोभायमान है, पशु-पक्षियों के झुंड आनंदपूर्ण कलरव में मग्न हो रहे हैं।

पसू पंखी, जुए जंखी, मिले न अंखी, सुख देखी रामत री ।। १०

निरत करे, खंत खरे, फेरी फरे, इंद्रावती एक भांत री ।। ३१

वालती छेक, अंग बसेक, रंग लेत, छबके चुमन देत री ।। १२

प्रकरण ३० ।। चौपाई ।। ६०० ।।

राग कालेरी

हम चडी सखी संग रे

आपण रमसूं नवले रंग, सखी रे हम चडी ।।

रामतडी छे अति घणी, करसूं सघली सार ।
विविध पेरे सुख देऊं रे सखियो, जेम तमे पामो करार ।। १

अमने वेण बजाडी देखाडो, जेवो पेहेलो वायो रसाल ।
वेण सांभलतां ततख्यण वालैया, अमें जीव नाख्या तत्काल ।। २

जुओ रे सखियो वालो वेण बजाडे, अधुर धरी अति रंग ।
वेण सांभलतां ततख्यण तमने, काम वाध्यो सर्वा अंग ।। ३

सुणो रे सखियो हूँ वेण बजाडूं, वेण तणी सुणो वाणी ।
ख्यण एक पासेंथी अलगो न करूं, राखूं हैडामां आंणी ।। ४

उलट तमने अति घणों वाध्यो, वली रंग उपजावुं निरधार ।
जेटली रामत कह्नो रे सखियो, ते रमाडूं आ वार ।। ५

मान घणो मानवंतियोंने, तामसियों झुंझार ।
प्रेम घणो अंग आ संगे, एणे व्रह नहीं लगार ।। ६

तामस मांहें तामसियों, एणी वातडी कही न जाए ।
कहे इंद्रावती सुणो रे साथजी, वालें एम कीधां अंतराए ।। ७

प्रकरण ३१ ।। चौपाई ।। ६०७ ।।

१०. पशु-पक्षी तृषित नेत्रों से देख रहे हैं। आँखें तनिक झपकती नहीं हैं। आनन्द से स्वर उच्चरित हो रहे हैं।

११. सखी इन्द्रावती सच्ची लगन से नृत्य करती है। गोल घूमती है। जो विशेष प्रकार से आनंद प्रदायक है।

१२. वह विशेष ढंग से अगों को मोड़ती हैं, आनन्द पाती हैं, पलट कर चुम्बन देती हैं।

प्रकरण—३१

१. अब हम समस्त सखियों के साथ आगे बढ़ गई हैं। हम नये-नये रंग में भर कर खेलेंगी। हम चड़ी की रामत बड़ी अच्छी है, इसे अच्छी तरह खेलूंगी। तुम सबको मैं अनेक तरह के सुख दूंगी, ताकि तुम सब को तृप्ति मिले।

२. 'हे स्वामी! हमें वंशी बजाकर सुनाइये। ठीक पहले जैसी। हे स्वामी, आप की वंशी सुनते ही हमने अपने प्राण निकाल कर रख दिए।'

३. देखो री सखियों, वे कैसे मंजुल ढंग से अधरों पर धारण करके वंशी बजा रहे हैं। इनकी वंशी को सुनते ही हमारे अंग-अंग में काम मिश्रित माधुर्य भाव का संचार हुआ।

४ स्वामी कहते हैं, सुनो 'सखियो मैं वंशी बजाता हूँ। वंशी के स्वर सुनो। मैं तुम्हें एक क्षण भी अपने से अलग नहीं करूंगा। अपने मन में संजोए रखूंगा।

५. तुम्हें बहुत खुशी हुई है न! इससे मैं और भी आनन्द बढ़ाऊंगा। जितनी बार भी जिस तरह से बताओ भी तुम्हें सब खेल खिला दूंगा।'

६. इस बात से मानवती—सखियों का मान-गर्व बढ़ गया। तामसी सखियों को अभिमान हो गया। उन्होंने स्वामी का प्रेम मात्र ही देखा था, उन्होंने विरह का अनुभव ही नहीं किया था।

७. तामस गुण प्रबल होने पर तामसी सखियों की बात कही नहीं जाती। उनका यह अहंकार भंग करने के लिये ही स्वामी अतंर्ध्यान हो गये।

रामत अंतरध्याननी

व्रंदावनमां रामत करतां, जुजवो थयो सरवे साथ ।
वली आवी ततख्यण एक ठामे, नव दीसे ते प्राणनो नाथ ।।
मारो जीव जीवनजी, लेई गयो हो स्याम ।। १

काया केम चाले तेह रे, कालजडूं कांपे जेह रे ।
ऊभी केम रहे देह, बांध्या जे मूल सनेह ।।
त्राटकडे दीधां छेह, मारो जीव जीवनजी लेई गयो हो स्याम ।। २

सखियो मलीने विचारज कीधो, पूछिए स्यामाजी किहां स्याम ।
रामतनों रंग हमणा बाध्यो, मन मांहें हुती मोटी हाम ।। ३

साथ मांहों मांहें खोलतां, नव दीसे स्यामाजी त्याहें ।
त्यारे जुजवी दोडी जोवा वनमां, ए बंने सिधाव्या क्याहें ।। ४

जोवंतां जुजवा वनमां, स्यामाजी लाघ्या एक ठाम ।
स्यामाजी स्याम किहां छे, मारूं अंग पीडे अति काम ।। ५

साथ स्यामाजी ने देखी करी, मनडा थया अति भंग ।
स्यामाजी तिहां बोली न सके, जेमा एवडो हुतो उछरंग ।। ६

घडी एक रहीने स्यामाजी बोल्या, आपणने मूक्या निरधार ।
दोस डीठो जो आपणो, तो वनमां मूक्या आधार ।। ७

वचन सांभलतां स्यामाजी केरा, ख्यण नव लागी वार ।
जे जेम आवी दोडती, ते तां पाछी पडी ततकाल ।। ८

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रही, उठाडे सरव साथ ।
आपणने केम मूकसे, मारा प्राणतणो जे नाथ ।। ९

सखी व्रंदावन आपण खोलिए, इहांज हसे आधार ।
जीवतणो जीवन छे, ते तां नहीं रे मूके निरधार ।। १०

प्रकरण—३२

अंतर्ध्यान लीला

१. वृन्दावन में खेलते हुई सब सखियाँ अलग हो गईं। फिर एक जगह आईं, जहाँ स्वामी ने उनको छोड़ दिया था। वहाँ भी वे न दिखाई दिये। हमारा जीव और प्राण श्याम हर ले गये।

२. शरीर कैसे चले ! जब कलेजा काँप रहा हो। जो देह उनके मूल स्नेह से जुड़ी हो वह खड़ी कैसे रहे ? वियोग ने हमारे अरमानों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। हमारा जीव और जीवन श्याम ले गये।

३. सखियों ने मिल कर विचार किया—'तब चलें, श्यामा जी से पूछें कि श्याम कहाँ हैं। खेल का रंग तो अभी जमा ही था। हमारे मन में तो अभी बहुत सारी इच्छाएं शेष थीं।'

४. सब सखियाँ मिल कर ढूंढती रहीं। पर कहीं भी श्यामा जी का पता नहीं लगा। तब सब अलग हो कर खोजने लगीं कि दोनों कहाँ चले गये।

५. वन में खोजते हुये श्यामा जी एक जगह मिल गईं। 'श्यामा जी, श्याम कहाँ चले गए हैं ? उनके बिना हमारे मन की चाहना बहुत बढ़ गई है। हमारी कामैषणा हमें दुख दे रही है।'

६. लेकिन श्यामा जी को देख कर सभी सखियों के मनोरथ भंग हो गये। जिस श्यामा जी में इतनी उमंग थी वे, हतप्रभ होकर बोल भी नहीं पा रही थी।

७. एक घड़ी रुक कर श्यामा बोलीं—'हमें स्वामी छोड़ गये हैं। संभवत: हमारा कोई दोष उन्होंने देख लिया है। इसलिए वन में हमारे स्वामी हमें अधीर छोड़ कर निकल गए।'

८. श्यामा जी के वचन सुनते ही जो सखियाँ जैसी दौड़ती चली आ रही थीं, उसी क्षण धरती पर गिर पड़ीं। एक पल की भी देर न लगी।

९. उनमें कुछ सखियाँ खड़ी रहीं। वे दूसरों को उठाने लगीं। बोलीं, 'हमारे प्राणों के जो नाथ हैं, वे हमें कैसे छोड़ेंगे ?

१०. हे सखियों, चलो इसी वृन्दावन में उन्हें खोजें। वे यहीं कहीं होंगे। जो हमारे जीवन के प्राणाधार हैं। निश्चय ही वे इस तरह हमें नहीं छोड़ेंगे।

सखी ए रे आपणने मूकी गयो, एणे दया नहीं रे लगार।
हवे अहीं थकी केम उठिए, मारा जीवन विना आधार ।। ११

सखी केही रे सनंध चालिए, मारा लेई गयो ए प्राण ।
सखियो अमने सूं रे कहो छो, अमे नहीं रे अवाए निरदाण ।। १२

मारो जीव कलकले आकलो, अने काया थरके अंग ।
कहोजी अवगुण अमतणां, जे कीधां रंगमां भंग ।। १३

सखी दोस हसे जो आपणो, तो वालें कीधूं एम ।
चित ऊपर जो चालतां, आपण केहेतां करतो तेम ।। १४

हाय हाए रे दैव तें सूं करयूं, केम रहे रे कायामां प्राण ।
जीवनजी मूकी गया, नव कीधूं ते अमने जाण । १५

हाए हाए रे विधाता पापनी, तें कां रे लख्या एवा करम ।
दैवतणी तूंने बीक नहीं, जे तें एवडो कीधो अधरम ।। १६

हाए हाए रे दैव तूंने सूं कहूं, तें वारी नहीं विधाता ।
एणी पापणिएं एम केम लख्यूं, वालो मूकसे कलकलतां ।। १७

सखी गाल देऊं हूं दैवने, के देऊं विधाता पापिष्ट ।
एणे लेख अमारा एम केम लख्या, एणे दया नहीं ए दुष्ट ।। १८

सखी दैव विधाता सूं करे, एम रे थैयो तमे कांए ।
दोष दीजे कांई आपणो, जे चूक्या सेवा मांहें ।। १९

सखी सेवा चूक्या हसूं आपण, पण वालो करे एम केम ।
आपणने एम रोवंतां, वालो मूकी गया छे जेम ।। २०

सखी चूक्या हसूं घणूं आपण, हवे लागी कालजडे झाल ।
फिट फिट भूंडा पापिया, तूं हंजिएं न आव्यो काल ।। २१

एम रे सखियो तमे कां करो, बेहेनी द्रढ करो कां न मन ।
आपणने मूके नहीं, जेहेनूं नाम श्री क्रस्न ।। २२

११. हे सखी, वह हमें छोड़ गये तो क्यों ? उनके मन में ज़ारा भी दया नहीं है ? अब हम यहाँ से कैसे उठें ! जब प्राणों का तनिक भी सहारा ही नहीं रहा ।

१२. सखियों, हम आगे किस तरह चलें, वे तो हमारे प्राण ही ले गये । सखियों, हमें क्या कहती हो । हममें चलने की बिल्कुल हिम्मत नहीं है ।

१३. मेरा जीव व्याकुल हो रहा है और शरीर कांप रहा है । इस आयोजन में हमारा भला क्या दोष था—जो रंग में भंग करके चले गये ।

१४. हे सखी, हमारा दोष, कुछ तो अवश्य ही रहा होगा—जो स्वामी ने ऐसा किया । वे तो हमारे मनोनुकूल थे, जैसा हम कहते रहे, वे करते रहे थे ।

१५. हाय हाय ! दैव तू ने यह क्या किया रे ! शरीर में प्राण कैसे रहें ? हमारे जीवन के प्राण चले गये और उन्होंने हमें जरा खबर न दी ।

१६. हाय हाय, पापी विधाता ! तुमने ऐसा कर्म-लेख क्यों लिख दिया ! तुम्हें परमात्मा का भी डर नहीं, जो तूने इतना बड़ा अधर्म कर दिया ।

१७. हाय हाय रे विधि, तुझे क्या कहूँ । तूने विधाता को रोका नहीं । उस पापी ने क्या ऐसा कुछ लिख दिया था कि प्रियतम हमें कलपते-बिसूरते हुए छोड़-कर चले जाएंगे ।

१८. हे सखी, दैव को गाली दें कि विधाता पापी को । उसने हमारा कर्म-लेख ही ऐसा लिख दिया । उस दुष्ट को जरा भी दया न आई ।'

१९. 'हे सखी, दैव या विधाता क्या करे ? आप भला ऐसी कैसे हो गई हैं ? अपने आपको दोष दो, जो हम अपनी सेवा में चूक गये ।'

२०. 'सखियों ! हो सकता है कि हमसे भूल हो गई हो । परन्तु स्वामी भी ऐसा कैसे कर सकते हैं ! हमें वे किस तरह रोता छोड़ गये हैं । उन्हें भी तो ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये था ।'

२१. 'सखी, हमसे बहुत सारी गलतियां हो गई होंगी । अब तो कलेजे में आग धधक रही है । धिक्कार है तुम्हें, रे पापी काल, तू अब तक न आया ।'

२२. 'हे सखियों, आप ऐसा क्यों करती हो ? बहनों, तुम मन को पक्का क्यों नहीं करतीं ? जिनका नाम श्रीकृष्ण है, वे हमें नहीं छोड़ेंगे ।

सखी जोईए आपण वनमां, एम रे थैयो तमे कांए ।
जेनूं नाम श्री क्रस्नजी, ते बेठा छे आपण मांहें ।। २३

सुन्दरबाई कहे साथने, सखी एम रे थैयो तमे कांए ।
केड बांधो तमे कामिनी, आपण जोईए व्रंद्रावन मांहें ।। २४

वन वन फरीने खोलिए, वालो बेठा हसे जांहें ।
आपणने मूकी करी, जीवनजी ते जासे क्यांहें ।। २५

एक पडे एक लडथडे, एक आंसूडा ढाले अपार ।
केम चाले काया बापडी, मारा जीवन विना आधार ।। २६

कठण वेला मूने जाए रे बेहेनी, जेम रे निसरतां प्राण ।
काया एम थरहरे, अमें नाहीं रे गोताए निरवाण ।। २७

एम रे सखियो तमें कां करो, ए छे आपणो आधार ।
नेहेचे आपणने नहीं रे मूके, तमें जीवसूं करो रे करार ।। २८

विकल थई पूछे बेलडीने, सखी क्यांहें रे दीठा तमे स्याम ।
जीव अमारा लेई गया, मननी न पोहोंती हाम ।। २९

ए हंसे छे आपण ऊपर, जो न देखे आपणमां सनेह ।
जुओ वीटी रही छे वरने, अधख्यण न मूके एह ।। ३०

जुओ रे वलाका एहना, अंगो अंग वाल्या छे बन्ध ।
ते हंसे छे आपण ऊपर, आपण कीधी न एह सनंध ।। ३१

आ वचन बोले बेलडी, सखी मांहों मांहें करे विचार ।
ए खबर न दिए कोंणे कामनी, पोते राची रही भरतार ।। ३२

वन गेहेवर अमें जोईयूं, आगल तो दीसे अंधार ।
हवे ते किहां अमें जोईए, मूने सुध नहीं अंग सार ।। ३३

सखी पगला जुए प्रीतम तणां, साथ खोले व्रंदावन ।
नेहेचे आपणने मूकी गयो, हजी पिंडडा न थाए पतन ।। ३४

२३. सखियों, हम (उन्हें अकारण ही) बन में खोज रही हैं। तुम ऐसी क्यों हो गयी हो। जिसका नाम श्रीकृष्ण जी है, वह हमारे मध्य ही विराजमान हैं।

२४. सुन्दरबाई सखियों से कहतीं हैं :—'तुम ऐसी क्यों हो गईं हो ? सब कामिनियाँ कमर बांधो। हम वृन्दावन में उसे देखेंगी।

२५. बन-बन में जाकर देखो जहाँ स्वामी जाकर बैठ गये हैं। हमको छोड़ कर प्रीतम जायेंगे कहां ?

२६. एक गिरती है, एक धरती पर लोटती है, एक लगातार आँसू बहा रही है। बेचारा शरीर कैसे चले ? जीवन आधार के बिना रक्खा क्या है ?

२७. हमारे यह वियोग की घड़ी बहुत कठिनाई से व्यतीत हो रही है, मानो शरीर से प्राण निकल रहे हों। शरीर ऐसे में कांप रहा हैं। निश्चित ही, हम से कुछ भी ढूंढा नहीं जाता।

२८. इस तरह से सखियों, तुम सब क्या करती हो। वे तो अपने आधार हैं। आप मन में पक्का विश्वास जमा लो कि वे हमें कदापि छोड़ेंगे नहीं।

२९. व्याकुल होकर वे बेलों से पूछतीं हैं कि क्या आपने हमारे श्याम को देखा है ? जो हमारा जीवन हरण कर चले गये। अभी तो हमारी इच्छा भी पूर्ण नहीं हुई थी।

३०. हममें प्रेम की कमी देख कर वह बेल हम पर हंस रही है। देखो, वह अपने प्रीतम-वृक्ष से कैसे चिपटी है। एक क्षण भी छोड़ती नहीं।

३१. उसके बेल को देखो, जिसने वृक्ष के एक-एक अंग को घेर लिया है। वह हम पर हंस रही है कि हमने पहले ऐसी युक्ति क्यों न की।

३२. बेल के लिए कहे गये यह वचन कर कामिनियाँ परस्पर विचार करती हैं कि यह बेल किसी को पता क्या देगी—यह तो अपने प्रियतम में मग्न हैं।

३३. हमने आगे भी गहन वन ढूंढ़ा। पर आगे तो घोर अंधकार दिखाई देता है। अब हम कहाँ ढूंढ़े। हमें तो अपने शरीर की भी सुधि नहीं हैं।

३४. सखियाँ प्रियतम के पाँव के निशान देखती हैं। उन्होंने सारा वृन्दावन खोज डाला। वे सचमुच हमें छोड़कर चले गये हैं। न जाने किस आशा में अब तक शरीर पात नहीं हो रहा है।

सखी नेहेचल नेहडा आपणां, त्रूटे नहीं केमे तेह ।
आंणे अंगे मलसूं प्रीतम, सखी आस न छूटे एह ।। ३५

हाए हाए रे बेहेनी हूं सूं करूं, सूने भोम न दिए विहार ।
संधान सरवे जुआ यथा, ए रेहेसे केम आकार ।। ३६

कलकले मांहें कालजू, चाली न सके देह ।
प्राण जीवनजी लेई गया, जे बांध्या मूल सनेह ।। ३७

तेमां केटलीक सखियो ऊभी रही, मांहों मांहें करे विचार ।
कलकलतां केम मूकसे, कांई आपणने आधार ।। ३८

आंभो आवे मूने धणीतणों, एम वालो करसे केम ।
वली रामतडी कीजिए, आपण पेहेली करतां जेम ।। ३९

केम रे रामतडी कीजिए, काया केम रे चाले विना जीउ ।
रामतडी केम थाएसे, उठाए नहीं विना पीउ ।। ४०

एम रे सखियो तमे कां करो, ए छे आपणो आधार ।
मूल रामतडी कीजिए, ए नहीं रे मूके निरधार ।। ४१

साथ कहे छे अमने रे बेहेनी, इंद्रावती कहो छो सूं ।
आंणे नयणे न देखूं वालैयो, तिहां लगे केम करी उठूं ।। ४२

एणे समे इंद्रावती बाईए, तामसियों भेली करी ।
पडे राजसियो स्वांतसियों, करे ऊभियो अंक भरी ।। ४३

आंभो आंणों तमे धणी तणों, हाकली चित करो कांहे ।
रामत करतां आवसे, सुन्दरबाई झाले बांहें ।। ४४

मांहों मांहें विनोद घणो, उठो रामत कीजे रंग ।
तरत वालोजी आवसे, आपण जेना अंग ।। ४५

लीला कीधी जे वालैएं, आपण लीजे तेहेना वेष ।
अग्यारे बरस लगे जे रम्या, कांई रामत एह विसेख ।। ४६

प्रकरण ३२ ।। चौपाई ६५३ ।।

३५. हे सखी, हमारा सच्चा प्रेम प्रीतम के साथ है, इसलिये यह शरीर भी छूटता नहीं है। इसी शरीर से प्रीतम से मिलन होगा, यह आस नहीं छूटती।

३६. हाय हाय, अरी बहनों मैं क्या करूं! मुझे धरती भी अपने में समा नहीं लेती। मेरे तो अंग-अंग जैसे बिखर गये हैं। यह शरीर कैसे रहेगा।

३७. मन कलपता रहता है, देह चल नहीं सकती। मेरा प्राण मेरे जीवन धन प्रियतम ले गये हैं, जिनसे मेरा मूल (पूर्ण) का प्रेम है।'

३८. उनमें कुछेक सखियाँ खड़ीं रहीं। फिर वे आपस में विचार करने लगीं। हमें कलपते हुये वे हमें भला कैसे छोड़ देंगे। वही तो हमारे प्राण-आधार हैं, अवलंब हैं।

३९. मुझे प्रीतम पर विश्वास है, वे ऐसा नहीं कर सकते। हम जो खेल खेल रहे थे—उसे फिर से शुरू कर दें।

४० खेल खेलें, कैसे! शरीर प्राणों के विना कैसे चले! रामतें कैसे होगी, जब कि प्रीतम के बिना उठा ही नहीं जाता।

४१. ऐसे तुम सब ऐसा शोक क्यों करती हो भला! सखियों! सुनो, वे तो हमारे आधार है। चलो, पहले वाले खेल खेलें—वे हमें छोडेंगे नहीं, इस बात का निश्चय रखो।

४२. 'सभी सखियाँ मुझे कहती हैं। बहन इन्द्रावती' तुम क्या कहती हो! इन नेत्रों से जब तक प्रीतम को देख न लूं—तब तक कैसे उठूं।

४३. इस समय इन्द्रावती बाई ने तामसी सखियों को इकट्ठा किया। राजसी और सात्त्विकी सखियाँ ऐसी ही पड़ी रहीं। उन्हें भी उठा कर खड़ा किया गया।

४४. 'सुनो, तुम सब प्रीतम का विश्वास करो, अपने चित्त को संयत करो। हमें अपनी लीला का खेल रचाते देख कर वे स्वयं आ जायेंगे। सुन्दरबाई उन्हें बाँहों में भरकर मना ले रही हैं।

४५. परस्पर हंसते हुए उठो! खेलो, हम जिनकी अंगनाएं हैं वे स्वामी तुरन्त आ जायेंगे।

४६. ग्यारह वर्ष तक स्वामी ने जो-जो लीलाएं कीं—हम उनका वैसा ही वेष धारण करें। वही रामत विशेष हैं।

राग सामेरी

आनन्दे रोतां रमिए एम, जेनें कहिए ते लछरण प्रेम ।
तेना उडी गया सरवे नेम, रमतां कीधां कै चेहेन ।। १

सखी प्रेम ध्वजा केहेवाए, जेनूं प्रगट नाम कुली मांहें ।
ए तो प्रेम तणां जे पात्र, आपणथीं अलगो न थाए ख्यरण मात्र ।। २

ए अलगो थाए केम, अमें कहूं करे वालो तेम ।
अमें आतम सखियो एक, रमतां दीसे अनेक ।। ३

अमें परस पर कीधां परियाण, सखियो ते सरवे सुजारण ।
आपरण लीधां वेष अनेक, जे कीधों वालैएं वसेक ।। ४

आपरणमां थई वेष एक स्याम, जेंरणे निरखे पोहोंचे मन काम ।
वली थई वेष एक नन्द, ते कान्हजी लडावे उछरंग ।। ५

सखी वेष पूतना नार, भर जोवन आवी सिरणगार ।
विष भरया तेना अस्थन, आवी धवरावे कपटे मन ।। ६

चेहेन कीधां पामी मृत, विष वालाने थयूं अमृत ।
सोसी लीधी पूतना नार, गोकलमां जै जै कार ।। ७

वेष लीधां सखियो विचारी, दैत लीधां ते सहू संघारी ।
अंग आडो दीधो कै वार, व्रज लोक ते सकल करार ।। ८

एक जारणे जसोदा होए, कान्हजी माखरण मांगे रोए ।
उहां दूध चूल्हे उभराए, मातानूं मन कलपाए ।। ९

कान्हें छेडो ग्रह्यो उजातां, यसोदाजी थया रीसे रातां ।
कान्ह कहे माखन आपो पेहेलूं, त्यारे जारणे लागूं माताने गेहेलूं ।। १०

प्रकरण—३३

१. आनन्द में उमग कर रोते हुये खेलें। यही प्रेम के लक्षण हैं। खेलते हुये उनके जो लक्षण प्रकट हुए, उनसे उनके सब नियम-बन्धन टूट गये।

२. सखियों, कलयुग में तो प्रेम की ही पताका फहरायेगी। हमारे प्रेम के पात्र स्वरूप जो स्वामी है, हमसे एक क्षण भी अलग नहीं होंगे।

३. वे हमसे अलग कैसे होगें ! हम जो कहेगें, प्रीतम ठीक वैसा ही करेंगे। हम सबकी आत्मा एक है। बस खेलते हुये हम अलग दिखाई देती है।

४. हमने परस्पर सलाह की। सभी सखियाँ समझदार हैं। फिर स्वामी ने जो-जो विशेष लीलाएँ की थीं, वैसे ही अनेकों वेश हमने भी धारण किए।

५. हममें से श्यामा ने कृष्ण का वेश धारण किया। उसको देख कर मन हर्षित होता था। फिर एक नंद जी बनी-—वह कृष्ण को लाड़ करने लगीं।

६. एक सखी पूतना बनी। पूर्ण यौवना और शृंगार से सजी हुई। लेकिन उसके स्थूल स्तन विष से भरे हुये थे; वह मन में कपट लेकर आई थी।

७. उसने कपट से कृष्ण को दूध पिलाया और मरने का नाटक किया। स्वामी के लिए वह विष अमृत बन गया। दूध के साथ वे पूतना के प्राण को भी पी गये। गोकुल में जय-जयकार हुआ।

८. सखियों ने सोच-सोच कर भयंकर दैत्यों के रूप का स्वांग किया। श्रीकृष्ण ने सब का संहार किया। अपना स्वरूप कष्ट में डालकर उन्होंने गोकुल के लोगों को सुख दिया।

९. एक सखी मानो यशोदा बन गई। कन्हैया रो-रो कर माखन माँगते है। उधर चूल्हे पर दूध उबल जाता है और माता का मन खिन्न होता है।

१०. कृष्ण ने जाते हुये उनका आँचल थाम लिया। यशोदा जी गुस्से में लाल हो जाती हैं। कृष्ण कहते हैं 'पहले माखन दे दो।' तो माता को लगता है कि बालक कृष्ण कैसा हठी हो गया है !

जोरे छेडो लीधो तत्काल, नसो चढावी निलाट ।
जसोदाजी गया उजाई, आगल दूध गयूं उभराई ।। ११

कान्हजीने रीस अति थई, पेहेलूं माखन देई न गई ।
ते तां झाली न रही रीस, घोलीना कीधां कटका बीस ।। १२

तिहां दोडीने आवी मात, देखी कान्हूडानो उतपात ।
दामणं लीधूं जशोदाए, कान्हजी पाखल पलाए ।। १३

आगल कान्हजी उजाए, जसोदाजी वासे धाए ।
माताने श्रम अति थयो, तिहां कान्हजी ऊभो थई रह्यो ।। १४

कट दामणिएं न वन्धाए, तसू चार ते ओछूं थाए ।
वली दामणूं बीजूं लिए, गांठों अनेक विधें दिए ।। १५

एम लीधां दामणां अपार, तसू घटे ते चारना चार ।
वली देखी मातानूं श्रम, कान्हे मूकया दामणां नरम ।। १६

त्यारे एक दामणें बेहू हाथ, बांधी कट ऊखल संघात ।
एवो बांध्यो दामणिएं बन्ध, जुओ कान्हजी रुए अचंभ ।। १७

त्यांहां रोतो रीकतो जाए, रह्यो व्रख ऊखल भराए ।
तिहां थी निसरवा कीधूं जोर, पड्या व्रख थयो अति सोर ।। १८

तेमां पुरुष बे प्रगट थया, अंग मोडीने ऊभा रह्या ।
कर जोडीने अस्तुत कीधी, तेणे तरत वालें सीख दीधी ।। १९

इहां आवी जसोदा उजाणी, कान्हजी भीडी रहा भुज ताणी ।
स्वांस मांहें न माए स्वांस, मुख चुमती आस ने पास ।। २०

११. यशोदा के माथे पर बल पड़ गये हैं—जब उन्होंने आँचल थाम लिया। यशोदा जी वहां गईं तो आगे दूध चूल्हे पर फैल गया था।

१२. इधर कृष्णजी को बहुत गुस्सा आया कि माँ पहले माखन क्यों नहीं दे गईं। गुस्सा संभला नहीं तो उन्होंने उस मटकी को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

१३. वहां से माता दौड़ती हुई आईं और कन्हैया की शरारत देखी। रस्सी लेकर यशोदा ने कृष्ण को बांधना चाहा। कृष्ण बाहर निकल कर भाग पड़े।

१४. आगे-आगे कृष्ण दौड़ते हैं, पीछे माँ यशोदा भाग रहीं हैं। जब माता थक गईं तो कृष्ण खड़े हो गये।

१५. कृष्ण किसी भी रस्सी के टुकड़े से बंधते नहीं हैं। हर रस्सी चार अंगुली छोटी रह जाती है। माँ ने फिर दूसरी रस्सी ली और अनेक तरह से कस कर गांठ लगाई।

१६. इस तरह अनेक रस्सियां लीं, पर हर बार वह चार अंगुली छोटी रह जाती है। फिर माता का श्रम देख कर कन्हैया ने दामन ढीला छोड़ दिया।

१७. फिर तो एक रस्सी से ही दोनों हाथ बंध गये। यशोदा ने उसी रस्सी से उन्हें ओखल के साथ बांध दिया। देखो तो, बालक कन्हैया कैसे रो रहे हैं। देख कर अचम्भा होता है।

१८. रोते-कलपते हुए वह ओखल समेत घिसटते जा रहे हैं। साथ में जुड़े दो यमलार्जुन वृक्षों के बीच में जाकर उन्होंने ओखल फँसा दी। वहां से निकलने के लिये जोर लगाया कि दोनों वृक्ष अचानक भयंकर आवाज करते हुए गिर पड़े।

१९. उनमें से दो पुरुष प्रकट हुये और अपना स्वरूप समेट कर खड़े हो गये। हाथ जोड़ कर उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की। स्वामी ने तुरंत उन्हें आशीष दिया।

२०. वहां माँ यशोदा भी दौड़ती हुई आयीं। कृष्ण को आकर दोनों भुजाओं में बांध लिया। भागने से दम फूल गया है। श्वास लिया नहीं जा रहा, पर वे कृष्ण का मुख चूमतीं जा रही हैं।

एक धरे ते गोवरधन, हरष उपजावे मन ।
इन्द्रनों कीधो मान भंग, एम रमे ते जुजवे रंग ।। २१

लेई चारे वाछरू वन, मांहों माहें गोवाला जन ।
हाथ माहें बांसली लाल, मांहें रामत करे रसाल ।। २२

आपणमां कोईक कामनी वेष, एक वेष वालोजी वसेख ।
वालो पूरे कामनीना काम, भाजे हैडा केरी हाम ।। २३

एक दाणलीला वेष नार, मही मांथे मटुकी भार ।
वालो करे तेसूं हांस, लिए माखण ढोले छास ।। २४

कहे वचन सांमा कामनी, गाल जुगते दिए भामनी ।
तेणी लिए मटुकी उजाए, वालो गोरस गोवालाने पाए ।। २५

वालो वृजमां रम्या जे जुगते, श्रमें सहू वेष लीधां ते विगतें ।
पीउड़ो तोहे न दीसे क्यांहें, कालजडूं कांपे मांहें ।। २६

राजसिएं कीधों वृह जोर, रुए पाडे बुम्ब बकोर ।
स्वांतसियों बेसुध थाए, तामसियोंने श्रांझो न जाए ।। २७

एक वेष वालें वेण वायो, साथ सहू जोवाने धायो ।
जाणे वेण वालानों थयो, सोक रुदया मांहेंथी गयो ।। २८

सहूने सरूप रुदेमां समानों, आवी श्रानन्द अंग उभराणो ।
उलस्या मलवाने श्रंग, मांहें थी प्रगट्या उछरंग ।। २९

वनीमांडी ते रामत जोर, गाए गीत करे श्रति सोर ।
त्यारे हरष वाध्यो श्रपार, श्राव्यो जुवतीनों श्राधार ।। ३०

२१. एक सखी ने इन्द्रकोप के समय जैसे कृष्ण ने गोवर्धन उठाया था, वैसे ही ही गोवर्धन उठा लिया। सब के मन में आनन्द हुआ। इसी तरह इन्द्र का मान भंग किया गया। इस प्रकार अनेक रंगों में खेल खेले जा रहे हैं।

२२. कृष्ण जैसे वन में बछड़े चराने जाते थे, वैसे ही एक सखी अन्य ग्वाल-बाल के साथ बछड़े लेकर वन में जाती है। हाथ में लाल वंशी है। वहाँ वे गोप सखाओं के साथ, आपस में रसभरी रामतें खेल रहे हैं।

२३. इनमें किसी ने सुन्दर स्त्री का वेश धारण किया। एक स्वामी के विशेष वेश में थी—उसने कामिनियों की अभिलाषा को पूर्ण और उनकी मन की चाह को तृप्त किया।

२४. एक सखी ने दान-लीला का खेल शुरू किया। सिर पर दही का मटका धरा है। स्वामी उससे हंसी करते हैं। सारा माखन खा जाते हैं और मटकी की छाछ भी गिरा देते हैं।

२५. वह सखी सामने से डांट देती है; चिढ़कर गाली भी देती है। कृष्ण उसकी मटकी भी छीन कर भाग जाते हैं और सब ग्वालों को दूध पिला देते हैं।

२६. स्वामी ने ब्रज में जिस रीति से लीलाएं की थीं, हमने भी वैसे ही रूप धारण किए। प्रिय, फिर भी दिखाई न दिए। अन्दर से कलेजा काँपता रहा।

२७. राजसी सखियों ने बहुत विरह किया। बहुत चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगीं। सात्विकी बेसुध हो गईं। तामसियों का विश्वास स्वामी पर फिर भी न टूटा। वे उनकी बाट देख रहीं थीं।

२८. अंत में, एक ने स्वामी का वेश लेकर वैसी ही वंशी बजाई। सब सखियां देखने भागीं। उन्होंने समझा स्वयं स्वामी वंशी बजा रहे हैं। उनके मन का संताप मिट गया।

२९. सबके मन में उनका रूप समाया था। मन में आनन्द हिलोरें लेने लगा। मिलन के लिए अंगों में उल्लास जागा। उनके मन में विराजे कृष्ण उनके मध्य प्रकट हो गए।

३०. फिर तो जोर से खेल शुरू हो गया। सखियाँ गीत गा-गाकर सब ओर शोर मचाने लगीं। युवतियों के प्राण-आधार प्रकट हुए तो आनन्द हिलोरें लेने लगा। अपार आनन्द बढ़ा।

दोडी वलगी वालाने वसेख, जाणे पीउजी हुता परदेश ।
सघलीना हैडा मांहें, हाम मालवानी मन माहें ।। ३१

वालेंजीऐं कीधों विचार, केम मलसे सघली नार ।
त्यारे देह धरया अनेक, सखी सखी प्रते एक ।। ३२

सखी सहूने मल्या एकांत, रम्या वनमां जुजवी भांत ।
वालें पूरण मनोरथ कीधां, अनेक विधें सुख दीधां ।। ३३

इंद्रावती ने आनंद थाए, उमंग अंग न माए ।
वली रमे नाना विध रंग, कांई वाध्यो अति उछरंग ।। ३४

प्रकरण ३३ ।। चौपाई ३८७ ।।

राग कालेरो

उछरंग अंग सुंदरी, हेत चित मन धरी ।
सुख ल्याविया वालो वली, सुख ल्याविला वालो वली ।। १

कर मांहें कर करी, सकल मली हरवरी ।
बाहें न मूके स्यामतणी, अलगी न जाए कोए टली ।। २

एक एक लिए आलिंघण, एक एक दिए चुमन ।
बांहोंडी वाली जीवन, खेवना भाजे मली ।। ३

जीवन मन विमासियूं, सखी केम भाजसे खेवना ।
आतां पूर जाणे सायरतणां, एक आव्या हली मली ।। ४

पछे एक वालो एक सुंदरी, एम रमूं रंगे रस भरी ।
लिए आलिंघण फरी फरी, दाभ्र अंगतणी गई गली ।। ५

विनोद हांस अतिघणों, वालें बधारयो सुखतणों ।
कामनी प्रते कंथ आपणों, एण सुखें दुख नाख्या दली ।। ६

अधुर अमृत पीवतां, कठण कुच खूचतां ।
स्याम संगे सुख लेवतां, ए लीला अति सबली ।। ७

३१. सभी दौड़कर स्वामी से मिलीं, मानों प्रियतम विदेश से लौटे हों। सब के मन में प्रेम का ज्वार बढ़ा। मिलन का उत्सुक मन आकुल हुआ।

३२. स्वामी ने विचारा किया कि सबके साथ एक साथ मिलन कैसे हो। उन्होंने सबके लिए अलग-अलग रूप धारण किए।

३३. पुनः सबसे एकान्त में मिले। वन में अनेक तरह से रमण करके स्वामी ने सबके मनोरथ पूर्ण किए। अनेक प्रकार से उन्हें सुख प्रदान किए।

३४. इन्द्रावती आनन्दित हैं। मन में उमंग समाती नहीं। फिर अनेक तरह के खेल खेले। बहुत आनन्द बढ़ा। बड़ा आनन्द आया।

प्रकरण—३४

१. सखियों के मन में उमग है, हृदय में स्नेह है। स्वामी ने फिर एक बार सुख प्रदान किया।

२. हाथ में हाथ दे कर, सब उतावली हो कर श्यामा जी से मिलीं। वे कृष्ण की बाँहें छोड़ती नहीं हैं। कोई उनसे अलग नहीं हो रहीं हैं।

३. एक सखी आलिंगन करती है, दूसरी चुम्बन देती हैं। अपने प्राणों के प्रीतम के गले में बाँहें डाले खड़ी है। मिलने से भी सतृष्ण मन शांत नहीं हो रहा।

४. स्वामी भी सोच में पड़ गये कि इतनी सखियों की अभिलाषा मैं एक साथ कैसे पूर्ण करूं ! यह तो भरपूर समुद्र की तरह बढ़ी चली आ रहीं है।

५. फिर वे 'एक स्वामी एक सखी' ऐसे आनन्द में खेले। वे फिर-फिर कर गले मिलते हैं। तब सबके मन की विरह-दाह मिट गई।

६. बहुत आनन्द-विनोद से स्वामी ने आनन्द बढ़ा लिया। स्वामी ने कामिनियों के मन से इस प्रकार सुख दे कर दुख का निरसन किया।

७. अधरों से अमृत-रस पान करते हैं, उनके कठिन और पीन स्तन मसल देते हैं। कामिनियाँ श्याम के संग सुख लेती हैं। उनकी यह लीला बड़ी प्रबल है।

साथ मांहें इंद्रावती, वालातणे मन भावती ।
रस रंगे उपजावती, कांई उपनी छे अति रली ।। ८

प्रकरण ३४ ।। चौपाई ।। ६६५ ।।

राग मलार

आपण रंग भर रमिऐ रास, वालोजी वली आविया ।
कांई उपनूं अंग उलास, सुंदर सुख ल्याविया ।। १

सखी दियो रे मांहों मांहें हाथ, वचे जोड लीजिए ।
स्याम स्यामाजी पाखल वाड, सखियो तणी कीजिए ।। २

हवे रामत रमिऐं एम, खरो ग्रहीजिए ।
आपण एणी पेरे बंधेज, सहू रहीजिए ।। ३

एनूं रुदे अति कठोर, ए थकी विहीजिए ।
हवे ए अलगो एक पल, आपण न पतीजिए ।। ४

फरतां रमतां रास, चुमन मुख दीजिए ।
लीजिए रस अधुर, अंमृत पीजिए ।। ५

एणे भीडिए अंगों अंग, कुचों वचे आणिए ।
एना विलास अनेक भांत, मोहन वेल माणिए ।। ६

मुख मांहें देई अधुर, जीवन सुख जाणिए ।
अद्‌भुत एहेना सनेह, ते केम वखाणिए ।। ७

वाले सांभलया रे वचन, भरी अंक लीधियों ।
वालें चितडू देईने चित, सरीखी कीधियों ।। ८

एना मनोरथ अनेक पेर, उपाया अमने घणां ।
सनेह उपाईने आण्या, सागर सुख तणां ।। ९

८. सखियों में इन्द्रावती अपने स्वामी के मन को भाती है। वह खेल में रस पूर्ण रंग पैदा करती हैं, जिससे इनमें बहुत आनन्द उत्पन्न होता है।

प्रकरण—३५

१. हम सखियां अब पुनः रंग में भर कर रास खेलें, क्योंकि स्वामी फिर आ गये हैं। अंगों में पुनः उमंग भर आई है, प्रिय लालित्य और अनुराग पूर्ण सुख लाये हैं।

२. अरी सखी, आपस में हाथ मिला कर बीच में जोड़ लो। जिस तरह श्याम और श्यामा के आस पास घेरा बन जाये।

३. अब इस प्रकार रामत करें। अपने हाथ अच्छी प्रकार पकड़े रहना। हम लोग सब बन्धन बनाये रखें।

४. प्रियतम का हृदय बड़ा ही कठोर है, भूलना नहीं—हमें इनसे डरते रहना चाहिए। ताकि अब यह हमसे एक पल भी अलग न हों। क्योंकि इनका विश्वास न कीजिये (कहीं फिर हमें छोड़कर चल न दें)।

५. इनके साथ चलते हुये, रास खेलते हुये, इन्हें अपने अधरों का चुम्बन देकर इनके अधरों का रस पान भी करो।

६. इनको अंगों से अपने अंग लगा कर अपने पीन स्तनों के बीच रख लो। तब मोहिनी बेल जैसा इसका आनन्द प्रतीत होगा।

७. अधरों में अधर दे कर, जीवन का सुख मानो। उनका स्नेह अद्‌भुत है। उसका वर्णन भला कैसे हो।

८. स्वामी ने भी जब यह वचन सुना तो आकर गले से लिपट गये। उन्होंने अपना हृदय देकर उनको सहारा दिया। उनके हृदय को अपना आस्पद (अवलंब) प्रदान किया।

९. क्योंकि इनको पाने का हमने अनेक बार संकल्प किया था। अतः स्वामी ने ही स्नेह पूर्वक हमारे मन में सुख सागर स्वरूप (स्वामी को) पाने का यह मनोरथ पैदा किया था।

सखी सागरनी सी वात, सुणो सुख स्यामनी ।
मारी जिभ्या आंणे अंग, न केहेवाए भामनी ।। १०

वाले चितडू देईने चित, ताणी लीधां आपणां ।
पछे वनमां कीधां विलास, न रही केहेना मणां ।। ११

कहे इंद्रावती आनंद, वालो रंगे गाए छे ।
हजी रामतडी वृध, वसेके थाए छे ।। १२

प्रकरण ३५ ।। चौपाई ।। ७०७ ।।

राग वेराडी चरचरी

रमत रास करत हांस, कान्ह मोहन वेल ।
कान्ह मोहन वेल, सखीरी कान्ह मोहन वेल ।। १

रासमां विनोद हांस, हांसमां करूं विलास ।
पूरतो अमारी आस, करे रंग रेल ।। २

वालैयो वन विलासी, गयो तो अमथी नासी ।
कठण करीने हांसी, दीधां दुख दोहेल ।। ३

सखियो करती मान, तेणें वृहना कीधां पान ।
विसरी सरीर सान, एवो कीधो खेल ।। ४

मन तामसियो हरती, मान माननियो करती ।
अंगे न व्रह धरती, तो अमपर थई हेल ।। ५

आतुर करी सरवे जन, मीठडा बोले वचन ।
हेतसूं हरतो मन, एवो अलबेल ।। ६

हवे न मूकूं अधख्यण, धुतारो छे अतिघण ।
पल ना वालूं पापण, भूलियो पेहेल ।। ७

इंद्रावती कहे साथ, हवे न कीजे विस्वास ।
ख्यण न मूकिए पास, एवो बांधो वेल ।। ८

प्रकरण ३६ ।। चौपाई ।। ७१५ ।।

१०. हे सखी, उद्दाम सागर की तरह उमड़ते हुये श्यामाजी के सुखों का वर्णन मेरे इस अंग और जिह्वा से नहीं हो सकता ।

११. स्वामी ने चित्त को चित्त में मिला कर अपनी ओर खींच लिया । पुनः कुंज वन में विलास-विहार किया । किसी सखी का मनोरथ बाकी न रहा । सबकी इच्छाएँ पूरी कीं ।

१२. सखी इन्द्रावती कहती हैं कि स्वामी रंग तरंग में आ कर गाते हैं तो आनन्द आ जाता है । और फिर भी खेल में भी आनंद वृद्धि होती हैं, खेल विशेष हो जाता है ।

प्रकरण—३६

१. वे रास की रामत में हंसी करते है । सखी, कन्हैया मोहनी की बेल हैं ।

२. रास में हँसी-विनोद, हँसी में रमण और रंगरेलियाँ मनाते हुए वे समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं ।

३. स्वामी वन में विलास करते हुए हमसे दूर भाग गये थे । उन्होंने कठोर हंसी हंस करके असह्य दुख दिया ।

४. सखियां जब मान में आ गई । तब उनको विरह का अनुभव कराया गया । तब वे अपने शरीर की सुधि तक भूल गईं ।

५. तामसियों का मन वश में किया, तो मान करने वालियों का गर्व चूर किया । जो अंग में विरह न लेतीं तो वही हम पर भारी पड़ गया (हमें संकट में डाल दिया) ।

६. इस तरह सब को आतुर बनाया, फिर उन्हे मीठे शब्द कहे । वे युक्ति से मन को मोह लेते हैं । ऐसे अलबेले हैं ।

७. अब एक क्षण भी नहीं छोडूंगी । वह बहुत छलिया हैं । आँखों की पलक भी अब नहीं मूंदूंगी । पहले ही हमसे भूलें हो चुकी है ।

८. इन्द्रावती कहती हैं, 'हे सखियो ! अब विश्वास न करना । एक क्षण भी उनके पास से न हटना, अपनी अंग-वल्लरी से उन्हें मुक्त न करो ।

राग धोलनी चाल

जुओ रे सखियो तमे वाणी वालातणी, बोले ते बोल सुहांमणां रे ।
मीठी मधुरी वात करे, हूं तो लेऊं ते मुखना भामणां रे ।। १

हावसुंभाव करे वालो हेते, गुणने घणां वालातणां रे ।
रामत करतां रंग रेल करे, झकझोल मांहे नहीं मणां रे ।। २

जुओ रे सखियो मारा जीवनी वातडी, मारा मनमां एमज थाए ।
नयणां ऊपर नेह धरी, हूं तो धरूं वालाजीने पाए ।। ३

सुण सुंदरी एक वात कहूं खरी, ए ते एम केम थाए ।
नयणां ऊपर केम करीस, ए तो नहीं धरवा दिए पाए ।। ४

जो हूँ एम करूं बेहेनी, मारा जीवनी दाझ तो जाए ।
कोए विध करी छेतरूं वालो, तो मूने केहेजो वाए वाएं ।। ५

सुणो रे वालैया वात कहूँ, तमारा भूषण बाजे भली भांत ।
लई चरणने निरखूं नेत्रे, मूने लागी रही छे खांत ।। ६

जुओ रे सखियो मारा भूषण बाजतां, झांझरिया ते बोले रसाल ।
लेनी पग धरूं तुझ आगल, बीजी म करजे आल ।। ७

लेई चरणने भेला नयणां, वालें जोयूं विचारी चित ।
वटकी चरणने लीधा वेगला, जाणी इंद्रावती रामत ।। ८

वालें वेगें लीधी कंठ बांहोडी, बेठा अंग भीडीने हेतमां ।
नेह थयो घणों नयणांसुं, दिए नेत्रने चुमन खांतमां ।। ९

प्रकरण—३७

१. देखो री सखियों, अब स्वामी के वचनों को सुनो । वे कैसे सुहाने बोल बोलते हैं । मीठी और मधुर बात करते हैं । उनकी इस मुख-माधुरी पर मैं उनकी बलिहारी जाऊं ।

२. हाव-भाव दिखाकर स्वामी परम स्नेह से बातें करते हैं । स्वामी के गुण अपार हैं । वे खेलते हुए बहुत आनन्द करते हैं और उल्लास में कभी कमी नहीं आने देते ।

३. देखो मेरे मन में क्या बातें आती हैं कि अपने नयनों के ऊपर स्नेह पूर्वक स्वामी के चरण रखूं ।

४. सुनो ब्रज-सुन्दरी ! मैं, एक सच्ची बात कहूं । यह कभी सम्भव नहीं होगा । तुम अपने नयनों के ऊपर चरण को कैसे धरोगी ? वह तो अपने पांव पकड़ने ही नहीं देते ।

५. बहनों, मैं अगर ऐसे कर लूं तो ही मेरे मन की चाह (दाह) मिट सकती है । किसी भी तरह स्वामी को ठग कर बहला लूं तो मेरी चातुरी के लिए मेरी सराहना करना ।

६. सुनो, एक बात कहूं । स्वामी, आप के चरणों के आभूषण बड़ी अच्छी तरह से बजते हैं । चरण पकड़ कर उन्हें जरा देख लूं ? मेरे मन में उन्हें देख लेने की चाह है ।

७. 'देखो सखियों, मेरे आभूषण बजते हैं—यह तो उनमें पड़ी झांझर से बड़ी मधुर आवाज़ निकलती है । मैं तुम्हारे सामने पांव रख तो देता हूं परन्तु तुम कोई चालाकी न करना ।'

८. इन्द्रावती ने चरणों को लेकर आंखों के अति निकट कर लिया । इधर स्वामी मन में विचार करते हुए देख रहे हैं । फिर उन्होंने झटक कर पांव खींच लिया । वे इन्द्रावती का खेल समझ गये—

९. और स्वामी ने तत्काल उन्हें कंठ से लगा लिया । अंग जोड़ कर स्नेह से बैठ गये । आंखों में प्यार भर लाये और प्रसन्न होकर इन्द्रावती की आंखों को चूम लिया ।

रंग रेल करी रस बस थया, सखी स्याम घणां अमृतमां ।
लथबथ थई कलोल थया, ए तो कूपी रह्या बेहू चितमां ॥ १०

कहे इंद्रावती सुणो रे साथजी, वाले सुख दीधां घणां घणां ।
नवलो नेह वधारयो रमतां, गुण किहा कहूँ वाला तणां ॥ ११

प्रकरण ३७ ॥ चोपाई ७२६ ॥

राग कदारो

बलियामां दीसे बल, अंग आछो निरमल ।
नयणां कटाख्ये बल, पापण चलवे पल, अजब अख्यात ॥ १

जनम संघाती जाण्यो, मन तो ऊपर माण्यो ।
सुंदरी चितसुं आण्यो, विविध पेरे वखाण्यो, वालानी विख्यात ॥ २

वालोजी वसके हित, चालतो ऊपर चित ।
इछा मन जे इछत, खरी साथनी पूरे खांत, भलो भली भांत ॥ ३

इंद्रावती कहे खरूं, मूलनो संघाती वरूं ।
ए धन रूदयामां धरूं, अंगथी अलगो न करूं, खरी मने खांत ॥ ४

वरजी ने देऊं वीड, भीडतां न करूं जीड ।
अंग मांहें हुती पीड, काम केरी भाजूं भीड, जो जो मारी वात ॥ ५

बांहोंडी कंठमां घाली, एकी गमां लीधों टाली ।
लेई चाली अणियाली, सखी मुख हाथ ताली, जोई रह्यो साथ ॥ ६

रामत करती रंगे, चुमन देवंती वंगे ।
उमंग आवयो संगे, मेली मुख भीडें अंगे, मूके नहीं बाथ ॥ ७

रंगना करती रोल, झीलती मांहें झकोल ।
करी मुख चकचोल, जोरावर झलावोल, लेवा न दे स्वांस ॥ ८

१०. सखी और श्याम अमृत में सराबोर हो गये। बलपूर्वक भिड़कर वे किल्लोल करने लगे। दोनों के मन आनन्द में विभोर हो गए।

११. इन्द्रावती कहती हैं। सुनो सखियो, स्वामी ने अत्याधिक सुख दिया। खेल-खेल में ही नया प्रेम बढ़ा दिया। स्वामी के गुण कहाँ तक कहूँ !

प्रकरण—३८

१. स्वामी में बड़ा उत्साह दिखाई देता है। उनके सर्वांग दिव्य और निर्मल हैं। नयनों में कटाक्ष है। जब पलकों को झपकाते हैं तो वे अपूर्व शोभा दिखाते हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

२. जन्म-जन्म का सम्बन्धी जानकर हमारा मन उनमें रम गया है। सुन्दरी ने मनोयोग से उनकी विशेषताओं का बखान किया।

३. करुणामय स्वामी का स्नेह विशेष है। वे सदैव मन के अनुकूल चलते हैं। 'सुन्दर सखियों' के मन में जो-जो इच्छाएं जगती हैं—स्वामी उन इच्छाओं को भली-भांति पूर्ण करते हैं।

४. इन्द्रावती सत्य कहती हैं कि हमें मूल (पूर्व) के सम्बन्धी का वरण करना है। यह सम्पत्ति मैं हृदय के भीतर छिपा रखूंगी। अंग से अलग न करूंगी। मुझे इसमें सच्ची प्रसन्नता होती है।

५. स्वामी को मैं बार-बार चुम्बन दूंगी और उनके जोर से भींच लेने पर भी हलचल न करूंगी। इस प्रकार मैं अपने अंग में मिलन की तड़प शांत करूंगी। हमारी बात ठीक होगी—देख लेना।

६. स्वामी गले में बाँहें डाल कर एक ओर खींचकर ले चले। उनकी इस अनोखी क्रीड़ा से चल देने पर कुछ सखियां मुख में उंगली डाले साश्चर्य देखती रह गईं।

७. वे आनन्द से खेलते हैं। उन्हें तिरछी होकर मैं चुम्बन देती हूँ। उमंग में भर कर अधर और अंग से अंग मिलाते हैं। उनसे अलग होने की इच्छा नहीं होती।

८. सखियां मस्ती में झूमती हुई आनन्द-सागर में गोता लगाती हैं। मुख मिला कर चक्कर देती हैं और श्रीकृष्ण भी जोर से झकझोरते हुए उन्हें भींचते हैं। श्वास ही नहीं लेने देते।

पीउना अधुर पिए, अमृत घूंटडे लिए ।
सामा वली पोते दिए, देवंतां मुख नव दिहे, अंग प्रेम वास ।। ९

वली इछा जुई धरे, फूवडी फेरसूं फरे ।
जोर अति घणों करे, इंद्रावती काम सरे, रमे पीउ रास ।। १०

फूबडी मेलीने हाथ, चटकासूं घाली बाथ ।
रामत करे निघात, कंठ बाहोंडी फरे साथ, रंगे प्राणनाथ ।। ११

वली लिए हाथ ताली, फरती देवंती बाली ।
बेठंती उठंती बाली, रामत बचे रसाली, विविध विलास ।। १२

छटके रामत मेली, वालाजी संघाते गेहेली ।
आलिंगण लिए ठेली, चुमन दिए पीउ पेहेली, मुख आस पास ।। १३

सरवे जोवंता सुंदरी, रामत तो घणी करी ।
पीउ कंठ बाहों धरी, इंद्रावती वालें वरी, कोंण मुकावे हाथ ।। १४

प्रकरण ३८ ।। चौपाई ७४० ।।

केसरबाईनो झगडो

आवी केसरबाई केहे रे बेहेनी, सुणो वात करूं तमसूं ।
भली रामत वालासूं रंगे करी, हवे मूको रमे अमसूं ।। १

हूं तो नहीं रे मूकूं मारो नाहोजी, तमे जोर करो जथा वाक्य ।
आवी वलगो वालाजीने हाथ, आतां देखे छै सैयर साथ ।। २

इंद्रावती कहे अमसूं रमतां, केसरबाई करो एम कांए ।
तमे हाथ आवी वालाजीने वलगो, पण हूं नव मूकूं बांहें ।। ३

९. प्रिय ने प्रिया के अधरों के रस के घूंट पिये, फिर उनको भी छक कर पिलाया। चुम्बन देते हुए भी मुख बन्द नहीं किया। अंग-अंग में प्रेम की सुवास है (इसलिए कि उनका नवीन रूप-स्वरूप उद्घाटित होता रहता है)।

१०. फिर इच्छा के वश वहीं क्रीड़ाएं करती हैं, और फुदड़ी—चक्करी—कीकली का खेल खेलते हैं। प्रिय उनमें बहुत रुचि दिखाते हैं। इन्द्रावती का काम बन गया। पिया रास-रमण करा रहे हैं।

११. चक्करी में हाथ डालकर मिले। उन्हें छुड़ा कर फिर गले मिलते हुए वे जोरदार खेल खेलते हैं। गले में बांहें डाले घूमते ही जाते हैं। प्राणनाथ रंग में रंगे हैं।

१२. फिरते-फिरते ताली देते हैं। कभी बैठते हैं तो कभी उठकर ताली बजा देते हैं और घूमते हैं। फिर अनेक प्रकार से आनन्द-विलास कर रहे हैं।

१३. थलवेली इंद्रावती ने जल्दी से रामत करते हुए बीच में छोड़—स्वामी को आवेश में भर कर आलिंगन बद्ध कर लिया और उनका मुख चूम लिया।

१४. सब सखियाँ देख रही हैं कि बहुत प्रकार से खेल खेल लिया। पिया के गले में बांहें डाल इन्द्रावती ने उनका वरण कर लिया। अब उनका हाथ कौन छुड़ा सकता है भला !

प्रकरण—३९

केशरबाई का झगड़ा

१. केशरबाई ने आकर कहा 'सुनो बहन, मैं तुमसे एक बात करती हूँ। तुमने स्वामी से बड़ी देर तक अच्छी रामत की। अब उन्हें छोड़ दो, मैं खेलूंगी।'

—२. इन्द्रावती कहती हैं 'मैं तो अपने स्वामी को नहीं छोड़ूंगी' तुम चाहे कितना ही जोर लगा लो'। तब केशरबाई स्वामी से आकर लिपट गई। सब सखियां देख रही हैं।

३. इन्द्रावती कहती हैं, 'वे तो हमसे खेल रहे हैं तो तुम हठात् ऐसा क्यों करती हो ? तुमने आकर स्वामी का हाथ तो पकड़ लिया, परन्तु मैं उनकी बांहें नहीं छोड़ूंगी।'

हूं कंठ बांहोंडी वालीने ऊभो, मारो प्राणतणो ए नाथ ।
नेहेचु सखी हूं नहीं रे मूकूं, तमे कां करो वलगती वात ॥ ४

अनेक प्रकार करो रे बेहेनी, हूं नहीं मूकूं प्राणनो नाथ ।
बीजी रामत जई करो रे बेहेनी, आतां ऊभो छे एवडो साथ ॥ ५

केम रे मूकूं कहे केसरबाई, तमने रमतां थई घणी वार ।
हवे तमे केम नहीं मूको, मारा प्राणतणों आधार ॥ ६

सुणो केसरबाई वात अमारी, इंद्रावती कहे आ वार ।
लाख वातों जो करो रे बेहेनी, पण हूं नहीं मूकूं निरधार ॥ ७

कहे केसरबाई अमसूं इन्द्रावती, कां करो एवडूं बल ।
एटला लगे तमे रामत कीधी, हवे नहीं मूकूं पाणीवल ॥ ८

बीजी सखी इहां नहीं रे बापडी, आंहीं तो इंद्रावती नार ।
जोर करो जोईए केटलूं केसरबाई, केमने मुकावो आधार ॥ ९

एटला दिवस थया अमने रमतां, पण कोंणे न कीधूं एम ।
भोला ढालनी वात जुई छे, जोईए जोर करी जीतो केम ॥ १०

वेढ देखीने वालोजी हंसियां, वलगे मांहों मांहें नार ।
कोई केने नमी न दिए, आतां बंने जाणे झुंझार ॥ ११

सिखामण दिए रे वालोजी, कोई न नमे रे लगार ।
त्यारे रूप कीधां रंगे रमवा, सन्तोषी सरवे नार ॥ १२

केसरबाई जाणे अमकणे आव्या, इंद्रावती जाणे अम पास ।
सघली सूं सनेह करी, वन मांहें कीधां विलास ॥ १३

इन्द्रावती केसरबाई मलियो, बंने कहे एम ।
ओसियाली थयो मन मांहें, जुओ आपण कीधूं छे केम ॥ १४

४. मैंने स्वामी के गले में बांहें डाल रखी हैं । वे मेरे प्राण के नाथ हैं । निश्चित जानो, मैं उन्हें कभी नहीं छोड़ूंगी । तुम व्यर्थ झगड़े की बात को क्यों तूल देती हो !

५. चाहे अनेक प्रकार से यत्न करो बहन, मैं तो प्राणनाथ को नहीं छोड़ूंगी । तुम जाकर कोई दूसरा खेल खेलो । इतनी सारी सखियां तो खड़ी हैं ।

६. केशर बाई कहती हैं—'मैं भी कैसे छोड़ दूं । तुम्हें खेलते हुए बहुत देर हो गई है । तुम भला मेरे प्राण के नाथ को कैसे नहीं छोड़ोगी !' (इस पर तुम्हारा कोई अकेला अधिकार नहीं) ।

७. 'केशरबाई, मेरी बात ध्यान देकर सुनो', इन्द्रावती कहती हैं—'लाख बातें बनाओ बहन, मैं तो स्वामी को हरगिज़ नहीं छोड़ूंगी ।'

८. केशरबाई कहती हैं—'इन्द्रावती तुम मुझपर इतना रोब क्यों गांठती हो । इतने समय तक प्रियतम से तुम खेलती रही । अब मैं स्वामी को नहीं छोड़नेवाली ।

९. यहां कोई दूसरी अबला सखी नहीं है केशरबाई ? यहां तो जोरावर इन्द्रावती है और चाहो तो खुद जोर आजमाकर देख लो ! देखूं, तुम मुझे स्वामी से कैसे छुड़वाती हो ।

१०. हमें खेलते इतने दिन हो गए, परन्तु अब तक किसी ने ऐसा नहीं किया । सीधी तरह बात की होती तो और बात थी । देखूं भला, तुम जोर लगा करके भी कैसे जीतती हो ।'

११. इनकी ज़िद देख कर स्वामी हंसने लगे । दोनों स्त्रियां आपस में उलझ रही हैं । कोई किसी के सामने झुकना नहीं चाहती । यहां तो दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ गई हैं ।

१२. स्वामी ने दोनों को समझाया । परन्तु कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं हुई । तब श्रीकृष्ण ने आनन्द में रमण करने के लिए पुनः अनेक रूप धारण किये । तब सब सखियों को संतोष हुआ ।

१३. केशरबाई ने समझा स्वामी मेरे पास आ गये । इन्द्रावती ने भी जाना कि वे मेरे पास हैं । सब ने स्नेह पूर्वक उनसे विलास किया ।

१४. इन्द्रावती और केशरबाई जब मिलीं तो दोनों ऐसे कहने लगीं—हम वस्तुतः बहुत शर्मिन्दा हैं । हमने अन्यथा ही विवाद खड़ा किया ?

भीडोने मलियो बंने उछरंगे, भाजी हैडानी हाम ।
इन्द्रावती कहें केसरबाई, वालें पूरण कीधां मन काम ।। १५

प्रकरण ३९ ।। चोपाई ।। ७५५ ।।

राग केदारो

छेडो न छटके, अंग न अटके, भरे पांउं घटके मानवंती मटके ।। १

लिए रंग लटके, घुटावे अधुर घटके, वली वली सटके ।।
खांत घणी खटके, रमवा रंगे रास री ।। २

रमती रास कामनी, जामती चंद्र जामनी ।
मली वल्लभे माननी, भलंती रंगे भामनी ।। ३

स्यामाजी संगे स्यामनी, बांहोंडी कंठे कामनी ।
ताणती अंगें आमनी, मुख बीडी सोहे पाननी ।।
एम रमत सकल साथ री ।। ४

मारो साथ रमे रे सुहामणो, कांई रामत रमे रंग ।
बालाजीसूं वातों, करे अख्यातो, उलट भीडे अंग ।। ५

बांहोंडी वाले भूषण संभाले, रखे खूंचे कोई मंग ।
लिए बाथों वालाजी संघातो, उनमद बल अनंग ।। ६

छटके रमे पाखल भमे, रामत न करे भंग ।
खेलाईएं छेके अंग वसेके, सखी सरवे सुचंग ।। ७

केटलीक सुन्दरी उलट भरी, आवी बालाजीने पास ।
उमंग आंणे आप वखाने, अह विनता गयो नास ।। ८

गीत गाए रंग थाए, विविध पेरे विलास ।
जुजवी जोडे एकठी दोडे, मारा वालाजीसूं करवा हांस ।। ९

१५. दोनों उमंग से गले मिलीं, मन की दाह और चाह मिटी। इन्द्रावती कहती हैं—केशरबाई, स्वामी ने एक साथ पुनः हमारी मनोकामना पूर्ण की।

प्रकरण—४०

१. 'देखना पल्ला छूटे नहीं, अंग टकराये नहीं। वे पांव चटकाती हैं। मानवती सखियाँ क्रीड़ा के आनन्द में मटक कर चली जा रही हैं।

२. आनंद में भरकर लटका लेती हैं। उनके अधर भिचे हुए हैं। बार-बार सट जाती हैं। मन में रास खेलने की चाह मचल रही है।

३. कामनियां—रास खेल रही हैं। चांदनी रात जैसे वहीं थम गई है। वल्लभ को कामिनियां मिल गई हैं—जो रास के उल्लासपूर्ण रंगों में रंग गई हैं।

४. श्यामा और श्याम परस्पर गले में बांहें डाले हुए हैं। अंगों को अपने तल्प में भींच लिया है। उनके मुख में पान का बीड़ा शोभा पा रहा है। इसी प्रकार सभी सखियाँ खेल रही हैं।

५. सारी सुन्दर सखियाँ, सुन्दर खेल खेल रही हैं। आनन्द में उमंग कर कई प्रकार के खेल खेलती हैं। बीच-बीच में स्वामी से बात करती हैं। फिर उलटकर आलिंगन प्रदान करती हैं।

६. गले में बाँहें डालते हुए अपने आभूषभों को सम्भाल लेती हैं। कहीं कोई नग चुभ न जाये। स्वामी के आलिंगन में ही वे नाचती-घूमती हैं। काम के वश में उन्मादिनी हो गई हैं।

७. फिर दूर छिटक कर खेलती हैं। पीछे घूम जाती हैं। खेल को भंग नहीं होने देतीं। अनोखे बांकपन से अंगों को मोड़तीं हैं। सब सखियां चतुर हैं।

८. कुछ एक सखियाँ उन्माद में भर स्वामी के पास आती हैं। उमंग भरी बातें करती हैं, इस प्रकार गोप-वनिताओं का विरह नष्ट हो गया है।

९. वे गीत गाती हुई आनन्द पाती हैं। अनेक तरह के विहार करती हैं। कहीं कहीं अलग जोड़े बना कर और यूथों में सम्मिलित हो कर स्वामी के पास हास-परिहास करने के लिये भागी जा रही हैं।

वालैए विमासी अंग उलासो, देह धरयां अनेक ।
सखियो सघली जुजवी भली, मारा वालाजीसूं रमे विसेक ।। १०

अंगडा वालें नयणां चाले, उपजावे रंग रेल ।
बोले बंगे आवे रंगे, जाणे पेहेलें भणियो पेस ।। ११

अति उछरंगे वाध्यो संगे, उमंग अंग न माए ।
वालाजीनी बांहें कंठ वलाए, रमतां ताणी जाए ।। १२

बांहोंडी झाली वनमां घाली, रामत रमे अति दाए ।
वनमां विगते जुजवी जुगते, रंग मन इछा थाए ।। १३

एक निरत करे फेरी फरे, छेकवाले तेणे ताए ।
एक बिए ठेक वली विसेक, रेत उडाडे पाए ।। १४

एक घूमे घूमरडे कोईक दोडे, वचन गाए रसाल ।
एक लिए ताली दिए वाली, साम सामी पडताल ।। १५

एक चढे बने इछागमे, हींचे हिचोले डाल ।
एक कोणियां रमे गाए गमे, प्रेमतणी दिए गाल ।। १६

एक फरे फेरी कर धरी, बांहोंडी कंठ आधार ।
एक फूदडी फरे रामत करे, रंग थाए रसाल ।। १७

मोरलिया नाचे रंगे राचे, सबद करे टहुंकार ।
बांदरडा पाए ऊभा थाए, लिए गुलांटो सार ।। १८

पसूपंखी वासे मन उलासे, आनंदियों अपार ।
वन कुलांमे वेलो आवे, फूलडा करे बेहेकार ।। १९

चांदलियों तेजें जुए हेजें, नीचों आवी निरधार ।
जल जमुनाना वाध्या घणां, आघा न वहे लगार ।। २०

पडछंदा वाजे भोम विराजे, पडताले धमकार ।
सघली संगे उमंग अंगे, अजब रमे आधार ।। २१

१०. स्वामी ने विचार किया। अंग में उमंग भर कर अनेक देह धारण किया। सब सखियां उनसे अलग-अलग मिलीं और विभिन्न तरह के विशेष खेल खेले।

११. सखियां अंगों को मोड़तीं हैं। आंखें मटकाती हैं। खूब आनन्द उपजाती हैं। बाँकपन से डोलती हुई आनन्द में आती जाती हैं। मानो खेल के सारे दांव-पेंच पहले से ही जानतीं हों।

१२. उनके संग आनन्द बढ़ गया है। अंग में उमंग समाता नहीं है। स्वामी के गले में बाँहें डाले खींच के लिये जाती हैं।

१३. बाँहें पकड़े वन में ले जाती हैं। बड़े दांव-पेंच से खेलती हैं। वन में अलग-अलग युक्तियों से अपने मनोनुकूल आनन्द पाती हैं।

१४. एक नृत्य करती है। दूसरी गोल घूमती हुई स्वामी से अलग हो जाती है। तीसरी विशेष कौशल से ताल देती हैं कि रेत उड़ने लगती है।

१५. कोई घूमती दौड़ती आती है। मीठे स्वर में गाती है। एक हाथों को दूसरे से मिला कर आमने-सामने ताली देती है।

१६. एक की जहां इच्छा होती है, वन में चली जाती हैं और फिर झूला झूलती है। कोई कोहबी मिला कर नाचती है। गीत गाती है। प्रेम भरी गाली भी देती है।

१७. कोई स्वामी के गले और कंधे पर हाथ धरे घूमती है। कोई चक्करी का खेल खेलती है। बड़ा रस मय आनन्द आ रहा है।

१८. मोर नाचते हैं। वे आनन्द में भरे हुये टहुक रहे हैं। बंदर एक पांव पर खड़े हो कर गुलाटियां खा रहे हैं।

१९. पशु-पक्षिगण तरह-तरह उल्लास और आनन्द में भर कर वन की बेलों पर छलांगें लगा रहे हैं। फूल अपनी महक बिखेर रहे हैं।

२०. चांद की चंद्रिमा भी इस लीला को देखने नीचे झुक आयी है। यमुना का का पानी बहना भूल कर सुस्थिर हो गया है। जरा भी आगे नहीं बहता।

२१. ताल देने से धरती पर गंभीर घोष होता है। तालपूर्ण कदम ठोंकने से धमकार होती है। सबके साथ अंग-अंग में उमंग लेकर अद्भुत रीति और गति से स्वामी उनमें रमे हुए हैं।

भूषण बाजे धरणी गाजे, ब्रंदावन हो हो कार ।
अंमृत वा वाए लेहेरों लिए वनराए, अंग उपजावे करार ।। २२

एम केटलीक भांतें रमया खांते, रामत रंग अपार ।
कहे इंद्रावती एणी पेरे लीजे, वालो सुख तणो सिरदार ।। २३

प्रकरण ४० ।। चौपाई ७७८ ।।

राग मारू

ऊभाने रहो रे वाला ऊभाने रहों, हजी आयत छे अति घणी ।
रामत रमाडो अमने, उलट जे अमतणी ।। १

अनेक रंगे रमाडिया, केटला लेऊं तेना नाम ।
सखी सखी प्रते जुजवा, सहूमा पूरण कीधां मन काम ।। २

आ भोमनो रंग उजलो, कांई तेज तणों अंबार ।
वस्तर भूषण आपना, सूं कहूं सरूप सिणगार ।। ३

नेहेकलंक दीसे चांदलो, नहीं कलातणो कोई पार ।
उठे अलेखे किरणे, सहू झलकारों झलकार ।। ४

वन वेलडियों छाईयों, रलियामणां फूल कै रंग ।
वाए सीतल रंग प्रेमल, कांई अंगडे वाध्यो उमंग ।। ५

वली रस वनमां छे घणां, मीठी पंखीडानी वाण ।
ए वन मुकाए नहीं, रूडो अवसर ए प्रमाण ।। ६

अनेक विलास कीधां वनमा, मली सहुए एकांत ।
ए सुखनी वातों सी कहूँ, कांई रमियां अनेक भांत ।। ७

हवे एक मनोरथ एह छे, आपण रमिऐं एणी रीते ।
बाथ लीजे वंने बल करी, जोईए कोंण हारे कोंण जीते ।। ८

झलके झीणी रेतडी, नहीं कांकरडी लगार ।
थाए रूडी इहां रामत, आपण रमिए आधार ।। ९

२२. आभूषणों के बजने से धरती गुंजान हो उठी है। वृन्दावन में चतुर्दिक स्वर निनादित हो गया है। अमृत से पूर्ण मलयानिल समस्त वनराजि में लहराता है तो मन को चैन मिलता है।

२३. ऐसे कई तरह से आनन्द में भर कर हम खेले। इन्द्रावती कहती हैं—'हे सखियो, रास-सुख के उद्गाता और प्रदाता स्वामी से इसी तरह सुख लीजिये।'

प्रकरण—४१

१. 'अभी तनिक ठहरिये स्वामी, अभी हमारे मन में बहुत-सी चाह बची है। हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिये और भी खेल खिलाइये।

२. अनेक तरह के खेल बचे हैं, उनके कितने नाम गिनाऊं। आपने सब सखियों की अलग-अलग मनोकामनाओं को पूर्ण किया।

३. इस भूमि का रंग अत्यन्त उज्ज्वल है, जो तेज की सौंदर्य-राशि प्रतीत होती है। आपके वस्त्राभूषणों और शृंगार का क्या वर्णन करूं!

४. शरद् पूर्णो का चन्द्रमा निष्कलक दिखाई दे रहा है। उसकी कलाओं का पार नहीं। उसमें से अनेक किरणें झिलमिला रही हैं। सब ओर प्रकाश की चकाचौंध है।

५. वन में बेलों पर बड़े सुन्दर, और विविध रंगों के फूल खिले हैं। सुगन्धि से भरा शीतल पवन—मलयानिल, अंगों में उमंग बढ़ा रहा है।

६. इस वन में और भी कई आनन्द हैं। पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं। यह क्रीड़ा-वन छोड़ा नहीं जाता। बड़ा सुन्दर सुहाना समय है।

७. सबने एकान्त में मिल कर वन में अनेक विलास किये। हमने भी इस प्रकार कितने प्रकार के खेल खेले। उनके सुखों का वर्णन कैसे करूं!

८. अब एक मनोरथ शेष रह गया है। हम दोनों इसी तरह खेलें, दोनों जोर से आलिंगन बद्ध होकर गले मिलें और केलि करें। देखें, कौन हारता है, कौन जीतता है।

९. यहां पर महीन रेत झलक रही है, जरा भी कंकर नहीं है। यहां पर यह खेल बड़ा जमेगा। हे स्वामी, हम आपके संग यह खेलें।

सखियो तमे ऊभा रहो, जेवुं होए तेवुं केहेजो ॥
बंने लेऊं अमें बाथडी, तमे साख ते सांची देजो ॥ १०

दोडी लीधी कंठ बांहोंडी, बंने करी हो हो कार ।
सखियो मनमां आनंदियो, सुख देखी थयो करार ॥ ११

चरण आंटी भुज बन्ध वाली, कोई न नमे रे अभंग ।
बाथो लिए बंने बल करो, रस वढतो जाए रंग ॥ १२

वालो वलाका देवाने नीचो नमाव्या चरण ।
हो हो वालोजी हारिया, हंसी हंसी पडे सहू धरण ॥ १३

सखियो कहे अमे जीतियों, सुख उपनूं आसाधार ।
ताली देई देई हरखियो, लडथडे पडे सहू नार ॥ १४

अणची कां करो रे सखियो, हूं जाणूं छूं तमारूं जोर ।
जीत्या विना एवडी उलट, कां करो एवडो सोर ॥ १५

हारया हारया अमने कां कहो, आवो लीजे बीजी बाथ ।
जे हारसे ते हमणा जोसूं, तमे सांची केहेजो सहू साथ ॥ १६

आवो वली बाथो लीजिए, एक पूठीने अनेक ।
हमणा हरावूं तमने, वली हंसावूं वसेक ॥ १७

कहे इंद्रावती हूं बलबन्ती, सुणजो सखियो वात ।
नेहेचे तमने ऊंचूं जोवरावूं, वली रामत करूं अख्यात ॥ १८

प्रकरण ४१ ॥ चौपाई ७९६ ॥

छंदनी चाल

एणें समे रामत गमे, वालो विलसी लिए सोंसो ।
अधुरी मधुरी, अंमृत घूटे, छोले छूटे, लिए लूटे ॥ १

१०. सखियो, आप खड़ी होकर देखती रहो । जैसा हो, वैसा ही कहना । हम दोनों परस्पर आलिंगन-स्तंभन करेंगे, आप सच्ची गवाही देना ।

११. दोनों ने परिहास करते हुए, भाग कर एक दूसरे के गले में परस्पर बांहें डाल दीं । सखियों का मन आनन्दित हुआ । देख कर चैन मिला ।

१२. चरणों से टेका दिया हुआ है । आपस में भुजाओं को बाँध रखा है । तनिक भी कोई झुकता नहीं । दोनों ओर से गले में बांहे डाल रखी हैं । आनन्द-रस बढ़ती ही जा रहा है ।

१३. स्वामी ने बल डालने के लिये पांव झुकाया । 'हो—हो' स्वामी हार गये, ऐसा कह कर सखियां हँसते-हंसते धरती पर लोट-पोट हो गई ।

१४. सखियाँकहती हैं—'हम जीत गई' । उन्हें असाधारण सुख मिला । ताली बजा कर हंसी में लोट-पोट हुई जा रही हैं ।

१५. प्रिय कहने लगे 'ऐसी अनुचित बात क्यों कहती हो सखियो । मैं तुम्हारा बल जानता हूँ अभी तुम्हारी जीत नहीं हुई । जीते बिना ऐसी उल्टी बात कहना और इतना शोर मचाना ठीक नहीं ।

१६. 'हराया हराया' क्यों कह रही हो, चलो दूसरी बार आ जाओ । अब देखें, कौन हारता है । इस बार सब सत्य कहना ।'

१७. आओ प्रिय, अब फिर दूसरी बार गुंथ जाए । एक बार नहीं, अनेकों बार मैं आपको हराऊंगी । खेल-खेलकर मैं बार-बार सब को बहुत हंसाऊंगी ।

१८. इन्द्रावती कहती हैं, सुनो मैं बलवंती हूँ । निश्चित ही मैं आपसे ऊंची हो कर दिखाऊंगी ऐसा । ऐसा जोरदार खेल रचाऊंगी ।

प्रकरण—४२

१. इस समय जो आनन्दपूर्ण क्रीड़ा हुई, वह बड़ी मनभावनी थी । वाला ने आनन्द विलास द्वारा काम भाव को सोख लिया—उसका परिहार कर दिया । वे अधरों की रस-माधुरी को अमृत की घूंट के समान पीने लगे । अंग-अंग में उमंग की जो लहरें उमगने लगीं—उन्हें उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक लूट लिया ।

लख बथ, हथ सथ, अंग संग, रंग बंग चंग, चोली चूंथी,
भाजी भूसी, हांसी सांसी, जाणी पाणी, नैणे माणी,
वदूं वाणी, रहोजी होजी, माजी कांजी, भाखूं आखूं,
राखूं रंगे, समारूं सिणगार ।। २

वली वसेखे, राखूं रेखे, लेऊं लेखूं, जोऊं जोखूं,
प्रेमे पेखूं, घसी मसी, आवी रसी, हंसी खसी बसी,
भीसी रीसी खीसी, जरडी मरडी, करडी खरडी ।। ३

खंडी खांडी, छांडी मांडी, मेली मेली, भूमी चूंमी, गाली लाली,
लोपी चापी, लाजी भाजी, दाभी काढी, आंजी हांजी,
जीती जोपे, रूडी रीते, उठी इंद्रावती आ वार जी ।। ४

प्रकरण ४२ ।। चौपाई ८०० ।।

राग धन्या छंद

छेल छंछेरीने लीधी बाथ जुगते, रामत कीधी अति रंगजी ।
स्याम सुन्दरी बंने सरखी जोड, जाणिए एक अंगजी ।। १

वली रामत मांडी एक जुगते, जाणिऐं सलघी अभंगजी ।
रामत करतां आलिंघण लेतां, लटके दिए चुमनजी ।। २

रमतां भीडे कठन कुचसों, छबकेसूं रंग लेतजी ।
अंमृत पिए वालोजी रमतां, अधुर इंद्रावती वेतजी ।। ३

२. वे परस्पर परिरंभ में बंध गए। अंग से अंगों का मिलन हुआ। आनन्द के स्रोत बहने लगे। शिथिल पड़ी नायिका की चोली के चिथड़े हो गए। लोक लाज के बन्ध टूट गए। आवेग पूर्ण हंसी और श्वास-प्रश्वास के बीच आंखें मिलती हैं। सारा प्रेम व्यापार निःशब्द सम्पादित हुआ। आनन्द-केलि में क्या करे—हृदय की तपन शांत करे या सिंगार सम्भाले।

३. प्रिय ने विशेष युक्ति से अपना सम्बल प्रदान किया। मैं उनके प्रेम को पाकर, उन्हें निहार कर (अपने भाग्य की) सराहना करती हूँ। अपने प्रेम का दाय (प्रतिदान) भर चुकाती हूँ। उनकी हंसी, उनकी प्रसन्नता, सुवास, उनका रीझना, खीजना और उनका संचरण-संसरण सब कुछ अलौकिक और रस पूर्ण है। हंसी की हिलोर रग-रग में भरी है। वे एक-एक अंग में समा जाते हैं।

४. इस प्रणय-केलि में प्रियतम का संग पाकर क्लांत और श्लथ नायिका धरती पर लोट गई। उसके गालों की लालिमा बिखर गई। लाज के सारे बन्धन टूट गए। अन्तर्मन की दाह मिटी। इसी प्रकार उल्लसित भाव से केवल 'हाँ हाँ' कहती नायिका (इन्द्रावती) अपनी जीत से गर्वित होकर पुनः अगली क्रीड़ा के लिए उठ खड़ी हुई।

प्रकरण—४३

१. छैल छबीले श्याम ने बड़ी युक्ति से श्यामा जी को अपने मधुर परिरंभ पाश में बांध लिया। पुनः अत्यधिक आनन्द प्रदान करनेवाला खेल खेला। श्याम सुन्दर और श्यामा सुन्दरी दोनों एक सरीखे हैं। दोनों के स्वरूप अपनी युगल लीला और केलि-क्रीड़ा में एकमेक और अभिन्न प्रतीत होते हैं—वे दोनों एकाकार हो गए हैं।

२. उन्होंने पुनः ऐसा ही क्रीड़ा-आयोजन किया, जिसमें दोनों सर्वांगतः और सर्वांशतः अन्तरंग और एकाकार हो गए। उन्होंने क्रीड़ा-पूर्वक श्यामा नायिका को अपने तल्प (आलिंगन) में बांध लिया और बड़ी चातुरी से चुम्बन प्रदान किया।

३. लीला-परायण ने खेल-खेल में ही उनके कठिन और पीनोन्नत कुचों का मर्दन करते हुए आनन्द वर्धन किया। नायिका सखी इन्द्रावती भी अपने अधरामृत प्रदान करती है, जिसके रस पान में छके प्रियतम लीला-मग्न हैं।

अधुर लेई मुख मांहें मारे वालें, आयत कीधी अपारजी ।
भूषण उठया उठया अंगों अंगे, रहो रहो समरथ सार आधारजी ।। ४

रम्या रम्या मारा मारा वाला वाला, पाछी पाछी रामत कोए न रही ।
हवे ने हवे आधार, आयत पूरण थई ।। ५

समसम देऊं देऊं स्याम स्याम सुणो सुणो, ममम्म भीडो एणी भांतजी ।
बोली बोली न न सकूं बलियारे बलिया, पूरी पूरी मारी मारी खांतजी ।। ६

देई देई सम सम थाकी थाकी तमने, कां करो भीडा भीडजी ।
आयत आयत आवे अंगों अंगे, त्यारे न देखो पीडजी ।। ७

मन मन मनोरथ पूरया पूरया वाला वाला, वली वली लागूं पाएजी ।
केही केही पेरे पेरे कहूं कहूं तमने, स्वांस स्वांस हैडे मुझाएजी ।। ८

कर कर जोडी जोडी कहूं कहूं वाला वाला, वली वली मानज मांगूंजी ।
मेलो मेलो मुखथी वात करूं, नमी नमी चरणे लागूं जी ।। ९

जेवी अमने आयत हुती, तमे तेवा रमाड्या रंगजी ।
साथ सकलमां एम सुख दीधां, इंद्रावती पामी आनंदजी ।। १०

प्रकरण ४३ ।। चौपाई ८१० ।।

राग मलार

सखी सखी प्रते स्याम, वालेंजीएं देह धरया ।
कांई वल्लभसूं आ वार, आनन्द अति करया ।। १

मारा पूरण मनोरथ जेह, थया वरसूं मली ।
कांई रही नहीं लवलेस, वालाजीसूं रंग रली ।। २

४. उन्होंने अधरों को अपने मुख-राग से तुष्ट किया और अपार आनन्द प्रदान किया। उनके साथ सम्पन्न हुई इस आनन्द-क्रीड़ा में अंगांगों पर सुशोभित रमणीय आभूषण भी आह्लादवश थिरक उठे। 'हे हमारे प्राणाधार समर्थ प्रियतम—तनिक तो ठहरिये'।

५. विभिन्न प्रकार की अनुरागपूर्ण क्रीड़ाओं में—बालाजी से रामत करने में कोई भी सखी पीछे न रही। प्रियतम ने भी सबकी साध पूरी कर दी।

६. (कोई) सखी नायिका अस्फुट स्वरों में बुदबुदाती है कि हे श्याम, अब मुझे (निर्दयतापूर्वक) इतने ज़ोरों से अपने आलिंगन में न बांधिए। अब तो मैं बोल भी नहीं पाती (अब निवेदन भी क्या करूं !) आपने सारा आनन्द-वैभव प्रदान कर दिया।

७. मैं तो सौगन्ध दिला कर पूरी तरह हार गई—अब आप मुझे इतने ज़ोरों से क्यों भींचते हैं। मेरे तो एक एक अंग की साध (चाह) भर गई। क्या अब भी आप इसकी पीड़ा को नहीं समझते।

८. मेरे मन की तमाम इच्छाएं पूरी हो गईं स्वामी ! अब बख्श दो—मैं आप के पांव पड़ती हूँ। आपको किस प्रकार समझाऊं कि अब मेरे सीने में सांस तक घुट रही है।

९. तो भी आप से हाथ जोड़ कर निवेदन करती हूँ मेरे स्वामी ! मेरे मन में यही इच्छा बलवती है कि इसी प्रकार पड़ी आपसे बातें करती रहूँ और आपके श्रीचरणों से लगी रहूँ।

१०. हमने जैसी आनन्दपूर्ण इच्छा की—प्रियतम ने कौतुक करते हुए वैसा ही अपूर्व उल्लास प्रदान किया। समस्त सखियों के संग मुझे वैसा ही आनन्द प्रदान किया—जिसे प्राप्त कर इन्द्रावती कृत कृत्य हो गई।

प्रकरण—४४

१. सखी-सखी के लिये श्याम ने अलग-अलग स्वरूप धारण किया। इस बार की क्रीड़ाओं में वल्लभ ने बहुत आनन्द दिया।

२. मेरे मन में जो-जो मनोरथ थे वे, स्वामी ने पूर्ण किये। कोई लेश मात्र भी शेष न रहा। हम सब प्रियतम से रंग में मिल गई।

अमें जेम कह्यूं वाले तेम, कीधी रामत घणी ।
हाम हुती हैडा मांहें, वालें टाली अमतणी ॥ ३

एणे समे जे सुख, थया जे साथमां ।
कां जाणे वल्लभ, कां जाणे मारी आतमां ॥ ४

जेहेना मनमां जेह, उछाह हुता घणां ।
सुख दीधां तेहेने तेह, पार नहीं तेह तणां ॥ ५

एम रामत कीधी वन मांहें, रमीने आवियां ।
ए सुख आ वन मांहें, भला भमाडियां ॥ ६

कहे इंद्रावती साथ, एणी वातों जेटली ।
न केहेवाए कोटमों भाग, मारे अंग एटली ॥ ७

प्रकरण ४४ ॥ चोपाई ८१७ ॥

राग गोडी—झीलणां

अणी हांरे झीलण रंग सोहांमणां रे, आपण झीलसूं वालाजीने साथ ।
रामत रमी सहू आवियां, कांई पूरण थयो रंग रास ॥ १

श्री राज कहे स्यामाजी सुणो, कांई तमारा मनमां जेह ।
साथ सहूने मनोरथ, कांई रह्यो छे एक एह ॥ २

अंगे उमंग उपाईने, भेला नाहिए ते भली भांत ।
झीलणां कीजे मन गमतां, खरी पूरूं तमारी खांत ॥ ३

वेलडिऐं कुसम प्रेमल, कांई वन झलूवे वाए ।
फले रस चढया कै भांतना, भोम सोभा वाधंती जाए ॥ ४

जल उछले उछरंगमां, लेहेरडियों ले रे तरंग ।
पसू पंखी ना सबद सुहांमणां, कांई उलट पसरयो अंग ॥ ५

साथ मलीने भेलो थयो, आव्यो आनंद मांहें ।
अमें सखियो अट ऊपर, वालाजीनी ग्रही बांहें ॥ ६

वागा वधारी कांठे मूकियां, कांई वस्तर पेहेरया झीलण ।
सखी एक बीजीने आनंदमां, जल मांहें लागी ठेलण ॥ ७

३. हमने जैसे कहा, प्रियतम ने वैसा ही रंग-रूप धारण किया। बहुत प्रकार के खेल किये। हमारे हृदय में जो चाह थी—स्वामी ने उसे पूर्ण किया।

४. इस समय जो सुख सखियों को मिला वह या तो प्रीतम जानते हैं। या फिर मेरी आत्मा ही जानती है।

५. जिसके मन मे जैसा भी उल्लास था—उसको वैसा ही और इतना सुख मिला कि उसका पार नहीं पाया जा सकता।

६. इस प्रकार उन्होंने वन में रमण किया। सभी खेल कर आ गये। वन में भली भांति विचार करते हुए अपूर्व आनंद प्राप्त किया।

७. इन्द्रावती कहती हैं, 'हे सखियों, वहां की कितनी बातें हैं, जो मेरे मन में समा गई हैं। उनका करोड़वां भाग भी नहीं कहा जा सकता (वह तो अनुभव गम्य अंतरंग लीला है)

प्रकरण—४५

१. अरे हां री, सखियों, जल क्रीड़ा का आनन्द बहुत है। हम स्वामी के साथ जल-विहार करेंगे। हमने वन में बहुत जमकर खेल लिया। रास का आनन्द पूर्ण हुआ।

२. श्री राजजी—(कृष्ण) कहते हैं 'श्यामा जी सुनो, अब तुम्हारे मन में और सभी सखियों के मन में एक यह मनोरथ ही शेष रह गया है।

३. तो चलो अंग में उमंग भर कर सब सखियाँ साथ ही नहाएं। जल क्रीड़ा भली-भांति सम्पन्न करके सचमुच तुम सभी की सच्ची चाह को पूर्ण करूं।

४. वन के बेलों के फूलों का पराग वायु को सुगन्धित बना रहा है। इनमें कई तरह का रस भर आया है। इनसे धरती की शोभा बढ़ती जाती है।

५. यमुना का जल इस बात को सुन उमंग में उछलने लगा, लहरें मचलने लगीं। पक्षियों का स्वर सुहाना हो गया। सब के मन में आनन्द उमड़ पड़ा।

६. सब सखियाँ मिल कर इकट्ठी हुई। आनन्द में भर कर वहां आये स्वामी की उन सखियों ने तट पर बांह पकड़ ली।

७. उन्होंने परिधान उतार कर किनारे रख दिया और स्नान के उपयुक्त वस्त्र पहने। सखियाँ एक दूसरी को आनन्द पूर्वक जल में ठेलने लगीं।

त्रट जोईने जलमां सांचरया, साथ वालो स्यामाजी संग ।
परियाणीने थया सहू जुजवा, जल मांहें कीजे आनंद ।। ८

एकीगमां साथ स्यामाजी, कांई बीजी गमां प्राणनाथ ।
क्रीडा कीजिए जलमां, विलसिये वालाजीने साथ ।। ९

जल उछाले उछरंगसूं, सहू वालाजीने छांटे ।
वालोजी छांटे एणी विधसूं, त्यारे सरवे नासंतियों कांठे ।। १०

वली सामी थाए सखियो, जल छांटतियों छोले ।
वालोजी उछाले जल जोरसूं, त्यारे नासंतियों टोले ।। ११

वली आवतियों उमंगसूं, वालो वीटयो ते चारे गम ।
सूझे नहीं कांई जल आडे, आंखें आवी गयो छे तम ।। १२

एणे समे हुवे जे थयूं, बाई इंद्रावतीनूं काम ।
विधे विधे विलसी वरसूं, भाजी हैडानीं हाम ।। १३

एम जल क्रीडा करी, पछे नाह्या ते पीउजी ।
घणां रस लीधां अंग चोलतां, वालैयाने विलसी ।। १४

स्यामाजीने नवरावियां, पेरे पेरे ते घणी प्रीत ।
साथ सहू एणी विधे, कांई नाह्यो छे रूडी रीत ।। १५

सुंदरबाई इंद्रावती, कांई रत्नावती संग ।
लालबाई पेहेले निसरया, सिणगार कीधा सरवा अंग ।। १६

वस्तर भूषण स्यामाजीने, पेहेराव्या भली भांत ।
अधवीच आवीने वालैएं, वेण गूंथी करी खांत ।। १७

सिणगार सरवे सजी करी, स्यामाजी घणूं सोहे ।
दरपण लेईने हाथमां, मन वालानूं मोहे ।। १८

आसबाई कमलावती, कांई फूलबाई मल्या ।
चंपावती चारे मली, सिणगार कीधां भेला ।। १९

८. किनारा देख कर सभी जल में उतर गईं। स्वामी और श्यामाजी के साथ सलाह करके सब सखियों ने अलग-अलग टोलियाँ बना कर जल क्रीड़ा का आनन्द लिया।

९. एक ओर सब सखियाँ और श्यामा जी तथा दूसरी ओर अकेले प्राणनाथ— इस प्रकार दल में बंटकर श्रीकृष्ण जल में क्रीड़ा—केलि और स्वामी संग जल विहार संपन्न करें।

१०. वे एक दूसरे पर बड़े उमंग से जल उछालती हैं और स्वामी पर छींटें डालती हैं। जब स्वामी भी इसी तरह जल उछालते हैं तो सब किनारे की ओर भाग जाती हैं।

११. फिर सारी सखियाँ सामने आती हैं। और अचानक जल खूब जोर उछालने लगती हैं। स्वामी भी प्रत्युत्तर में खूब जोर से उछालते हैं तो सब टोली बना कर भागतीं हैं।

१२. फिर उमंग से आती हैं तो स्वामी पर चारों ओर से जल उछालतीं हैं। जल इतने जोर से उनके सामने आता है कि आँखों को कुछ सूझता नहीं। आँखों के सामने अंधकार छा गया।

१३. इस समय सखी इन्द्रावती को मन में जो-जो इच्छा हुई, उसे उन्होंने कई तरह से स्वामी से विलास करके मन की चाह को पूरा किया।

१४. इस प्रकार जल क्रीड़ा करके पिया जी नहाये। स्वामी के अंगों को मलने में सखियों ने बड़ा आनन्द लिया।

१५. फिर श्यामाजी को बड़ी प्रीति में भर कर स्नान कराया। सब सखियों ने भी इसी तरह आनंद पूर्वक एक दूसरी को नहलाया।

१६. इन्द्रावती, सुन्दरबाई, रत्नावली और लालबाई पहले ही जल से निकल आईं। उन्होंने आते ही अपने वस्त्राभूषण आदि पहन लिये।

१७. फिर उन्होंने श्यामा जी को अच्छी तरह वस्त्राभूषण पहनाए। इसी बीच स्वामी जी ने आकर बड़ी खुशी से उनकी चोटी को गुहारकर गूंथ दिया।

१८. सब श्रृंगार और परिधानादि में सजकर श्यामा जी बड़ी सुन्दर लगती हैं। दर्पण हाथ में लेकर वे स्वामी का मन मोह लेती हैं।

१९. आसबाई, कमलावती, फूलबाई और चम्पावती चारों ने मिलकर उनका श्रृंगार सम्पन्न किया।

चार सखी मली श्रीराजने, कराव्या सिणगार ।
वस्तर भूषण विधोगतें, कांई सोभ्या ते प्राण आधार ।। २०

एक बीजोने करावियां, सिणगार सरवे एम ।
चितडूं देईने में जोईयूं, कांई साथनों अतंत प्रेम ।। २१

प्रसेवे वस्तर साथना, नाहवा समे उतारया जेह ।
श्रीराज बेठा तेह ऊपर, तमे प्रेम ते जो जो एह ।। २२

जमुनाजीने कांठडे, कांई द्रुमबेलीनी छांहें ।
साथ सहू मलीने सामटो, आव्यो ते आनंद मांहें ।। २३

बेठा मली आरोगवा, सोभित जुजवी पांत ।
सो सखीसों इंद्रावती, यथा प्रीसने भली भांत ।। २४

प्रकरण ४५ ।। चौपाई ८४१ ।।

राग वेराडी—भोग

फरतण फेर वाजोटिया, रंग पाकी परवाली ।
कांवी पडगी जे कांगरी, जाणे रहिए निहाली ।। १

चारे गमां वाल्या चाकला, बेठा वाली पलाठी ।
सोभा मारा वालाजीनी सी कहूं, जे आतमाएं डीठी ।। २

श्रीठकुराणीजो श्रीराजसों, भेलां बेसे सदाए ।
आसबाई सुन्दरबाई, बेठा एणी अदाए ।। ३

हाथ पखाल्या पात्रमां, जुजवी जुगतें ।
पासें साथ बेठो मली, सहू कोए एणी विगतें ।। ४

ऊपर वन रंग छाईयो, जाणे मंडप रचियो ।
प्रीसणे साथ जे हुतो, ते तो रंग मांहें मचियो ।। ५

२०. इधर चार सखियों ने मिल कर श्री राज जी को शृंगार कराया। विधि पूर्वक वस्त्राभूषण पहन स्वामी अपूर्व शोभाशाली सम्पन्न प्रतीत होने लगे।

२१. एक सखी ने दूसरी को, इसी प्रकार शोभा-मांडन करते हुए सबका शृंगार किया। उसे अपने अन्तर में धारण करते हुए मैं (इंद्रावती) ने सभी सखियों को प्रेम पूर्वक निहारा।

२२. सखियों ने जो स्वेद युक्त परिधान नहाने के पूर्व किनारे पर रख छोड़ा था—श्री राज जी उनके ऊपर बैठ गए। उनके प्रेम का औदार्य तो देखो।

२३. यमुना के किनारे फैली वृक्ष बेलों की छाँव में सब सखियाँ आनन्द में भर कर सिमट आई हैं।

२४. वे सब मिल कर भोजन करने के लिए बैठे हैं। सब अलग-अलग पंक्तियों में शोभायमान थीं। अन्यान्य सखियों समेत श्री इन्द्रावती परोसने का काम योग्यतापूर्वक सम्भालने लगीं हैं।

प्रकरण-४६

१. वहां लाल मूंगे के रंगवाली गोलाकार चौकी बिछी है। उसकी किनारी की काँगरी इतनी सुन्दर है, जिसकी सुन्दरता कोई देखे तो देखता ही रह जाये।

२. चारों ओर ऐसी ही कई चौकियाँ लगी हैं। सब पालथी मार कर बैठते हैं। अंगनाओं ने अपने स्वामी की जिस अपूर्व शोभा को देखा, उसका वर्णन कहां तक किया जाए ?

३. श्री ठकुरानी—श्यामा जी सदा की भांति श्याम जी के संग बैठी हैं। आसबाई और सुन्दरबाई भी उन्हीं के निकट उसी अदा में बैठी हैं।

४. अच्छी तरह से सबों ने पात्र में हाथ धोए। पास बैठी सखियों ने भी वैसा ही किया।

५. ऊपर समस्त वन-राजि का रंग-सौंदर्य-वितान ऐसा छाया है, मानो मंडप रचा हो। परोसने पर जो सखियाँ लगी हैं—वे तो आनन्द में डूब गईं।

थाली धात वसेकनी, जुगतें अजवाली ।
लाल जडाव लोटे जल, लेई प्रेमें पखाली ॥ ६

बाटका फूल कचोलिया, ते तो जुगतें जडिया ।
अजवालीने पखालिया, थाली माहें मलिया ॥ ७

वली नितारी अजवालिया, रूमाल संघातें ।
प्रीसे छे सारी सूखडी, विध विध कै भांतें ॥ ८

बाई भागवन्ती भली पेरे, प्रीसे सूखडी सारी ।
कहूं केटली घणी भांतनी, सरवे मूकी संभारी ॥ ९

पकवान सरवे प्रीसी करी, साक मूक्या छे घणां ।
कंदमूल भांत भांतनां, अलेखे अथाणां ॥ १०

साक सूकवणी तणां, कै सेक्या सुतलिया ।
विध विध मेवा बन फल, अति उत्तम गलिया ॥ ११

आरोग्या अति हेतसों, राज साथ संघातें ।
प्रीसंतां प्रेम जे में दीठो, ते न कैहेवाये भांतें ॥ १२

कंचन रंग झारी भरी, जल विच्च मांहें लीधों ।
श्री इंद्रावतीजीने कोलियो, राजें मुख मांहें दीधों ॥ १३

हरष थयो जे एणे समे, साथें सरव कोए डीठो ।
हंसिया रमिया साथसों, घणों लाग्यो छे मीठो ॥ १४

आरोग्या आनंदसों, जेणे जे भाव्या ।
दूध दधी ते उपर, लाडबाई लेई आव्या ॥ १५

ते लीधां चल्लू कराविंयां, बेठा वासें तकियो देई ।
थाल बाजोट उपाडिया, लोयूं मुख रूमाल लेई ॥ १६

फोफल काथो चूना जावंत्री, केसर कपूर घाली ।
ऊपर लवंग देई करी, पांन बीडी वाली ॥ १७

बीडी ते लेई आरोगिया, वली लीधी सहू साथ ।
साथ हुतो जे प्रीसणे, सखियोंने प्रीसे प्राणनाथ ॥ १८

६. थालियां विशेष धातु की हैं, बड़ी युक्ति से धोई गईं। वे लाल जड़ाऊ लोटे को प्रेम से धोकर उसमें जल भर लाई हैं।

७. कटोरियाँ काँसे की हैं। बड़ी कारीगरी से उनमें नग जड़े हुये हैं। माँज-धोकर उन्हें थाली में सजा दिया गया।

८. फिर उन्हें सुखाने के लिए रूमाल से पोंछा। वे उनमें अच्छी पंजीरी कई तरह से परोसती जाती हैं।

९. सखी भागवन्ती अच्छी तरह से पंजीरी परोसती है। वह पंजीरी भी कई तरह की है। सबको पूछ कर जैसी चाहिए थी—वैसी परोसती जा रही है।

१०. कई तरह के पकवान परोस कर, कई प्रकार की शाक-सब्जी डाल रही है। तरह-तरह के कन्द मूल परोसे गये हैं। कई तरह के अचार हैं।

११. कई सूखे साग भली प्रकार तले या भुने हुए हैं। फिर विविध प्रकार के मेवा और वन के पके हुए फल अच्छी तरह परोसे जा रहे हैं।

१२. श्री राजजी के साथ सब सखियों ने बड़े स्नेह से भोजन किया। जो प्रेम मैंने परोसने वालियों में देखा वह किसी तरह कहा नहीं जा सकता।

१३. बीच में सुनहरी सुराही रखी है, जिसमें जल भरा है—जिससे वे जल लेते हैं। सखी इन्द्रावती को श्री राजजी मुख में ग्रास डाल देते हैं। इन्द्रावती को यह अनन्य सौभाग्य प्राप्त होता है।

१४. इस समय बहुत हर्ष हुआ, इसे सब सखियों ने देखा। सब हंसती हैं, प्रफुल्लित होकर खेलती हैं। सबको बहुत अच्छा लगा।

१५. जिसको जो भाया सबने आनन्द से भोजन ग्रहण किया। अन्त में लाडबाई दूध दही ले आई।

१६. वह भी सबने ग्रहण किया। फिर आचमनादि कराया। सब गाव तकिये लगा कर बैठ गये। थाल और चौकियाँ उठा लीं गईं। स्नेहपूर्वक रूमाल से मुख पोंछवाया।

१७. पान के बीड़े लाने वालियों ने सुपारी, चूना, जावंत्री, केशर और कपूर डालकर पान लगाया। ऊपर लवंग लगा दिया।

१८. श्रीराजजी ने पान का बीड़ा लेकर मुंह में रखा। फिर सब सखियों ने पान लिया। जो सखियां परोसने में लगी थीं, अब उन्हें प्राणनाथ स्वयं परोस रहे थे।

आरोग्या सहू अति रंगे, बीडी लीधी श्री मुख ।
बेठा मली वातों करवा, वाणी लेवा सुख ॥ १९

कहे इंद्रावती साथजी, वालें विलास जो कीधां ।
चढी आव्या अंगे अधिका, वचे व्रह जो दीधां ॥ २०

प्रकरण ४६ ॥ चौपाई ॥ ८६१ ॥

राग गोडी रामग्री

वाला वालमजी मारा, जीरे प्रीतम अमारा ॥ टेक

तमे रास रंगे रमाडिया, पण सांभलो मारी वात ।
अम ऊपर एवठी, तमे कां कीधी प्राणनाथ ॥ १

अवगुण एवडा अमतणां, क्यांह हुता वालम ।
एम अमने एकला, मूकी गया व्रंदावन ॥ २

तमे अमथी अलगां थया, त्यारे व्रह थयो अति जोर ।
तमे वनमां मूकी गया, अमें कीधां घणां बकोर ॥ ३

तम विना जे घडी गई, अमें जाण्या जुग अनेक ।
ए दुख मारो साथ जाणे, के जाणें जीव वसेक ॥ ४

ए दुखनी वातों केही कहूं, जीव जाणे मन मांहें ।
जे अम ऊपर थई एवडी, त्यारे तमे हुता क्यांहें ॥ ५

हवे न मूकूं अलगों वाला, पलमात्र तमने ।
तमारा मनमां नहीं, पण दुख लागे अमने ॥ ६

पालखी अमे करूं रे वाला, तमे बेसो तेहज मांहें ।
अमें उपाडीने चालिए, हवे नहीं मूकूं ख्यण क्यांहें ॥ ७

हूं अलगों न थाऊं रे सखियो, आपणी आतमां एक ।
रामत करतां जुजवी, कांई दीसे छे अनेक ॥ ८

१६. सबने आनन्द से भोजन किया और पान ग्रहण किया। इकट्ठा बैठकर सब बातें करते रहे और प्रीतम के वचनों का सुख लेते रहे।

२०. इन्द्रावती कहती हैं, —'हे सखियों, स्वामी ने जो विलास किया, उसमें जो विरह उन्होंने दिया था, उसकी याद उभर कर आ गई।'

प्रकरण-४७

१. हे मेरे प्यारे स्वामी, ओ हमारे प्रियतम ! आपने हमें आनन्द पूर्वक रास रमण कराया—परन्तु हमारी प्रार्थना भी सुनिए—आप ने हम पर इतनी बड़ी ज्यादती क्यों की ?

२. आखिर हमारा इतना बड़ा अवगुण क्या था हे हमारे प्रियतम ! आप हमें अकेला छोड़कर वृन्दावन से क्यों चले गये ?

३. जब आप हमसे विलग हुए तब से हमारे मन में बहुत विरह उत्पन्न हो गया। आप तो हमें बन में छोड़कर चले गये और हमने भी न जाने कितना विरह—विलाप किया।

४. आपके बिना जो घड़ियां बीतीं, वे हमें अनेक युगों के समान लगीं। यह दुख या तो ये सब सखियाँ जानती है या विशेष तौर से मेरा हृदय ही जानता है।

५. मैं इन दुःख भरी बातों को कैसे कहूँ प्रियतम ? मेरा अन्तर मन ही इसे अच्छी तरह जानता है। जब हम पर ऐसी बीत रही थी तो आप कहां थे ?

६. अब मैं आपको पल मात्र के लिए भी नहीं छोड़ूंगी। आप के मन में तो कुछ शेष नहीं रहा। —परन्तु वह कष्ट-कल्प हमें सालता ही रहा है।

७. हम आपके लिए बांहों की पालकी बना लेती हैं—आप उस में विराजिए। हम इसे उठाकर चलेंगी। अब हम आप को एक क्षण के लिए कदापि नहीं छोड़ने वाली।

८. स्वामी जी भी कहते हैं,—'मैं तुमसे अब अलग नहीं होऊंगा री सखियों ! हमारी अन्तरात्मा तो एक ही है। केवल खेल खेलते हुए, लीला के लिए अनेक स्वरूपों में विभक्त दिखाई देती है।

सखियों वात हूं केही करूं, जीव मारो नरम ।
वल्लभ मारा जीवनी प्रीतम, अलगी करूं केम ।। ९

तमथी अलगों जे रहूँ, ते जीव मारे न खमाए ।
एक पल मांहें रे सखियो, कोटान कोट जुग थाए ।। १०

व्रह तमने दोहेलो लाग्यो, मूने तेथी जोर ।
मुख करमाणां नव सहूं, तो केम करावुं बकोर ।। ११

जेम कहो तेम करूं रे सखियो, बांध्या जीव जीवन ।
अधख्यण अलगों न थाऊं, करार करो तमे मन ।। १२

एवडा दुख ते कां करो, हूँ देऊं एम केम छेह ।
तमे मारा प्राणना प्रीतम, बांध्या मूल सनेह ।। १३

प्राणपें वल्लभ छो मूने, एम करूं हूँ केम ।
में व्रंदावन मूक्यूं नहीं, तमे कां कहो अमने एम ।। १४

चित ऊपर चालूं रे सखियो, तमे मारा जीवन ।
जेम कहो तेम करूं रे सुंदरी, कां दुख आंणो मन ।। १५

आतमना आधार छो मारा, जीवसूं जीव सनेह ।
करूं वात जीवन सखी, मुख माहेंथी कहो जेह ।। १६

में तां एम न जाण्यूं रे वाला, करसो एम निघात ।
नाहोजी हूँ तो नेह जाणती, आपण मूल संघात ।। १७

एम आंखडी न चढाविए तेने, जे होए पोतानों तन ।
जाणिऐं मेलो नथी जनमनों, उथले रास वचन ।। १८

९. सखियों, मैं क्या बातें कहूँ ! मेरा हृदय तो बड़ा ही कोमल है। तुम सब तो मेरी प्राण प्रियतमा हो। तुम्हें मैं अपने से अलग कैसे कर सकता हूँ !

१०. मेरी अन्तरात्मा कभी इस वियोग को सहन नहीं करेगी कि मैं तुम सबों से अलग पड़ा रहूँ। एक पल के विरह में सखियों, कोटि-कोटि युगों का अन्तराल प्रतीत होता है।

११. जैसे तुम्हें यह विरह कठिन जान पड़ा—वैसे ही मुझे भी यह अधिक कष्टदायक लगता रहा, सम्भवतः तुम सबसे भी अधिक। फिर मैं जिनके कुम्हलाये हुए मुंह को नहीं देख सकता, उन्हें भला रुला कैसे सकता हूँ !

१२. अब तुम सब जैसा कहो, मैं वैसा ही करूंगा। हमारा तो जीव और जीवन का सम्बन्ध है। तुम सब अपने मन में निश्चय जान लो कि मै अब आध क्षण के लिए कदापि अलग नहीं होऊंगा।

१३. तुम सब इतना दुःख क्यों करती हो ! मैं भला अब वैसा वियोग क्योंकर देने लगा। तुम सब मेरी प्राण प्रियतमा हो। हम तो अनादिकाल से ही इस प्रेम बन्धन में बंधे हैं।

१४. मुझे तुम प्राणों से भी अधिक प्यारी हो। मैं ऐसी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ। मैंने तो वृन्दावन छोड़ा ही नहीं, फिर तुम सारी सखियां ऐसा ताना क्यों मारती हो !

१५. मैं तो तुम सबों की इच्छानुसार ही चलता रहा। तुम ही मेरा जीवन-धन हो। हे सुन्दरी सखियों, तुम जैसा चाहोगी, वैसा ही करूंगा। अब तुम अपने अन्तर को दुःखी न होने दो।

१६. तुम सब मेरी आत्मा का आधार हो। आत्मा का बन्धन आत्मा से ही जुड़ा है। मेरी जीवन-सखियों, तुम जो बातें मुख से कहोगी, मैं वही करूंगा।

१७. सखियां कहती हैं—'स्वामी, हमने कभी ऐसा नहीं समझा था कि आप हमें इतनी पीड़ा पहुँचायेंगे। हम तो केवल आप के स्नेह और अपने मूल सम्बन्ध से परिचित और परिचालित हैं।

१८. फिर जो अपना अन्तरंग आत्मीय हो—उनपर आंख उठाकर रोष भी तो नहीं किया जाता। जैसे कि उनसे जन्म-जन्मांतर का साथ ही न हो ! रास-प्रसंग में आपने हमें विपरीत वचन द्वारा लौट जाने को प्रेरित किया था।

अमें तूंने जोपें जाणूं, बीजो न जाणे कोए जंन ।
अमसूं छेडा छोडोने ऊभो, जाणिए नेह निसन ।। १९

सांभलो सखियो वात कहूँ, में जोयूं मायानूं पास ।
केम रमाए रामत रैणी, मन उछरंगें रास ।। २०

ते मांटे बोल कह्या कठण, जोवाने विस्वास ।
नव डीठो कोई फेर चितमां, हवे हूँ तमारे पास ।।२१

एनो तमे जवाब दीधों, केम रोतां मूक्या वन ।
नहीं विसरे दुख ब्रहना, अमने छे उतपन ।। २२

घणूज साले ब्रह वालैया, जे दीधूं तमे अमने ।
केटली वात संभारू दुखनी, हवे सूं कहूँ तमने ।। २३

कां जाणो एवडो अंतर, हूँ अलगों न थाऊं ।
तमने मेली वनमां, हूँ ते किहां जाऊं ।। २४

ब्रह तमारो नव सहूं, गायूं तमारूं गाऊं ।
अंग मारूं अलगूं न करूं, प्रेम तमने पाऊं ।। २५

अमें ठाम सघला जोया रे वाला, क्यांहें न दीठो कोए ।
जो तमे हुता बनमां, तो ब्रह केणी पेरे होए ।। २६

वन वेलडियो जोई सरवे, घणें दुखें घणूं रोए ।
घणी जुगतें जोयूं तमने, पण केणे न डीठो कोए ।। २७

तमे कहो छो वनमां हुता, तो कां नव लीधी सार ।
अमें वन वन हेठे विलखियों, त्यारे कां नव आव्या आधार ।। २८

१९. आपको हम जितना जानती हैं, दूसरा कोई भी नहीं जान पायेगा। इसके पहले भी आप हमसे पल्ला छुड़ा कर खड़े रहे थे। आपने स्नेह-सम्बन्ध को बच्चों का खेल समझ लिया—प्रेम की पीर को नहीं जाना प्रियतम !'

२०. —'सुनो सखियों, मैं अपनी बात दोहराता हूँ। मैंने तो मात्र यही देखना-परखना चाहा कि तुममें माया का लगाव (लेश) तो शेष नहीं रहा। मेरे मन में भी रास के लिए वही उमंग थी कि मैं तुम सखियों को रात भर कैसे रमण करा पाऊंगा।

२१. इसीलिए मैंने जो कठोर वचन कहे, केवल तुम्हारा विश्वास सहेज पाने के लिए। जब तुम्हारे मन में कोई ग्रन्थि न दिखी, तो आश्वस्त हुआ; इसीलिए तो अब मैं तुम्हारे पास (साथ) हूँ।'

२२. —'अच्छा, आपने इस बात का उत्तर तो दे दिया। परन्तु आप वृन्दावन के रास मण्डल में हमें बिलखता छोड़कर क्यों चले गये ? हमें वह विरह-जन्य दुःख भुलाये नहीं भूलता।

२३. यह प्रिय-विरह बहुत ही दुख और दुर्भाग्यपूर्ण है, जिसे हमें आपके कारण झेलना पड़ा। उस दुख की कितनी बातें याद करूं ! मैं आपके आगे क्या निवेदन करूं !

२४. —'मैं भी उस विरहावधि की पीड़ा क्या कहूँ। मैं स्वयं तुमसे विलग नहीं होना चाहता था। रास-लीला क्रम में तुम सबको वन में छोड़ कर मैं भला जा भी कहाँ सकता था।

२५. क्योंकि मैं भी तुम्हारी विरह-यंत्रणा सह नहीं सकता। मैं तो तुम्हारे ही प्रेम के गीत गाता हूँ। मैं तुम्हें अपने ही से अलग कैसे कर सकता हूँ। तुम सब मेरा ही अंग हो—मेरा प्रेम तुमसे ही अभिनन्दित है।'

२६. —'हमने उस अभिशप्त घड़ी में एक-एक कर सारे ठिकानों पर आप को ढूंढा था प्रियतम ! आप आप कहीं भी दिखाई न पड़े। अगर आप वन में ही होते तो फिर यह विरह सताता ही क्यों।

२७. हमने कुंज वन की सभी वेलों की छांह तक में आपको छान मारा। विरह-संतप्त पड़ी रहीं—विलाप किया। आप को हर तरह, हर जगह ढूंढा—पर आप कहीं दिखाई न पड़े।

२८. आप कहते हैं कि आप वन में ही थे—तो फिर हमारी सुधि क्यों न ली ! हम वन-वन भटकती-बिलखती रहीं। तो भी हे हमारे प्राणाधार, आप क्यों नहीं पधारे !

जो तमे ना होता वेगला, तो कां नव सुणी पुकार ।
अमने देखी रोवंतां, केम खम्या एवडो वार ।। २९

बोलो ते सरवे वात भूठी, वनमां ना होता निरधार ।
नेहेचे जाणूं नाहोजी, तमे भूठा बोल्या अपार ।। ३०

जो व्रह अमारो होए तमने, तो केम बेसो करार ।
तम विना ख्यण जुग थई, वन भोम थई खांडा धार ।। ३१

दाभ्र घणी थई देहमां, लागी कालजडे भाल ।
जाणूं जीव नहीं रहे, निसरसे ततकाल ।। ३२

एवो व्रह खमी रह्यों, में जाणूं जीवनी नाल ।
आसा अमने नव मूके, नहीं तो देह छाडूं तत्काल ।। ३३

तमे कहेसो जे एम कहे छे, नेहेचे जाणो जीव मांहें ।
तमारा समजो तम विना, एक अधख्यण में न खमाए ।। ३४

सखियो तमे सांचूं कह्यूं, ए बीती छे मूने वात ।
तमने व्रह उपनूं मारो, हूँ कहूं तेहेनी भांत ।। ३५

आपण रंग भर रमतां, ब्रख आडो आव्यो ख्यण एक ।
तमे प्रेमें जाण्यूं कै जुग बीत्या, एम दीठां दुख अनेक ।। ३६

ज्यारे पसरी जोगमाया, में इछा कीधी तमतणी ।
हूँ वेण लेऊं तिहां लगे, मुभपर थई घणी ।। ३७

एक पल मांहें रे सखियो, कलप अनेक वितीत ।
ए दुख मारो जीव जाणे, सखी प्रेमतणी ए रीत ।। ३८

२९. आप हमसे अलग नहीं थे, तो फिर आपने हमारी गुहार क्यों नहीं सुनी। हमें विरह-विलाप करते देखकर भी इतनी देर कर दी ! यह विछोह आप कैसे सहन कर सके प्रियतम !

३०. लगता है, आप जो कुछ कह रहे हैं, वह सब मात्र मिथ्या है। यह निश्चित है कि आप वन में नहीं थे। मैं समझ गई स्वामी, आप एकदम मिथ्या वचन बोल रहे हैं।

३१. यदि आप को हमारा विरह-दुःख सालता रहा होता तो आप कदापि चैन से नहीं बैठते। आप के बिना विरह का एक-एक क्षण एक-एक युग के समान व्यतीत हुआ। वन की धरती तलवार की धार जैसी तीक्ष्ण हो गई।

३२. अन्तर्मन में तीव्र दहन था—कलेजे में ज्वाला भड़क उठी थी। ऐसा लगता था, जीव रहेगा ही नहीं—तत्काल निकल जाएगा।

३३. तो भी हम विरह का दंश इसलिए सहन कर सकीं—कि हमें अपने जीव के मूल (सम्बन्ध) का पता था। हमने आपकी प्रत्याशा को कभी नहीं छोड़ा। अन्यथा 'हम तुरन्त अपनी देह छोड़ देतीं।'

३४. —'तुम सब तो यही कहोगी कि मैं (बहाने) बनाकर कहता हूँ। तुम अपने में यह निश्चय जान लो कि मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। मुझे तुम्हारी क़सम।

३५. सखियों, तुम एकदम सच कहती हो—मुझ पर भी ठीक ऐसी ही बीती ! तुम्हारा विरह मुझे भी उसी प्रकार सालता रहा। मैं उसके बारे में बताता हूँ।

३६. जब हम आनन्दपूर्ण क्रीड़ा में तल्लीन थे तो एक क्षण के लिए एक वृक्ष राह में आड़े आ गया। तुमने प्रेम में ही जाना होगा कि कई युग बीत गए। इसी प्रकार मैंने भी बहुत दुःख सहन किया।

३७. जैसे ही योगमाया का विस्तार हुआ—मुझमें भी तुम्हें पाने की लालसा बलवती हो उठी। वंशी को हाथ में लेने तक जितनी देर लगी; क्या बताऊं—मुझ पर क्या बीती। इसमें इतनी अवधि बीत गई।

३८. एक पल में ही सखियों, कई एक कल्प जितना समय विरह में व्यर्थ बीत गया। यह दुःख मेरा हृदय ही जानता है। सखी ! प्रेम की यही रीति (नियति) है।'

भीडी ते अंग इंद्रावती, सखी कां करो तमे एम ।
जीवन मारा जीवनी, दुख करो एम केम ।। ३९

चित चोरी लीधूं देई चुमन, सखी कहो करूं हूँ तेम ।
मारा जीव थकी अलगी नव करूं, जुओ अलवी थैयो जेम ।। ४०

सखियो मारी बात सुणो, कां करो ते एवडा दुख ।
पूरूं मनोरथ तमतणां, सघली वातें देऊं सुख ।। ४१

मारूं अंग वालूं तमतणे, वचन वालूं जिभ्या मुख ।
बोलावुं ते मीठे बोलडे, जोऊं सकोमल चख ।। ४२

हवे वाला हूँ एटलूं मांगूं, खयण एक अलगां न थैऐ ।
जहां अमने व्रह नहीं, चालो ते घर जैऐ ।। ४३

मांगी दुख सुखनी रामत, ते वालें कीधी आ वार ।
मन चित रंगे रमाडियां, कांई आपणने आधार ।। ४४

ब्रंदावन देखाड्यूं, रास रमाड्या रंग ।
पूर्व जनमनी प्रीतडी, ते हवणा आणी अंग ।। ४५

इंद्रावती कहें अमने वाला, भला रमड्या रास ।
पछे ते घर मूलगे, वालो तेडी चाल्या सहू साथ ।। ४६

वाला वालमजी मारा, जीरे प्रीतम अमारा :।

प्रकरण ४७ ।। चौपाई ९०७ ।।

इति श्री महाप्रभू श्रीप्राणनाथजी प्रणीत
'तारतम बानी' का पहला अंग ग्रंथ

रास—सम्पूर्ण

३९. फिर इन्द्रावती के अंग लगकर प्रियतम ने कहा—'हे सखी, तुम ऐसा उपालंभ क्यों देती हो ! तुम तो स्वयं मेरे हृदय का प्राण हो । तुम इस प्रकार क्यों दुःखी होती हो ।'

४०. प्रियतम ने चुम्बन लेकर चित्त चुरा लिया ।—'सखियों, तुम सब जैसा आदेश दोगी—मैं वैसा ही करूंगा । मैं अब अपने प्राणों से विलग नहीं होऊंगा । देखो, पहले भी तुम सब कितनी दुःखी रही हो ।

४१. सखियों मेरी बात सुनो, अब इतना भी कष्ट मत उठाओ ! मैं तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण करूंगा । सब प्रकार से तुम्हें सुख प्रदान करूंगा ।

४२. मैं अपने अंग तुम पर समर्पित कर दूंगा । अपनी जिह्वा पर तुम्हारा प्यारा नाम लूंगा । मीठे वचनों से तुम्हें बुलाऊंगा । तुम्हारी अनियारी और प्यारी आंखों को जोहता रहूँगा ।'

४३. —'अब तो हे प्रियतम ! मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मुझसे क्षण भर के लिए भी विलग न होइएगा । जिस घर में हमारा वियोग न हो—चलिए, हम उसी घर में चलें ।

४४. हमने दुःख सुख पूर्ण खेल मांगा था—वह हे स्वामी, आपने इस बार प्रदान किया । स्वामी आप ने मन और चित्त में आनन्दोल्लास भर कर भरपूर क्रीड़ाएं कीं ।

४५. हमें अपूर्व और आनन्दपूर्ण वृन्दावन दिखाया । उच्छल उल्लास में उमगते हुए रास-क्रीड़ा सम्पन्न की । पूर्व जन्म की प्रीति अब अंग में आ समायी है ।'

४६. इन्द्रावती कहती हैं—'स्वामी आपने हमें भली-भाँति रास क्रीड़ा में सम्मिलित किया । तदुपरांत प्रियतम हमें अपने मूल घर लिवा चले ।'

'हे हमारे बालम, ओ हमारे प्रियतम ॥'

पारिभाषिक शब्द-संदर्भ

अंजील--अंजीर (इंजील)

—ईसाइयों का पवित्र धर्म-ग्रंथ बाईबिल। इसमें पुरानी और नई (ओल्ड और न्यू टेस्टामेंट) दोनों सम्मिलित हैं। बाईबिल ग्रंथ सारे विश्व को प्रेम का संदेश देता है और प्रेम पर आधारित मानव धर्म को दृष्टांतों में प्रस्तुत करता हैं। प्रेम तत्त्व को प्रतिष्ठा के कारण 'श्री रास' को इंजील (अंजील) की भी संज्ञा दी गई है। महामति प्राणनाथ के गुरु स्वामी देवचन्द्र जी द्वारा प्रदत्त तारतम ज्ञान और श्रीमद्भागवत पर आधारित 'श्रीरास' को महामति ने 'इंजील' (अंजील) वाणी से भी अभिहित किया। नूह के पुत्र साम (श्याम) किश्ती में सवार अपने लोगों को जिस बाग़ में ले गए, उसे ही रास का वृन्दावन कहा गया।

अक्रूर--

—संबंध में श्री कृष्ण के चाचा। कंस के आदेश से श्रीकृष्ण को ब्रज से मथुरा ले जाने के लिए रथ लिए आए थे। बालक कृष्ण को संभावित मृत्यु-मुख की ओर ले जाने के विचार से ये बहुत ही उद्विग्न थे। परंतु कृष्ण ने जल में प्रतिबिम्बित अपना विराट स्वरूप दिखाकर उन्हें पूरी तरह आश्वस्त कर दिया।

अक्षर (ब्रह्म)—

अविनश्वर सत्ता—अक्षर ब्रह्म। सच्चिदानन्द स्वरूप अक्षरातीत (श्रीराज जी) के सत अंग अक्षर ब्रह्म। अपनी इच्छा शक्ति से क्षण भर में करोड़ों ब्रह्मांडों को बनाकर मिटा देने वाले। अक्षरातीत ब्रह्म और ब्रह्म-सृष्टि की प्रणय लीला देखने की अभिलाषा से व्रज में श्रीकृष्ण रूप में अवतरित हुए। अक्षरातीत के आवेश को धारण कर वे अखंड वृंदावन में रास रमण हेतु प्रवृत्त हुए। गोकुल की लीला में केवल अक्षर ब्रह्म का ही आवेश रहा। इनकी इच्छा शक्ति से ही 'मोह-सागर' में नारायण आदि की उत्पत्ति हुई और तदुपरांत सृष्टि रचना संपन्न हुई।

अक्षरातीत--

पूर्ण ब्रह्म-परमात्मा—सत्घन, चिद्घन और आनंदघन स्वरूप अनादि सत्ता। आनंद-परिकर में आनंद अंग श्री श्यामा स्वामिनी जी (श्री राज की राधा) अपनी बारह हजार ब्रह्म-प्रियाओं के संग स्वामी को आह्लाद प्रदान करती हैं। अक्षर ब्रह्म भी नित्य इनके दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं। श्रीमद्भगवत् गीता के उत्तम पुरुष यही अक्षरातीत ब्रह्म हैं। तारतम वाणी में इन्हें 'श्री राजजी' कहा गया है—'राजते स्वयं प्रकाशते यः सः राजः।'

आदिनारायण--

अक्षर ब्रह्म के मन में सृष्टि रचना का संकल्प उत्पन्न होते ही, सबसे पहले मोह सागर का विस्तार हुआ। उस मोह रूपी जल में अक्षर की सुरत (ध्यान) का हिरण्यगर्भ सदृश् अंड हजारों वर्ष तक संतरण करता रहा। तदुपरांत आदिनारायण की उत्पत्ति हुई। फिर तीन गुणों के आधिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश अवतरित हुए। पुनः पांच तत्त्व और उनके समायोग से सृष्टि बनी। अक्षर ब्रह्म के मोह तत्त्व से महाविष्णु की उत्पत्ति मानी गई है। इन्हें नारायण की संज्ञा भी दी गई है, जो शेष-शय्या पर विराजमान हैं। नारायण नाम इसलिए भी पड़ा, क्योंकि इनका आवास जल में है। इनके नाभि-कमल से पहले आदि ब्रह्मा और फिर अन्यान्य देवता प्रकट हुए, जिनसे सृष्टि का सृजन, संभरण और संहार होता है। आदि नारायण क्षर ब्रह्मांड के अधिपति हैं और अक्षर ब्रह्म की स्तुति—ध्यान करते हैं।

आसबाई--

रास मण्डल की एक सखी पुण्यात्मा। विशेष सुश्रूषा के लिए इसका उल्लेख किया गया है।

इन्द्रावती--

तारतम वाणी में संकलित श्रीरास, प्रकाश, षटरितु, कलश (गुजराती एवं हिन्दुस्तानी) में महामति प्राणनाथ की आत्मा के रूप में 'इन्द्रावती' का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः महामति प्राणनाथ ने यात्रा क्रम में जब सूरत में अपनी धर्म चर्चा शुरू की तो उनकी आत्मा इन्द्रावती ने अपने अस्तित्व को सद्गुरु महामति और अपने प्रियतम परमात्मा श्रीकृष्ण के स्वरूप में विसर्जित कर दिया। इन्द्रावती और महामति में पार्थक्य न रहा। इसलिए 'तारतम वाणी' में इन्द्रावती और महामति दोनों का ही उल्लेख है। आध्यात्मिकता और

प्रतीकात्मकता की दृष्टि से इंद्रावती अक्षरातीत के परमधाम की नागरी और विलक्षण आत्मा—अंगना है। इस संसार में भी ये अंतरंत सखियों और 'सुन्दर-साथ' की सेवा में अग्रणी तथा उद्‌बोधन जगाने वाली आत्मा हैं। रासमंडलाधीन आयोजित रास-लीला में परमात्मा स्वरूप श्रीकृष्ण और लीला परिकर की समस्त सखियों को विभिन्न क्रीड़ाओं में प्रवृत्त करने वाली और उन रामतों से सबको रिझाने वाली चतुर नायिका की भूमिका में इंद्रावती का अप्रतिम योगदान है। वृन्दावन की श्रीरास लीला से प्रियतम श्रीकृष्ण के अकस्मात् अंतर्ध्यान हो जाने पर भी इंद्रावती अपना धैर्य नहीं खोतीं और समस्त सखियों को अन्यान्य लीलानुष्ठानों में सोत्साह सम्मिलित होने का आह्वान करती हैं। फलस्वरूप श्रीकृष्ण को पुनः प्रकट होना पड़ता है। यह सारा आयोजन इन्द्रावती (महामति) की योग्यता, क्षमता और आस्था के कारण ही सफल हो सका।

जागनी (लीला) में भी ब्रह्माण्ड में ब्रह्म और ईश्वरीय आत्मा (अंगनाओं) को उद्‌बुद्ध और सजाग रखने तथा मुमुक्षु जीवों को प्रबोध देने का दायित्व भी इंद्रावती को ही सौंपा गया। जिसे उन्होंने बड़ी दक्षता और कुशलता से संपन्न किया। इसके लिए अनन्य तपश्चर्या, निष्ठा तथा सहानुभूति रखते हुए अन्य आत्माओं को सम्मिलित करके उन्हें प्रिय-नैकट्य प्रदान करने के उद्योग के चलते उन्होंने स्वय परमात्मा के एकांत मिलन के सुख-संयोग की भी अवहेलना की। लेकिन उनकी यही वंचना किरंतन के एक प्रकरण (साहिब तेरी साहिबी भारी) तथा सिन्धी वाणी में व्यक्त उनकी विरह कातरता पूर्ण उद्विग्नता से मुखरित और समृद्ध है। तथापि वे अपनी संगिनी सखियों (आत्माओं), संगी आत्माओं के बिना प्रियतम मिलन का एकांत सुख भोगना भी नहीं चाहती थीं इसलिए आजीवन उन्हें तारतम मंत्र द्वारा उद्‌बोधित करती रहीं। उन्हें 'जागनी का मंत्र' प्रदान कर अंतिम समय तक उन्हें प्रबुद्ध करती रहीं। 'श्रीरास' के अंतिम प्रकरण (४७) में अपने मधुर उपालंभ द्वारा वे श्रीकृष्ण की अनुदारता को प्रकट भी करती हैं तथा उनसे मूल घर ले जाने की प्रार्थना करती हैं, जहां कदापि वियोग न हो।

काल माया—

अक्षर ब्रह्म के संकल्प के समानांतर नश्वर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करनेवाली कला, जिसके अधीन तीसरा ब्रह्मांड (इंड) बना और व्यावहारिकी लीला संपन्न हुई। इस जगत् (सृष्टि) के मध्य ब्रज-भूमि पर जो लीला (काल माया) के ब्रजमंडल में हुई—**उसे** व्यावहारिकी लीला कहते हैं, जिसे उत्तम जीव ही देख या जान सकते हैं।

कुमारिका—२६-२८/प्र० ५

'श्री रास' में 'कुमारिकाओं' को ईश्वरीय सृष्टि के अंतर्गत अक्षर ब्रह्म की अंगना या कला माना गया है। प्रभु वचन द्वारा आश्वस्त होकर तथा योगमायाधीन सृष्ट रासमंडल में—इन्होंने ब्रह्म सृष्टि के अंतर्भूत होकर 'रास' का आनंद प्राप्त किया था। जिसका सुख केवल ब्रह्मसृष्टियों (या ब्रह्मांगनाओं) के लिए ही संस्तुत है, उसे प्राप्त करने के लिए कुमारिकाओं को कात्यायनी व्रतोद्यापन करना पड़ा था। श्री कृष्ण को शब्द-ब्रह्म और गोपियों को वेद ऋचाएं भी कहा गया है। इसी प्रकार कुमारिकाओं को भी वेद ऋचाओं का स्वरूप पर्याय माना गया है। रास लीला के उपरांत वेद ऋचाओं ने (गोपियों और कुमारिकाओं सहित) पुनः ब्रज भूमि पर ही अक्षर ब्रह्म की शक्ति के साथ लीला की। श्री कृष्ण ने इन्हीं कुमारिकाओं का चीर हरण किया था—ताकि आत्म-परमात्म मिलन की दिव्य और चिन्मय वेला में किसी प्रकार का जागतिक लेश या संकोच शेष न रहे। श्री रास में श्री कृष्ण के संयोग सुख को प्राप्त करने के लिए इन्होंने जो कृच्छ्र तपश्चर्या की—विभिन्न पुराणों में भी कई बार उसका उल्लेख मिलता है।

गौपद वछ संसार—२७/३ ; १७/५;

गाय के वछड़े की खुर के समान संसार को पार कर जाना। गोपियों ने कृष्ण की वंशी को सुना और घर-परिवार, परिजन- पुरजन की सारी लोक-लाज और मर्यादा को त्यागकर घर से निकल गई। 'श्रीरास' में महामति ने गोपियों के इस सहज प्रेम-उन्माद को ही व्यक्त किया है। श्रीमद्भागवत में इसका कई बार उल्लेख किया गया है।

चौदे लोक ७/१;३८/१;४२/१;

सात पाताल, (अतल, वितल सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल)
भूतल (पृथ्वी या मृत्युलोक)
छः देवलोक (भुवर्लोक, स्वर्ग लोक, महर लोक, जन लोक, तपलोक एवं विष्णु लोक) जिन्हें **चौदे भवन** की संज्ञा भी दी गई है।

जोगबाई (शरीर) ५१/१; २१/२;१६/३; ३/३;

महामति ने नश्वर शरीर की मर्यादा का बहुत ध्यान रखा है। इसी शरीर से और इसी संसार में परमात्मा प्रियतम को जान-पहचान पाना बहुत ही महत्वपूर्ण है। हालांकि यह शरीर पानी के बुलबुले की तरह क्षण भंगुर

है। फिर भी इसमें असीम संभावनाएं निहित हैं। लेकिन इस शरीर को परम उपलब्धियों के लिए साधन के रूप में व्यवहृत करना है—न कि जागतिक आकर्षण और अन्यान्य भोग विलास को प्राप्त करने को।

जोगमाया (योगमाया) २६, ३०/प्र० ३१

अक्षर-ब्रह्म योगमाया और कालमाया द्वारा अनेकशः और अगणित ब्रह्मांडों की रचना कर उन्हें मिटाया करते हैं। जोगमाया वह शक्ति है, जो चेतन और दिव्य ब्रह्माडों की रचना करती है। वृन्दावन की अपूर्व रास-स्थली का निर्माण योगमाया की प्रेरणा से ही हुआ था। रास परिकर में सम्मिलित सभी अंगनाओं (सखियों या कुमारिओं) समेत रास मंडल के समस्त उपादानों को योगमाया ने दिव्य श्रृंगार प्रदान किया था। तदनुसार रास लीला अक्षर के अव्याकृत हृदय में अंकित हो गई। रासलीलोपरांत योगमाया ने अपनी विस्तार-क्षमता को समेट लिया और अपनी समानांतर सृष्टि-रचना के साथ केवल ब्रह्म के निर्मल चैतन्य स्वरूप-हृदय में विलीन हो गई।

तामसी (सखियां) २१, २४/प्र० ५, १०/५

त्रिगुणात्मिका शक्ति में से अन्तिम 'तमो' गुण प्रधान वाली उग्र आत्माएं (सखियाँ)—जो प्रगल्भा भी होती हैं। 'श्रीरास' में उन्होंने ही आगे बढ़कर श्रीकृष्ण के आक्षेपों का प्रत्युत्तर दिया था। श्रीकृष्ण के वेणुवादन को सुनकर वे भी अन्याय सखियों के साथ गृह त्यागकर घर से निकल भागीं। जोगमाया ने उनका तत्काल दिव्य स्वरूप-श्रृंगार कर रास मंडल के परिकर और परिसर में पहुंचा दिया।

तारतम (मंत्र, ज्ञान)—प्र० १/४१ ; २/११ ; ३/१४

—महामति को 'तारतम' ज्ञान मंत्र की प्राप्ति सद्गुरु देवचन्द्र से उनकी गद्दी नवतनपुरी, जामनगर (गुजरात, १६३० ई०) में प्राप्त हुई थी —जहाँ आज भव्य खीजड़ा प्रणामी मन्दिर है। तारतम मंत्र विभिन्न धर्मों में समान रूप से प्राप्त घटकों के समन्वय की दिशा में एक सार्थक प्रयास है। तारतम वाणी में इसे अज्ञानान्धकार को विदीर्ण कर प्रकाश की ओर ले जाने वाला ज्ञान (या मंत्र) कहा गया है। साथ ही, इससे साधक या शिष्य के मन में विवेकपूर्ण निर्णय की क्षमता भी आ जाती है। 'श्रीरास' में माया और ब्रह्म के पार्थक्य और लौकिक और अलौकिक आनंद के विभेदादि स्पष्ट करने वाले ज्ञान के रूप में इसकी व्याख्या की गई है, जो सद्गुरु (देवचन्द्र) जी

के प्रसादानुग्रह से ही प्राप्तव्य है। 'तारतम' ज्ञान द्वारा ही अक्षरातीत (—सत् चित् आनन्द घन परमात्मा ; प्रियतम श्रीकृष्ण अर्थात् श्रीराज जी), अक्षर और क्षर के अधीन होनेवाली ब्रह्म, ईश्वरी तथा जीव सृष्टि की संरचना को त्रिधा-लीला (दे०) के महत्त्व को निरूपित किया जा सकता है। इनकी विभिन्न सरणियों के द्वारा ही श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीला-यात्रा का महामति ने सम्यक् परिशीलन किया है।

त्रिगुण—

सत्, रज एवं तम। प्रकृति या सृष्टि का स्वभाव इन्हीं गुणों के अनुसार निर्धारित होता है। सत—शांति, ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक है। रज गुण—ऐश्वर्य, समृद्धि और संघर्ष (शक्ति) का। तम गुण, आलस्य—तन्द्रा या प्रमाद को प्रकट करता है। 'श्रीरास' में इन तीन गुणों को प्रतिनिधित्व देने वाली सात्त्विकी, राजसी और तामसी (दे०) सखियों का उनकी प्रवृत्ति के आधार पर विवेचन किया गया है।

त्रिदेवा—

तीनों (उपर्युक्त) गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले तीन देवता। ब्रह्मा—सृष्टि की संरचना करने वाले, विष्णु—सृष्टि का संभरण करने वाले तथा महेश—सृष्टि का संहार करने वाले। महामति ने ब्रह्मा को मैकाइल, विष्णु को अजाजील, और महेश को इजराइल की संज्ञा द्वारा उन फरिश्तों से भी संकेतित किया है—जिनका उल्लेख कुरान में मिलता है। द्रष्टव्य, सनंध, बड़ा कियामतनामा आदि वाणी ग्रंथ।

तीन तकरार—

ब्रज, रास और जागनी लीला को 'तारतम वाणी' में तीन तकरार की संज्ञा दी गई है। अपनी अज्ञानता और जिद के कारण अंगनाओं ने इस संसार को देखने की इच्छा को तीन-तीन बार दोहराया। जिसके फलस्वरूप उन्हें तीन बार दुःखपूर्ण जगत् में जन्म-ग्रहण कर इन सृष्टि कल्पों में बार-बार उन्हें उन्हीं दुःखों का सामना करना पड़ा और जिनके लिए इन्हें परमात्मा ने रोका था और अन्त में अपने अनुग्रहवश इनको कष्ट से मुक्त भी करते रहे।

कुरान में भी 'लैल तुल कद्र' के 'तीन तकरार' बताये गए हैं—तीसरे तकरार में 'फज्र' के समय ब्रह्म सृष्टि (मोमन) और ब्रह्म ज्ञान के अवतरण का उल्लेख

किया गया है । कतेब में पहली बार हूद के घर, दूसरी बार किश्ती पर और तीसरी बार कियामत के वक्त 'मोमनों' को बचाये जाने का बयान है ।

तीन सरूप खुदाए के कहे, तीनों तकरार रुहों बीच रहे ।

एक ब्रज दूजा रास किसोर, तीसरे बूढ़ापन में भोर ।। २८/प्र० ६

बड़ा कियामत नामा

बाईबिल में भी—मधुरोपासना का 'तीन क्रम' माना गया है । सेंट जॉन ने इसे 'तीन रात' बताया है । पहली रात में सांसारिक आकर्षणों, पद-पदार्थों और संबंधों का त्याग किया जाता है । साधक के अंतर में ईश्वर से मिलने की सदाकांक्षा को छोड़कर अन्य किसी वस्तु की चाह नहीं होती । उसके लिए परमात्मा ही वस्तु होता है—अन्यान्य सब कुछ 'अवस्तु ।'

दूसरी रात घनान्धकार पूर्ण है—जिसमें तर्क या शक्ति और विचार खो जाते हैं एवं ईश्वर में साधक की आस्था अंधकार में दिये की लौ की भाँति प्रदीप्त रहती है । तीसरी रात स्मृतियों की रात है—जिसमें अंधकार क्रमशः घटने लगता है । सांसारिक आसक्तियां प्रायः समाप्त हो जाती हैं—और साधक का ध्यान पूर्णरूपेण परमात्मा में लीन हो जाता है । इसके बाद साधना की परिणति आत्मा और परमात्मा के मिलन से होती है, जिसका आनंद अनिर्वचनीय होता है । इसके लिए सेंट जॉन ने सांसारिक आसक्तियों और संबंधों को त्यागकर प्रभु के चरणों में समर्पण को ही एकमात्र मार्ग माना था ।

तीन सृष्टि—

ब्रह्म, ईश्वरीय और जीव सृष्टि । ब्रह्म सृष्टि का अक्षरातीत परब्रह्म, ईश्वरीय का अक्षर ब्रह्म और जीव सृष्टि का क्षर ब्रह्म से संबंध होता है । इन तीनों की अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ही 'क्षराक्षराक्षरातीत' लोकों में प्रवेश मिलता है ।

तीसरी लीला—

व्रजलीला—जहाँ अक्षरातीत परमात्मा और उनकी अंगनाओं की लीला हुई उसे व्रज की (पहली) लीला कहा गया है । योगमाया की समानांतर सृष्टि में—अक्षरातीत के आवेश से संपन्न अक्षर ब्रह्म के हृदय में ब्रह्मांगनाओं और अन्यान्य गोप बालाओं की दिव्य और चिन्मय लीला संपन्न हुई—उसे रास की (दूसरी) लीला कहा गया । इसी प्रकार महामति ने अपने युग की समस्त

मुमुक्षु, जाग्रत और सुषुप्त आत्माओं (सुन्दर साथ) को जगाने का जो संकल्प लिया और तदनुसार उन्हें 'तारतम ज्ञान' का संदेश (मंत्र) दिया—उसे 'जागनी' की तीसरी लीला कहा गया।

दान लीला—६/४ ; २४/३३

श्री कृष्ण और गोपियों के बीच चलने वाली मधुर लीलाओं में एक महत्त्वपूर्ण लीला। व्रज से सारे दूध, मक्खन घी आदि को मथुरा भेज दिया जाता था। श्रीकृष्ण को यह बहुत बुरा लगा। वे इसे बंद करने के लिए गोपियों के सिर पर रखे मटके फोड़ दिया करते और बाल-सखाओं के साथ उसे चट कर जाते। फिर वैसा ही स्वांग भरकर दूध-घी-मक्खन-छाछ आदि बेचते।

देवचन्द्र जी—

महामति प्राणनाथ के दीक्षा-गुरु। श्री मत्तु मेहता और कुंवर बाई के एकमात्र सुपुत्र। इन्हें महामति ने अपनी वाणी में अक्षरातीत परमात्मा की आनंद अंग श्यामा और सखी सुन्दर बाई का अवतार या उनकी अंगना भी बताया है। देवचंद्रजी (१५८१-१६५४ ई०) का जन्म मारवाड़ प्रांत के उमरकोट गाँव में हुआ था। बाल्य काल में ही इनमें अभूतपूर्व आध्यात्मिक क्षमता विकसित हो गई थी और उन्होंने काफी भ्रमण किया। अंत में, अपने गुरु हरिदास से राधा-वल्लभ मंत्र प्राप्त किया और भागवती आस्था और चर्चा से अनुप्राणित होकर ये जामनगर आये और वहीं के उद्भट विद्वान श्री कान्हजी भट्ट से निरंतर १४ वर्ष तक श्रीमद्भागवत की कथा सुनते रहे। श्री कृष्ण परमात्मा ने स्वयं उन्हें तारतम मंत्र प्रदान किया। जामनगर में निजनाम या तारतम मंत्र द्वारा वे अपने अनुयायियों को उद्बुद्ध करते रहे। मेहेराज ठाकुर को अपने बड़े भाई गोवर्द्धन ठाकुर की प्रेरणा से वहां इनका दर्शन और तारतम मंत्र प्राप्त हुआ।

बाद में, महामति इसी जामनगर के प्रधान मंत्री पद पर आसीन हुए—परन्तु किसी षडयंत्र वश इन्हें कारा-यंत्रणा भुगतनी पड़ी। इसी यंत्रणा के अंतर्दाह को झेलते हुए महामति ने श्रीरास, षट्रितु, प्रकाश और कलश (आंशिक) की रचना की। प्रकाश ग्रंथ में महामति ने अपने परमात्मा स्वरूप गुरु देवचन्द्र जी के लिए बहुत ही विलाप किया है और उनसे पुनः न मिल पाने की सम्भावना उनकी विरह-कातर वाणियों में देखी जा सकती है।

द्वैत—

परमात्मा और माया की अलग-अलग शक्तियाँ और उनकी सत्तास्मिता के

कारण उत्पन्न भाव । महामति ने परमात्मा की अखंड और एकमात्र सत्ता को ही स्वीकार किया है, पर लीलाकांक्षा से उनका 'द्वैत' भी अन्यान्य स्वरूप ग्रहण करता रहता है । अतः इसे उनका 'स्वलीला द्वैत' भी कहा गया है ।

नरसैंया (नरसी मेहता)—२६/३; १/४; ११/४; २/५

गुजरात के प्रमुख भक्त कवि । इनकी भक्ति से संबंधित कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं । गुरु देवचन्द्र और महामति ने नरसी मेहता की भक्ति की बहुविध प्रशंसा की है । अखंड वृन्दावन में संपादित हो रहे श्रीकृष्ण और उनकी स्वामिनी की रास लीला को देखने की उत्कंठा—इनके मन में कई बार हुई—जिसे भगवान शंकर की अनुकंपा से ये देख पाये । वहाँ वे रास के आयोजन को देखकर उसकी आनंद-लहरी में इसमें इतने तल्लीन हो गए कि उनका हाथ भी जल गया । इनकी प्रमुख रचनाओं में 'समरा रास' रास-सहस्त्र-पदी, हार माला, सुरत संग्राम, चातुरी-षोडषी तथा शृंगार-माला आदि हैं ।

पचबीस पक्ष (पच्चीस पक्ष)--७६/१; ८१/१

—परमधाम के वे समस्त चिन्मय और दिव्य उपादान—जो वहाँ की स्थायी अंगनाओं को प्राप्त हैं । पर मोह में पड़कर इन्हें परमधाम के सभी आनंद को त्यागना पड़ा । परमधाम के पच्चीस पक्ष इस प्रकार हैं—अक्षर धाम, रंग महल, पुखराज-पर्वत, सात घाटों वाली यमुना, हौज कौसर ताल, तीन विशाल वन, फूल बाग, नूर-बाग, दूब गलीचा, पश्चिम की चौगान चौबीस बुर्जों का महल, माणिक पर्वत, जवाहरात महल और उसकी घाटियाँ, चार हार हवेली, आठ सागर और उनके बीच की आठ भूमियाँ । इनका वर्णन 'परिक्रमा' ग्रंथ (द्र०) में महामति ने विस्तार से किया है ।

परीक्षित——

अर्जुन के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र—परीक्षित । जो श्रीमद्भागवत के श्रोता थे और श्रीकृष्ण-राधा के साथ गोपियों के रास-प्रसंग के औचित्य के संबंध में इन्होंने ही जिज्ञासा (या शंका) प्रकट की । शुकदेव जी की पात्रता की व्याख्या भी महामति ने एकाधिक स्थल पर की है । उसका आशय इतना ही है कि असीम (हद) के जीव (प्राणी) के लिए असीम (बेहद) का पार पाना या तद्वत आचरण करना बहुत ही कठिन है । शुकदेव परीक्षित को संग ले बेहद भूमिका तक पहुँचना चाह रहे थे—पर उन्हें परीक्षित के कारण लौटना पड़ा ।

पूतना--६/३३;

कृष्ण के संहार के लिए मथुरा के राजा कंस द्वारा भेजी गई राक्षसी । जो

अपने स्तनों में विष लपेटे आई—पर श्री कृष्ण ने स्तन-पान के साथ-साथ उसका प्राण भी हर लिया ।

ब्रजलीला—१४/४;

श्रीकृष्ण की ११ वर्ष और ५२ दिन की लीलाएं—जब उनमें अक्षरातीत परब्रह्म स्वरूप विद्यमान था । इसी के अंतर्गत रास लीला भी संपन्न हुई ।

ब्रह्म सृष्टि—

अक्षरातीत परमात्मा की आनन्द अंगना श्यामा जी और उनकी आत्माएँ (सखियाँ)—जो अपनी कलाओं से श्रीराज और उनकी स्वामिनी—श्यामा को आह्लाद प्रदान करती हैं । अक्षरातीत ब्रह्म की प्रेरणा से इन ब्रह्म सृष्टियों के मन में दुःखपूर्ण विश्व को देखने की इच्छा जगी—तदनुसार इनका तीन बार अवतरण हुआ । इसे ही तीन तकरार (दे०) संज्ञा दी गई । कतेब में इन्हें ही नाजी फिरका या 'मोमिन' कहा गया है—जो वैष्णव का नाम पर्याय है ।

भागवत—३६/१;

श्रीमद्भागवत महापुराण । श्रीकृष्ण भक्ति विषयक आदि पुराण ग्रंथ—जिसे 'भक्ति का वेद' माना गया और श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान ही भक्त के लिए 'कलि से मुक्ति' ओर प्रभु-प्राप्ति का अन्यतम साधन बताया गया । वेद शास्त्रादि अनेक धर्म ग्रंथों का प्रणयन करने के उपरांत भी जब व्यास जी का मन उद्भ्रांत रहा तो अंत में नारद की प्रेरणा से कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करके उनका उद्विग्न चित्त शांत हुआ । श्रीमद्भागवत में कृष्ण की बाल-लीलाओं, व्रज, वृन्दावन तथा मथुरा की लीलाओं का सांगोपांग वर्णन इतना मधुर और आनंदपूर्ण है कि किसी भी सहृदय के जीवन में श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी घुल जाती है । कोई भी भक्तिप्रवण चित्त रसिकेश्वर और रासेश्वर कृष्ण का अनुगत हो जाता है । शुकदेव मुनि भी श्रीमद्भागवत के साथ एकाकार हो गए । साप्ताहिक कथा-पारायण द्वारा इन्होंने श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं और उनकी भक्ति को प्रचारित किया, जिसे सुनकर राजा परीक्षित भी वैकुंठ लोक पा गये । महामति ने भागवत को श्री रास की लीला-कथा-यात्रा का साक्ष्याधार माना है । महामति से गुरु देवचन्द्रजी भी परम भागवदीय श्री कान्ह जी भट्ट से चौदह वर्ष पर्यन्त श्रीमद्भागवत की लीलाओं का श्रवण करते रहे । अतः महामति पर भागवत की अनुप्रेरणाओं का प्रारंभ से ही प्रभाव रहा और 'श्री रास' में वह महामति की अवधारणाओं और स्वानुभूतियों से संपुष्ट और अभिव्यक्त हुआ ।

मूल घर—(मूल वतन—परम धाम) ४६/४७

अक्षरातीत परमात्मा प्रियतम और आनंद अंश श्यामाजी तथा उनको आह्लाद प्रदान करने वाली ब्रह्मांगनाओं का मूल परम धाम। जहाँ कोई वियोग या दुखः नहीं।

मेहेराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ)

महामति का जन्म ६ सितंबर, १६१८ ई० को नवतनपुरी, जामनगर (काठियावाड़) में हुआ था। पिता केशव ठाकुर और माता धनबाई की ये चौथी संतान थे। १२ वर्ष आयु में ही सद्गुरु देवचन्द जी से इनकी भेंट हुई और इन्हें वहाँ दीवान का पद भी मिला। पर किसी मिथ्या दोषारोप के कारण जामवजीर ने इन्हें 'हब्सा' कारागृह में डाल दिया। इस अप्रत्याशित कारा-यंत्रणा और अपमान बोध के चलते इन्हें राज-काज से विरक्ति हो गई। हब्सा में ही, इनको आत्मज्ञान और गुरु (परमात्म) विरह का बोध हुआ। इसलिए हब्सा को 'प्रबोधपुरी' की भी संज्ञा दी गई है। 'श्री रास,' प्रकाश, षटरितु और कलश (आंशिक) ग्रंथों का अवतरण यहीं हुआ—जिनमें उनकी विरह-कातर प्रणयिनी (आत्मा) ने प्रियतम (परमात्मा) के सम्मुख अपना प्रणय-निवेदन प्रस्तुत किया है।

कारामुक्त होनेपर महामति का धर्म-संकल्प और भी तीव्र हुआ। इसके पूर्व वे गुरु की आज्ञा से ही अरब के देशों की यात्रा कर चुके थे, इसलिए तत्कालीन धर्म-समाज-संस्कृति आदि का इन्हें सम्यक् बोध हो चुका था। विभिन्न धर्मों के मूल तत्त्व और उनकी आस्थाओं के आधार पर ही 'एक धर्म, एक ईश्वर, और एक विश्व' का संदेश दिया। विभिन्न धर्म-संप्रदायों या धर्म के नाम पर प्रचलित गुटों का विरोध, अवरोध—और उनकी सराहना-अवमानना सहते हुए वे १६६४ई० में मेड़ता पहुंचे। वहीं एक दिन प्रातःकाल मुल्ले की अजान 'ला इला हो इल्लाहो मुहम्मद रसूल अल्लाह' में उन्हें अपने तारतम मंत्र में निहित' क्षराक्षराक्षरातीत' से ऐक्य का संकेत मिला। यहीं से उनकी आध्यात्म -यात्रा का महत्त्वपूर्ण चरण आरंभ हुआ। यही उनका नवीन यज्ञोपवीत संस्कार-संकल्प था। उन्हें प्रतीत हुआ कि धर्म मनुष्य की मुक्ति का साधन है, न की उसे बाँधे रखने का। उन्होंने दिल्ली की गद्दी पर बैठे धर्मान्ध औरंगजेब को भी धर्म-द्वेष त्यागकर सहिष्णुता और सर्व धर्म सद्भाव का संदेश देना चाहा। पर उनके उलेमाओं ने महामति की योजना को सफल नहीं होने दिया। सनंध (संबंध) ग्रंथ द्वारा उन्होंने पुराण और कुरान की स्थापनाओं और मूल-भूत सत्य की परख की। १६७८ ई० में महामति दिल्ली से हरिद्वार गए।

वहाँ पूर्ण कुम्भ के अवसर पर आयोजित धर्म-चर्चा में उन्होंने विभिन्न धर्मों और संप्रदायों में निहित 'एक सत्य' की अवधारणा को स्पष्ट किया। तदनुसार उन्हें 'विजयाभिनंद निष्कलंक बुद्ध' की उपाधि मिली और विजय-माल की गरिमा के अनुकूल उनका 'शाका' भी प्रचलित हुआ।

महामति पहले गृहस्थ धर्म साधक थे। उनकी पहली पत्नी का नाम फूल बाई था। मृत्यु के बाद तेज कुंवर बाई से इनका विवाह हुआ था। गुजरात निवासी होते हुए भी इनका परिचय न केवल भारतीय धर्म-संस्कृति से बल्कि समस्त पश्चिमेशिया प्रायद्वीप के धर्मों से था। उनकी 'तारतम वाणी—(जिसमें १४ ग्रंथ संग्रहीत है)—में विभिन्न धर्मों के मूल तत्त्व और स्वरूप की व्याख्या की गई है। इसे कुलजम स्वरूप (शरीफ या सागर साहब) भी कहते हैं। महामति की वाणियों में उनका उपनाम 'इंद्रावती' (दे०) भी मिलता हैं। इनका धाम गमन १६९४ ई० में हुआ। छत्रसाल इनके शिष्य थे और आजीवन इनकी राज-प्रेरणा से ही राज्य एवं सैन्य संचालन करते रहे।

मोह (जल)—१/१, ३/१;

महामति ने 'मोह' से ही क्षर (या जीव) सृष्टि का आरम्भ माना है। इसके प्रभाव से सृष्टि और उसको प्रेरित करने वाली माया (दे०) का विस्तार होता है।

वल्लभाचार्य—

श्री कृष्ण के परम भक्त और वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक। परम भगवदीय होने के कारण इन्हें कृष्ण का अवतार भी कहा गया। पौराणिक वाङ्मय में इतः स्ततः प्राप्त श्रीकृष्ण के लीला-चरित गान को इन्होंने भक्तों के लिए सर्वोपरि उपादान बताया। श्रीमद्भागवत पुराण पर इनकी 'श्री सुबोधिनी टीका' बहुत ही विख्यात है। महामति ने इनकी टीका को श्रीरास के प्रणयन में साक्ष्याधार माना है और कतिपय स्थलों पर उनके अवदानों की विशेष चर्चा की है—
'वचन विचारी मीठड़ी वल्लभाचारज वानी" (प्र० १५, किरंतन)

वाला जी (वालाजी, वालैया) १७/३; १/६; १/४८;

ब्रह्मांगनाओं के प्रियतम और स्वामी। अक्षरातीत परमात्मा श्रीराज जी अथवा धनी जी। ब्रज, रास और जागनी की लीलाएं सभी उनके आनन्द अंग का विस्तार मात्र है। लेकिन महामति ने प्रेम लक्षणा भक्ति के आधार पर विरह कातर अंगनाओं (सखियों, व्रजगोपियों) के प्रेम का समान प्रतिदान चुकाया। 'श्रीरास' में उनका प्रियतम और स्वामी रूप दोनों प्राप्त होता है।

वृषभान नन्दनी—१६/१

—श्री राधा जी। श्रीमद्भागवत की भाँति राधा जी का नामोल्लेख 'श्रीरास' में भी नहीं हुआ है। वे यहां श्यामाजी (देखिए) के रूप में श्री श्याम (अर्थात् श्री कृष्ण—श्री राज जी) के साथ विद्यमान हैं। श्री कृष्ण का अंग होती हुई भी वे परकीया भाव से—उनसे मिलती हैं। ताकि प्रेम-मिलन का संयोग-सुख तीव्रतर बना रहे।

शिव (सदाशिव)

महादेव। संसार (माया) का संहार करने वाले। सदाशिव श्री कृष्ण के दर्शन करने आये थे। इनके मन (ध्यान) में ही—ब्रज लीला का सारा आयोजन-वैभव अंकित हो गया था। नरसी मेहता को इन्हीं सदाशिव की अनुकम्पा से रास लीलोत्सव में मशाल जलाने का काम मिला। महामति ने पंच महान वासनाओं (आत्माओं) में सदाशिव को भी एक माना है—जिनपर समस्त ब्रह्मांड—ब्रह्मसृष्टि का दायित्व है।

सनकादिक—५/१;

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी के चार मानस पुत्र—सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार। उन्होंने चारों वेद—(ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अवर्थवेद) का प्रचार किया।

स्वांतसी (सात्त्विकी)—२२/५; ११/६;

—कृष्ण की वंशी सुनते ही विह्वल हो जाने वाली ब्रज की सात्विकी वृत्तिवाली सखियाँ।—जैसे ही ये घर-बार छोड़कर निकलने को तत्पर हुई कि इनके परिवार, परिजन समेत इनके देवर और पतिदेव आड़े आ गए। श्रीकृष्ण मिलन की व्यग्रता में इन्हें उनका इस तरह रास्ता रोकना बहुत ही प्रतिकूल जान पड़ा। उन्होंने इतना ही कहा कि क्या ये नहीं जानते कि कृष्ण ही हमारे एक मात्र पति हैं। इस संसार को आग क्यों नहीं लग जाती—और उनका शरीर-पात हो गया। लेकिन उनकी सुरिता ने पुनः नया दिव्य और चिन्मय रूप-श्रृंगार ग्रहण किया और वे तत्क्षण रास मंडल में पहुँच गईं—जहाँ कृष्ण उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सुन्दरबाई—१६/४३; ४६/३

गुरु देवचन्द्र जी की परा आत्मा (अंगना) का नाम। श्रीरास की रामतों

(क्रीड़ाओं) में इनकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अक्षरातीत और श्रीश्यामा जी की अंतरंग अष्ट सखियों (सुन्दरबाई, इंद्रावती, रत्नावती, लालबाई, आसबाई, कमलावती, फूलबाई और चम्पावती) में इन्हें पहला स्थान प्राप्त है।

सुन्दर साथ—

श्रीराज जी और श्यामा जी की अंगना—संगिनी। सेवा करने वाली वे समस्त सखियाँ—जो ब्रज, रास और जागनी की लीलाओं में प्रियतम के साथ रहीं और अपनी भूल (मोह) वश ही दुःखपूर्ण संसार में आने को वाध्य हो गईं। 'सुन्दर साथ' उन मुमुक्षुओं के लिए भी दिया गया सम्बोधन है—जो अब अपनी भूलों के लिए अनुताप कर रहे हैं और प्रियतम परमात्मा के सान्निध्य के लिए सचेष्ट हैं। महामति (सखी नाम इंद्रावती—दे०) ने इन्हीं अंगनाओं (सखियों) को इकट्ठा कर श्री राजजी—धनी परमात्मा का नैकट्य प्रदान किया।

प्रणामी समाज में अब भी एक दूसरे को 'सुन्दर साथ' या 'साथी' संबोधन द्वारा पुकारने का प्रचलन है।

मुद्रित : अरिस्टो प्रिंटिंग प्रेस, एच० एस० ३८. कैलाश कालोनी, नई दिल्ली-४८